

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182428

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 82
A 81 A Accession No. H 3023

Author अश्व मेन्दनाथ

Title आदिमार्ग. 1953.

This book should be returned on or before the date
last marked below.

आदि मार्ग

[चार नाटक]

उपेन्द्रनाथ 'अश्व'



प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता  ५, खुसरू बाग रोड, इलाहाबाद, १

पहला संस्करण १९५० प्रकाशक

दूसरा संस्करण १९५३ नीलाभ प्रकाशन गृह, ५ खुसरो बाग रोड,
इलाहाबाद-१

मूल्य ५)

मुद्रक

नया हिन्द प्रेस, १४५ मुट्टी गंज,
इलाहाबाद-३

माँ की पुण्य-स्मृति में

इन नाटकों को खेलने से पहले लेखक की आज्ञा लेना आवश्यक है ।

आल इंडिया रेडियो के पास इन नाटकों का अधिकार नहीं । प्रत्येक नाटक के लिए लेखक को रायल्टी देना अनिवार्य है ।

बिना लेखक को रायल्टी दिये इन में से कोई नाटक किसी संकलन में न दिया जाय ।

अपनी बात

आदि मार्ग का दूसरा संस्करण लगभग तीन वर्ष बाद पाठकों के सामने प्रस्तुत है, मुझे प्रसन्नता है कि मेरे अन्य नाटकों की तरह पाठकों ने इसे पसन्द किया। आलोचकों की पसन्द का उल्लेख इस लिए नहीं करता कि हमारे अधिकांश युवा आलोचक रस लेने के लिए कृति का अध्ययन नहीं करते, आलोचना के लिए उसे पढ़ते हैं और रंग मंच अथवा आधुनिक नाटक का ज्ञान नहीं के बराबर होने से, वे जो फतवे देते हैं, वे इतने हास्यास्पद होते हैं कि उन्हें पढ़ कर हँसी भी नहीं आती। तो भी श्री हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, श्री धीरेन्द्र वर्मा डाक्टर रामकुमार, वर्मा तथा श्री विनय मोहन शर्मा आदि गम्भीर आलोचकों ने नाटकों को पसन्द किया है। लेखक हृदय से उनका आभारी है।

आदि मार्ग में दो अपेक्षाकृत छोटे और दो बड़े नाटक संकलित हैं। इन चार में दो गम्भीर हैं और दो हास्य-रस पूर्ण। इन चारों नाटकों का संकलन एमेचार क्लबों को सामने रख कर किया गया

है। इस संग्रह के पहले दो नाटक मेरे बड़े नाटकों (‘अलग अलग’ रास्ते’ और ‘अंजो दीदी’) के संक्षिप्त संस्करण हैं। उन्हें इस उद्देश्य से संक्षिप्त किया गया है कि वे एमेचर संस्थाएँ जो न पंद्रह बीस मिनट के एकांकी खेलना चाहती हैं, न दो अढ़ाई घंटे के बड़े नाटक, वे आसानी से इन्हें खेल सकें। मेरा यह उद्देश्य बहुत हद तक सफल भी हुआ है क्योंकि पिछले तीन वर्ष में प्रस्तुत संग्रह के दो नाटक—छूटा बेटा और अंजो दीदी मंसूरी से लेकर हैदराबाद तक जगह जगह खेले गये हैं। ‘छूटा बेटा’ तो अकेले नागपुर के तीन स्कूलों में खेला गया। इन दोनों नाटकों की सफलता का कारण कदाचित्त उनमें दी गयी हास्य की पुट है। मैं आशा करता हूँ कि एमेचर संस्थाएँ हास्य-भरे नाटकों के साथ-साथ गम्भीर नाटक भी खेलेंगी और उस दृष्टि से ‘आदि मार्ग’ को बढ़ा सफल पायेंगी।

एमेचर संस्थाओं से प्रार्थना है कि नाटक खेलने से पहले लेखक को अवश्य सूचना दें, अपनी काठनाइयों उसके सामने रखें और खेलने के बाद दर्शकों की राय उसे लिख भेजें। लेखक आभारी होगा और यथा सम्भव रंग मंच सम्बंधी परामर्श उन्हें देगा।

लक्स माउंट
मंसूरी—जून ५३ }

अनुक्रम

१	मैं नाटक कैसे लिखता हूँ ?	६
२	आदि मार्ग	२७
३	अंजो दीदी	८७
४	भँवर	१४७
५	छठा बेटा	२१७

“कोई सुन्दर कलाकृति लेखक ही से
नहीं, पाठक से भी (अलोचक से और भी
अधिक) सूझ-बूझ और संतोष की अपेक्षा
रखती है ।”

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ

इस 'कैसे' का उत्तर देने के लिए, जब मैं पिछले कुछ वर्षों पर दृष्टि डालता हूँ तो पाता हूँ कि नाटक लिखने के लिए मैंने कोई खास कलाबाज़ी नहीं लगायी। जिस तरह मेज़-कुर्सी पर बैठ कर, कलम-दवात या फ़ाऊन्टेन पेन की मदद से, मैंने कहानी या उपन्यास लिखे हैं, उसी तरह नाटक। कविताओं का उल्लेख मैंने इसलिए नहीं किया कि कविताएँ मैंने कभी बैठ कर नहीं लिखी। कमरे में टहलते, ड्राम, बस या गाड़ी में यात्रा करते; प्रातः- सायं घूमते अथवा सोने की कोशिश में बिस्तर पर करवटें बदलते बदलते मैंने अपनी अधिकांश कविताएँ लिखी हैं। अपनी एक प्रसिद्ध लम्बी कविता मैंने अटारी से प्रीति नगर तक, दस मील का लम्बा मार्ग, एक पुराने से इक्के पर तय करते हुए लिखी, किन्तु कहानें और इसी प्रकार नाटक मैंने प्रायः कमरे में मेज़-कुर्सी पर बैठे कर लिखे हैं।

सुना है, स्व० प्रेमचन्द बिस्तर या फ़र्श पर पेट के बल लेट कर,

आदि मार्ग

तकिये के सहारे लिखा करते थे और जब कभी लिखने में तल्लीन हो जाते थे तो घुटनों के बल पाँव ऊपर उठा लेते थे और (निमग्नता की न्यूनता अथवा आधिक्य के अनुसार) टाँगें हिलाते रहते थे । मैं कभी फर्श पर बैठ कर या लेट कर कोई चीज़ नहीं लिख पाया । मेज़ (चाहे फिर वह सेकेंड हैंड छोड़ थर्ड हैंड ही क्यों न हो) और कुर्सी (चाहे वह गद्दों के बदले लकड़ी की कठोर खुरी सीट वाली ही क्यों न हो) मेरे लिए मदा कलम-दवान की तरह लिखने की आवश्यक सामग्री में से रही है ।

निम्न-मध्य-वर्ग में जन्म लेकर, यथेष्ट अभाव में दिन गुज़ारने पर भी यह साहबी आदत मुझे कैसे पड़ गयी, जब मैं इसका कारण खोजने के लिए अपने बचपन पर दृष्टि डालता हूँ तो अपनी सारी दिलचस्पी के साथ एक घटना मेरे मस्तिष्क में विद्युत सी कौंध जाती है ।

मैं पाँचवीं या छठी में पढ़ता था, जब हमारा पुराना खण्डहर सा मकान बनना आरम्भ हुआ । यद्यपि प्रारम्भिक योजना केवल इतनी थी कि एक चौबारा और रसोई-घर गिरा कर नया बनवा लिया जाय, किन्तु हमारे पिता जी हर बात कुछ बड़े पैमाने पर करने में विश्वास रखते थे । उन्होंने सारे का सारा पुराना मकान गिरवा डाला और उसे फिर नये सिरे से दोमंज़िला बनवाने का निश्चय कर लिया और जहाँ माता जी ने पाँच सौ-हज़ार का अनुमान लगाया था, वहाँ नौ हज़ार रुपया खर्च कर डाला और बाद में वर्षों ऋण उतारते रहे ।

उन्हीं दिनों जब मकान बन रहा था, पिता जी एक सांझ माता जी से पचास रुपये लेकर सीमेंट लेने बाज़ार गये । जब लौटे तो हमने देखा कि सीमेंट के बोरो के बदले उनके पीछे पीछे कुली दो मेज़ें, चार कुर्सियाँ और एक बेंच उठाये हुए चले आ रहे हैं । मेज़ें सुन्दर थीं, किन्तु उनका गहरा हरा, भूँगे के रंग का कपड़ा बिलकुल उड़ गया था और वे उसके बिना सूनी-

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ

बुची लगती थी। कुर्सियों में से एक बेंच-विहीन थी और दूसरी का बेंच इतना नीचा हो गया था कि सीट में गढ़ा बन गया था। रहा बेंच, सो वह भी जीर्णोद्धार की अपेक्षा रखता था। पूछने पर पता चला कि मार्ग में एक स्थान पर नीलामी हो रही थी, वे सीमेंट के बोरो के बदले वह सब कचरा खरीद लाये हैं।

मैंने देखा, सामान बाहर रखवा कर वे बड़े गर्व-स्फीत स्वर में अपनी इस कार्य-पटुता की प्रशंसा चाह रहे थे। मरम्मत और पालिश के बाद वह सब सामान बैठक और आँगन में किस ढंग से सजाया जायगा, इसका सविस्तार व्योरा दे रहे थे और भीतर आधे बने आँगन में माँ बैठी सोच रही थी कि पचास रुपये तो ये कबाड़खाने में खर्च कर आये, अब सीमेंट के लिए रुपया कहाँ से आयागा ?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि उस सामान की मरम्मत हो जाती तो वह बुरा न लगता, किन्तु जब मकान ने एक कमरे और रसोई-घर से बढ़ा कर आठ दस कमरों का रूप धारण कर लिया और घर घर का ऋण सिर पर चढ़ गया तो उन मेजों पर कपड़ा लगवाना तो दूर रहा, उन पर पालिश का एक हाथ भी न फिर सका। उन्हीं दो मेजों में से एक मेरे और मेरे छोटे भाई के अधिकार में आयी और एक दो वर्षों को छोड़ कर (जब छोटे भाई के नित नये झगड़ों से ऊब कर मैंने एक चौकी ही मेरे मेज का काम लेना शुरू कर दिया) वह मेज सदा मेरे अधिकार में रही और मैं मेज-कुर्सी पर बैठ कर काम करने का कुछ ऐसा अभ्यस्त हो गया कि जब बी० ए० पास करने पर लाहौर गया और चालीस रुपया मासिक पर 'बन्द मातरम्' के सम्पादन-विभाग का सदस्य कहलाने का गौरव प्राप्त करने लगा, चंगड़ मुहल्ले में दो अंधेरी सीलमरी कोठड़ियाँ भी मुझे किराये पर मिल गयीं और अवकाश के समय कुछ लिखने की समस्या सामने आयी तो उस मेज

आदि मार्ग

का वियोग बढ़ा अखरने लगा । कोठड़ी के फर्श की दशा इस योग्य न थी कि उस पर बैठ कर या लेट कर कुछ निखा जाये, इसलिए तुरन्त मेज़ लाने का निश्चय किया ।

चालीस रुपया मासिक में से, घर का खर्च निकाल कर, इतने पैसे तो क्या बचते कि मैं नयी मेज़ खरीद सकता, किन्तु पहला वेतन मिलते ही जो पहला काम मैंने किया, वह यह था कि पिता जी के पद-चिन्हों पर चलते हुए, अनारकली के एक सेकेंड-हैंड-डीलर से आबूनस की एक सेकेंड-हैंड मेज़-कुर्सी खरीद लाया । वह मेज़-कुर्सी इतनी सुन्दर थी कि उस सील भरी अँधेरी कोठड़ी में विलासिता (Luxury) से कम न लगती थी । उसी मेज़ पर मैं आठ वर्ष तक काम करता रहा और उसी पर बैठ कर मैंने अपने पहले नाटक लिखे ।

ये पंक्तियाँ लिखते समय कौन जाने, वह मेज़ पाकिस्तान के किसी कबाड़खाने में चली गयी है और पुनः नयी चमक-दमक के साथ मेरे जैसे किसी विपन्न महात्वाकाँक्षी लेखक की बाट देख रही है, अथवा किसी कारोबारी के क्लर्क की फाइलों का भार वहन कर रही है ? मेरे बड़े भाई अनारकली छोड़ते समय अपने और मेरे सब फर्नीचर को वही छोड़ आये थे । मुझे दूसरे फर्नीचर की कभी याद नहीं आयी, पर उस मेज़ की स्मृति बराबर हो आती है ।

किन्तु मेज़-कुर्सी अपनी सारी सुख-सुविधा के बावजूद मुझे कभी डेढ़ दो घंटे से अधिक बाँध कर नहीं बैठा सकी । जब मैं यह सुनता हूँ कि अमुक लेखक ने एक ही बैठक में पूरी की पूरी कहानी या अमुक ने पूरा नाटक समाप्त कर डाला तो मुझे उनसे ईर्ष्या भी होती है और उनकी इस प्रतिभा पर विग्मय भी—सोचता हूँ, या तो वे अपनी योग्यता दिखाने के लिए गप ढाँक देते हैं या फिर प्रेस के तगादों के कारण जैसा-तैसा बन पड़ता है, मन

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ

को जकड़ कर लिख फेंकते हैं, अथवा वे सचमुच अभूतपूर्व प्रतिभा के स्वामी हैं। एक ही बैठक में दो-चार बार तो अच्छी चीज़ लिखी जा सकती है, किन्तु सदैव कोई (अख़बारी नहीं, साहित्यिक) उत्तम रचना सृज देना मुझे असम्भव सा लगता है। स्वयं तो मैं दो-चार अवसरों को छोड़ कर, एक ही बैठक में दस-बीस पंक्तियाँ या दो-एक पृष्ठों से अधिक कभी नहीं लिख पाया। यह बात नहीं कि प्लाट मेरे दिमाग़ में नहीं होता, या अस्पष्ट होता है, या विचारों का क्रम टूट जाता है, या कोई उपमा नहीं सूझती, बल्कि जब विचार प्रबल वेग से बह रहे होते हैं, उस समय भी कुछ ऐसी घबराहट होनी लगती है कि मैं सहसा क़लम छोड़ कर कमरे में टहलने लगता हूँ या बातें करने लगता हूँ या पढ़ने लगता हूँ। कई बार ऐसा भी हुआ कि नाटक लिखते लिखते मैं किसी दूसरे की कृति पढ़ने लगा और उसमें ऐसा तल्लीन हुआ कि मेरा नाटक अधूरा ही रह गया।

लेकिन अजीब बात यह है कि इस तरह बहते विचारों का क्रम तोड़ने पर भी कभी ऐसा नहीं हुआ कि मेरे विचार तितर-बितर हो गये हों और जब फिर मैंने क़लम उठाया हो तो उस क्रम को पकड़ न पाया होऊँ। सदा ऐसा होता है कि जहाँ से मैं लिखना छोड़ता हूँ, फिर आकर जब बैठता हूँ तो वहीं से प्रारम्भ कर देता हूँ। कई बार मैं वाक्य तक अधूरा छोड़ कर उठ जाता हूँ और जब दोबारा बैठता हूँ जभी वाक्य समाप्त करता हूँ। यही नहीं, कई बार जब वास्तव में विचारों का क्रम रुक जाने; कोई उपमा न सूझने या किसी अस्पष्ट विचार के स्पष्ट न होने अथवा कोई सम्भाषण न सूझ पाने के कारण मैं लिखना छोड़ कर उठता हूँ तो (मैंने प्रायः देखा है) जब फिर बैठता हूँ तो वह विचार, उपमा या सम्भाषण स्पष्ट होकर कागज़ पर आ जाता है। लगता है जैसे प्रकट दूसरी बातों में लगे रहने पर भी मन निरन्तर उसी के सम्बन्ध में सोचता रहता है।

आदि मार्ग

किन्तु इस प्रकार धीरे धीरे लिखने पर भी कभी यह नहीं हुआ कि नाटक की जो पाड्डु-लिपि मैंने तैयार की, वही अन्तिम हो। मेरा स्वभाव है कि पहली बार नाटक का धुँधला सा रेखा-चित्र तैयार कर लेता हूँ। (वास्तव में वह सब विकलता और घबराहट इसी पाड्डु-लिपि की तैयारी में होती है) इसके पश्चात् मैं उसे निरन्तर सँवारता-सुधारता रहता हूँ। इस काम में मेरा मन खूब लगता है। मैं निरन्तर काट-छांट करता रहता हूँ और जब तक चीज़ प्रेस में नहीं चली जाती, मेरी संलग्नता में कभी नहीं आती। इस प्रकार कई नाटक मुझे दूसरी तीसरी से लेकर पाँचवीं छठी बार तक भी लिखने पड़े हैं। पहला या दूसरा मसौदा तैयार करने पर मैं मित्रों को (यदि अवसर मिले तो) सुनाता भी हूँ और उनका परामर्श भी लेता हूँ, किन्तु प्रायः ऐसा भी हुआ है कि मित्रों की तुष्टि हो जाने पर भी मैं सन्तुष्ट नहीं हुआ और नाटक में संशोधन-परिवर्द्धन करता रहा। ऐसे नाटकों की कमी नहीं जो रेडियो पर बड़ी सफलता से ब्राडकास्ट हुए, किन्तु जब मैंने पुस्तक के लिए उनकी अन्तिम पाड्डु-लिपि तैयार की तो उन्हें बिलकुल बदल दिया।

परन्तु मैं नाटक कैसे लिखता हूँ? इसके उत्तर में सम्भवतः इतना कह देना ही पर्याप्त नहीं कि मैं मेज़-कुर्सी पर बैठ कर, कागज़-कलम-दवात लेकर, दो या दस बैठकों में, दो या दस बार लिखता हूँ। यह शब्द 'कैसे' कदाचित् मुझ से नाटक के कला-पक्ष के सम्बन्ध में भी कुछ न कुछ कहने का अनुरोध करता है।

मैं सर्व-प्रथम नाटक की थीम अर्थात् आधारभूत विचार खोजता हूँ अथवा यों कहिए कि नाटक का आधारभूत विचार पहले मेरे दिमाग में आता है। किन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि इस आधारभूत विचार

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ

से पहले किसी मनोरंजक पात्र अथवा सुन्दर दृश्य को देख कर मेरे मन में उसे नाटक का अंग बनाने की इच्छा उत्पन्न होती है और यही इच्छा नाटक लिखने को प्रेरित करती है ।

“महारा जंगल का सब साज सदा रहती है दूब हरी”

चरवाहों के इस सरस, स्वतन्त्र गीत ने मुझे ‘चरवाहे’ लिखने पर विवश किया । मैं रेडियो स्टेशन दिल्ली के देहाती विभाग में बैठा हुआ था जब पंडित हृदयराम ने मुझे यह गीत अपने विशेष ‘हरयाने’ के स्वर में गाकर सुनाया । मुझ पर ऐसा प्रभाव हुआ कि इसी गीत को पृष्ठभूमि में रख कर मैंने ‘चरवाहे’ का सृजन किया ।

वर्षा-ऋतु की एक भीगी भीगी सुबह मैं ज़रा तड़के सब्जी मंडी दिल्ली के समीप रिज पर सैर करने गया । बादल अभी अभी छूटे थे, पर बड़ी नन्हीं नन्हीं फुहार पड़ रही थी । उस ठंडे, भीगे, प्रकाश-धुने धुंधलके में मैं ‘पीर गायब’ के मजार पर चढ़ा । नीचे बन के पेड़ जैसे अन्तर के उल्लास ले भूम रहें थे और पहाड़ी पर ऊपर से नीचे को जाती हुई भीगी भीगी सबके प्रातः के उजियाले में चाँदी की नन्हीं नन्हीं नदियाँ सी लग रही थीं । तभी सहसा मेरे मन में विचार उठा कि ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है जो इतने सौन्दर्य के निकट होते हुए भी उसका दर्शन न कर पाये और विद्युत की सी गति से मेरे एक मित्र की लड़की का मुझ मेरी आँखों में कौंध गया, जो छः वर्ष रीढ़ की हड्डी के नासूर से बिस्तर पर बँधी पड़ी रही थी । यही लड़की ‘चिलमन’ की किरण बनी और उस सौन्दर्य को एक नज़र देखने के लिए छुटपटाती रही ।

फिर एक बार एक नाटक का विचार मेरे मन में ‘ग़ालिब’ के प्रसिद्ध शेर—क़ैदे-हयातने-बन्दे-ग़म.....को पंढ़ कर उत्पन्न हुआ । मैं

आदि मार्ग

जब भी 'ग़ालिब' का दीवान लेकर बैठता, प्रायः इस ग़ज़ल को पढ़ता । बार बार पढ़ने से यह शेर मेरे मन-मस्तक पर अंकित हो गया और फिर इसी ने जीवन की एक पूरी ट्रेजेडी का रूप धारण कर लिया ।

शेरों, गीतों और सुन्दर दृश्यों के अतिरिक्त कई बार मनोरंजक पात्र भी मुझे नाटक लिखने की प्रेरणा देते हैं । 'अंजो दीदी' आज भी मेरे सम्मुख है । 'छठा बेटा'—सौ पृष्ठ का यह नाटक मैंने एक पात्र ही को देख कर लिखा । इसी प्रकार 'भँवर' और 'चुम्बक' विभिन्न पात्रों के किसी न किसी नाटकीय पक्ष ही का चित्रांकन करते हैं ।

विभिन्न वातावरण भी नाटक लिखने की प्रेरणा दे सकते हैं और मेरा विचार कुछ ऐसे नाटक लिखने का भी है जो किसी पात्र के बदले पूरे के पूरे वातावरण का चित्र उपस्थित करें ।

उस स्थिति में जब आधारभूत विचार बना बनाया मन में नहीं आता और प्रेरणा किसी अन्य वस्तु से होती है, मैं सदैव मूलभूत विचार सोच निकालता हूँ । अब मैं इस पर नाटक की इमारत कैसे खड़ी करता हूँ, इस विषय में कोई घड़ी-घड़ायी विधि मैं प्रस्तुत नहीं कर सकता । बचपन से मेरी प्रवृत्ति नाटकों की ओर रही है; बचपन ही से मैंने द्विजेन्द्रलाल राय, आगा हश्र, बेताब, राधेश्याम, रहमत आदि के नाटक पढ़े हैं; कालेज और कालेज के पश्चात् अनेक नाटकों में अभिनय किया है और बाद में, जब मैं पुस्तकें खरीद सका, मैंने लगभग सभी प्रसिद्ध पश्चिमीय और पूर्वीय नाटककारों की रचनाएँ पढ़ी हैं; नाटक के आवश्यक उपादानों का परिचय पाया है; पुरातन और आधुनिक ढंग के नाटकों का अन्तर जाना है और अभ्यास से नाटक-कला पर अधिकार प्राप्त कर लिया है ।

जब मैंने एफ० ए० में एक बार एकांकी लिखने का प्रयास किया तो

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ

उस समय भारतवर्ष में एकांकी लगभग अप्राप्य था। कवि टैगोर के एक दो नाटक मेरे सम्मुख थे और पंडित सुदर्शन की एक कामेडी—‘आनरेरी मैजिस्ट्रेट’! किन्तु उस समय मुझे नाटक के, विशेषकर आधुनिक नाटक के, आवश्यक अवयवों का ज्ञान न था, इसलिए बहुत कोशिश करने पर भी मैं सफल नाटक न लिख पाया। कुछ हास्यास्पद नामों के साथ एक हास्यास्पद सी वस्तुस्थिति पर मैंने एक प्रहसन लिखा, किन्तु उस समय भी मुझे सन्तोष न हुआ और बाद में कई बार लिखे जाने पर भी वह इस योग्य न बन सका कि किसी संग्रह का अंग बने।

१९३६ में मेरी पहली पत्नी का देहान्त हो गया और इस अवसर पर कुछ कुप्रथाओं का मेरे मन पर इतना प्रभाव हुआ कि एक दिन जब मैंने समय काटने के लिए, अपने छोटे भाई के कोसे का एकांकी-नाटक-संग्रह उठाया तो पहला नाटक पढ़ते ही एक घटना एकांकी का रूप धर कर मेरे सामने आ गयी और मैंने दो दिन में ‘लक्ष्मी का स्वागत’ लिख डाला। कला की दृष्टि से यह आज भी मेरे श्रेष्ठ एकांकी नाटकों में से है। उन्हीं दिनों मैंने पुरातन ढंग का एक लम्बा ऐतिहासिक नाटक ‘जय पराजय’ लिखा जो बाद में कई विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में सम्मिलित हुआ। इसके बाद ज्यों ज्यों मैं आधुनिक नाटक पढ़ता गया, मेरे मन में आधुनिक ढंग के अपेक्षाकृत छोटे नाटक लिखने की इच्छा प्रबलतर होती गयी। कुछ इसलिए भी कि आजकल जन-साधारण के पास बड़े बड़े नाटक देखने या पढ़ने का समय नहीं और कुछ इसलिए कि ये छोटे नाटक अधिक स्वाभाविक लगते हैं और वास्तविकता का भ्रम (Illusion of Reality) उत्पन्न कर देते हैं। यह भी ख्याल था कि व्यावसायिक रंग-मंच के अभाव में, ये एमेचर रंग मंच पर आसानी से खेले जा सकेंगे। फिर कहानीकार होने के कारण भी मुझे छोटे नाटक पसन्द थे। एक कारण

आदि मार्ग

यह भी था कि मैं स्वयं उन दिनों कहीं नौकर न था और स्वतन्त्र रूप से काम करता था, मेरा सारा दिन मेरा अपना था और दिन भर केवल कहानियाँ सोचना और लिखना मेरे लिए असम्भव था। मन चाहता था कि जब कहानी लिखने की रुचि न हो तो कोई और चीज़ लिखी जाय। मेरे मस्तिष्क में कुछ ऐसी घटनाएँ सुरक्षित थीं जो कहानी के बदले नाटक के रूप में अपेक्षाकृत अच्छे ढंग पर उपस्थित की जा सकती थीं, ऐसे अवसरों पर मैं नाटक लिखने का प्रयास करता रहा।

उस समय से लेकर अब तक मैंने—सामाजिक, राजनीतिक, सांकेतिक, मनोवैज्ञानिक—सभी प्रकार के नाटक लिखे और पढ़े हैं। पश्चिम के प्रसिद्ध नाटककारों में मुझे इब्सन, मैटरलिक, स्ट्रिडबर्ग, चैखव, सिमोनोव, ओ-नील, कॉफ़मैन, माहिम, बेरी, प्रीस्टले ने सदा नाटक लिखने की प्रेरणा दी है। मैंने शा, गाल्ज़वर्दी, पिरेन्देलो, और दूसरे अमरीकी, जापानी और योरोपीय नाटककारों को भी पढ़ा है। मैं उन कलाकारों की महानता को मानता हूँ, किन्तु उनमें से अधिकांश को पढ़ कर, आनन्द चाहे मुझे कितना भी क्यों न मिला हो, न जाने क्यों, स्वयं कोई नाटक लिखने की प्रेरणा नहीं हुई। सम्भवतः इसलिए कि शायद मेरी प्रकृति उनसे भिन्न है। मैटरलिक या ओ-नील का नाटक मैं चाहे दूसरी या तीसरी बार ही क्यों न पढ़ूँ, सदा मुझे नाटक लिखने के लिए प्रेरित करता है और उसे पढ़ कर मेरे मन में नाटक के जो आधारभूत-विचार पक रहे होते हैं, उनमें से कोई न कोई अस्पष्ट विचार सर्वथा स्पष्ट हो कर नाटक का रूप धर लेता है। यहाँ प्रगतिशीलता अथवा प्रतिक्रियात्मकता का जिक्र नहीं, मैं केवल कलात्मक की बात कर रहा हूँ। नाटककार अथवा नाटक चाहे अग्रतिमूलक हो, पर कई बार उसकी कला का सौष्ठव मुझे मोह लेता है और स्वयं लिखने की प्रेरणा देता है।

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ

मैंने जीवन की विभिन्नता का आभास पाया है और थोड़ा-बहुत अनुभव भी प्राप्त किया है। समाचार-पत्र के एक साधारण रिपोर्टर के रूप में जीवन-संघर्ष आरम्भ कर के मैंने अध्यापक, अनुवादक, सम्पादक, वक्ता, विज्ञापन-विशेषज्ञ, वकील, रेडियो-आर्टिस्ट, अभिनेता और सिनारिस्ट की हैसियत से तरह तरह के अनुभव प्राप्त किये हैं; तरह तरह के लोगों से मिला हूँ और असंख्य दुःखद अथवा सुखद घटनाएँ मेरे मास्तिष्क में सुरक्षित पड़ी हैं। जब भी अपने प्रिय नाटककारों को पढ़ते पढ़ते (कई बार नये पास न होने के कारण पुराने ही पढ़ता हूँ) मुझे नाटक लिखने की प्रेरणा होती है तो उनमें से कई घटनाएँ, कई पात्र और कई दृश्य आप से आप मेरे आधारभूत विचारों में से किसी एक में फिट हो जाते हैं और नाटक तैयार हो जाता है। कोई भी पात्र, चाहे वह कितना भी मनोरंजक क्यों न हो, शायद ही कभी अपने यथार्थ-रूप में नाटक का अंग बनता है। आधारभूत विचार की आवश्यकता के अनुसार उस पर रंग चढ़ जाता है।

कई बार वास्तव जीवन के कई पात्र मिल कर नाटक के एक पात्र में समा जाते हैं और यह सम्मिलन एक नये पात्र का सृजन कर देता है। भिन्न रसायनक द्रव्यों के समावेश से जो नया द्रव्य बनता है, जिस प्रकार उसमें उन सब के गुण-दोषों के साथ साथ अपने स्वतन्त्र गुण-दोष भी होते हैं, उसी प्रकार यह नया पात्र भी उन पात्रों के चरित्रों का सार तो अपने में रखता ही है, परन्तु इसका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी होता है। 'भँवर' की प्रतिभा इस समावेश का प्रमाण है।

जब मैं दिल्ली में था तो मैंने तीन लड़कियों को देखा। उनमें दो हिन्दू थीं और एक मुसलमान, परन्तु उनके जीवन की उलझन और व्यग्रता मुझे बड़ी हद तक एक सी लगी। कई बातें उनमें समान-रूप से विद्यमान थीं। उदाहरणतः

आदि मार्ग

१. तीनों अभिजात वर्ग से सम्बन्ध रखती थीं ।
२. तीनों बड़ी पढ़ी-लिखी थीं—एक इंग्लिस्तान हो आयी थी, दूसरी एम० ए० में फर्स्ट रही थी, तीसरी उस समय एम० ए० में पढ़ रही थी । तीनों अपने को प्रबल बुद्धिवादी (Intellectual) मानती थीं ।
३. तीनों ने अपने यौवनारम्भ में किसी ऐसे व्यक्ति से प्यार किया था जिसे वे भिन्न कारणों से अपना जीवन-साथी न बना पायी थीं ।
४. उस पहले प्यार के पश्चात् जब तीनों ने विवाह किया तो अपने वैवाहिक जीवन को सफल न बना सकीं । वे अपने पतियों को छोड़ बैठी थीं अथवा वे उनसे अलग हो गये थे ।
५. तीनों को उनकी इस वैवाहिक असफलता ने एक विचित्र आकर्षण प्रदान कर दिया था । भव के विशाल वक्ष पर वे मुक्त लहरियों सी बह रही थीं । नयी लहरियों से मिलती थीं, कुछ पल साथ साथ चलती थीं, फिर असन्तुष्ट होकर अलग हो जाती थीं—‘गालिब’ के उस पथिक की भाँति जिसके मुँह से कवि ने कहलाया है—

चलता हूँ थोड़ी दूर हर इक राहरों के साथ
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं !

६. यद्यपि उनके इस विचित्र आकर्षण की आभा में कई शलभ अपने प्राण गँवा रहे थे, पर वे स्वयं भी अपने ही आप जलने वाली दीपशिखा की भाँति निरन्तर सुलग रही थीं ।

इन तीनों पात्रों के समावेश ने ‘भँवर’ की ‘प्रतिभा’ का रूप धर लिया । प्रतिभा में उनके चरित्रों के सार-स्वरूप ये बातें तो आप पायेंगे ही, लेकिन इसके साथ ही उसका अपना अलग व्यक्तित्व भी, जो भँवर के चक्कर में घूमने वाली एक ऊर्मि का सा है, विज्ञ पाठकों को अवश्य मिलेगा ।

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ

कई बार आधारभूत विचार कहीं से मिलता है और पात्र कहीं से और दोनों एक दूसरे में समा जाते हैं ।

सात आठ वर्ष की बात है । एक दिन प्रातः मैं प्रीत नगर से लाहौर जा रहा था । 'प्रीत नगर' से 'अटारी' के अठ्ठे तक दम मील का मार्ग इसके पर तै करना पड़ता है । 'लोपोके' से इसके की पिछली सीट पर दो वृद्ध मुसलमान स्त्रियाँ आ सवार हुईं । एक बुढ़िया अपने बड़े लड़के के यहाँ कसी उत्सव पर लोपोके आयी थी और उस समय वापस अपने छोटे लड़के के पास जा रही थी, जहाँ कि उन दिनों वह रहती थी । अपनी बड़ी बहू के दुर्व्यवहार से तंग आकर, वह उत्सव को बीच ही में छोड़, लड़-लड़ा कर चली आयी थी । दस मील की यात्रा का एक तिहाई भाग उसने अपने बड़े लड़के और बहू को गालियाँ देने में गुज़ारा—सास होने के नाते अपने बेटे और बहू से उसकी वही शिकायतें थीं, जो पुरातन काल से कर्कशा और ईर्षालु सासों को होती आयी हैं—फिर जब उसके मन का उबाल कुछ शान्त हुआ तो उसने अपने दुख की कहानी आरम्भ की—किस प्रकार पति के मर जाने पर उसने स्वयं मेहनत-मजूरी करके अपने तीनों बच्चों को पाला.....किस प्रकार बड़ा बेटा उस 'कमीनी' बड़ी बहू के आते ही अलग हो गया.....किस प्रकार उसने अपनी आशाएँ मैंभले पर केन्द्रित कीं, लेकिन उस बड़े को देख कर वह भी शादी के बाद अलग हो गया.....और बुढ़िया कई मील तक मैंभले लड़के और उसकी बहू को गालियाँ देती रही.....अन्त में उसने अपने छोटे लड़के का जिक्र आरम्भ किया कि वह कितना सुशील, समझदार और आशाकारी है । खुदा के बाद यदि वह किसी पर यकीन रखता है तो वह उसकी यही बुढ़िया माँ है । अपने छोटे लड़के के गुणों का बखान करते करते वृद्धा की वाणी की कर्कशता कुछ अजीब सी आर्द्र-तरल-स्निग्धता से बदल गयी ।

आदि मार्ग

अपनी मैली ओढ़नी से अपनी नाक साफ़ करते हुए अन्त में उसने सजल वाणी में कहा कि बस वह तो खुदा से दिन-रात यही दुआ करती है कि उसके बच्चे का घर बस जाय तो उसके मन को भी सुख-शान्ति मिले ।

उसकी इस आकांक्षा को सुन कर मन ही मन मैं हँस दिया । सुख-शान्ति की वह उसकी हसरत ऐसी थी जिसका पूरा होना उस परिस्थिति में असम्भव सा था । ‘निश्चय ही वह तीसरे बेटे का विवाह करेगी’—मैंने सोचा—‘उसी अरमान और चाव से, जिसके साथ उसने पहले दो पुत्रों का विवाह रचाया था, पर उसका वह तीसरा पुत्र अपने भाइयों के पद-चिन्हों पर न चलेगा, इसकी कोई सम्भावना न थी, क्योंकि उस बुढ़िया के रहते किसी बट्ट का उस घर में रहना उतना ही असम्भव था, जितना किसी बट्ट के रहते उसका रहना । उसकी वह आकांक्षा मुझे मानव की उस छली आकांक्षा का प्रतीक लगी जो कभी पूरी नहीं होती ।

उस यात्रा के बाद, इक्के का वह सफ़र, वह बुढ़िया, उसकी बातें, उसकी वह कभी न पूरी होने वाली आकांक्षा मेरे मन-मस्तक में घूमती रही । मेरा विचार उस पर कहानी लिखने का था, परन्तु फिर अपने ही आस-पास मुझे कुछ ऐसे पात्र मिल गये, जिनकी आकांक्षा भी उस वृद्धा की भाँति कभी पूरी न होने वाली थी, तब मैंने उस मूलभूत विचार में ये नये पात्र फिट कर दिये और ‘छठा बेटा’ तैयार हो गया । पंडित बसन्तलाल और उस कर्कशा वृद्धा में, यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो, बहुत अन्तर न दिखायी देगा ।

छठा बेटा माँ बाप की (पंडित बसन्तलाल या उस कर्कशा वृद्धा की) उस आकांक्षा ही का प्रतीक है जो कभी पूरी नहीं होती ।

पात्रों और आधारभूत विचार के अतिरिक्त कई बार भिन्न भिन्न

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ

स्थानों पर देखे हुए दृश्यों अथवा घटनाओं का भी समावेश एक ही नाटक में हो जाता है। वास्तव में नाटक लिखने की क्रिया भिन्न रसायनक द्रव्यों के समावेश से नया द्रव्य तैयार करने ऐसी ही है। कहाँ कहाँ से क्या क्या मिलाकर एक नयी कृति तैयार हो जाती है, इसका व्योरा ठीक से देना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। कई बार किसी पात्र के कृत्य का कारण ढूँढ़ने और पाने के प्रयास में उसका प्रकट रूप ही बदल जाता है और वह अपने आन्तरिक रूप में, अथवा उम रूप में कि जिसमें मैं उसे देखता हूँ, नाटक का पात्र बन जाता है।

मुझे किसी प्रसिद्ध नाटक का अनुवाद करने, विचार चुराने अथवा उसकी शैली का अनुकरण करने की कभी इच्छा नहीं हुई। उन बड़े नाटककारों की नकल करना या उनके कोषों से विचारों के मोती चुराना मैं उनकी और अपनी प्रतिभा का अपमान समझता हूँ और जैसा कि स्ट्रैंडबर्ग ने एक स्थल पर लिखा है : --

Pushed ahead by the impression made on me by Materlink and borrowing his divining rod, I turned to my own sources.

(मैटरल्लिंक ने मुझ पर जो प्रभाव डाला उससे प्रेरणा प्राप्त कर और उस महान कलाकार से दृष्टि की गहराई उधार लेकर मैं अपनी ही अनुभूतियों की ओर मुका ।)

मैं भी उन महान नाटककारों से प्रभावित होकर, अपनी ही अनुभूतियों से नाटक की सामग्री प्राप्त करता हूँ और 'आप-बीती' अथवा 'जग-बीती' को नाटकों का रूप देता रहता हूँ।*

पंचगनी—जून १९४८

उपेन्द्रनाथ अशक

* आल इंडिया रेडियो लखनऊ के सौजन्य से।

आदि मार्ग

पात्र

तारा चंद

शिव राम

बृज नाथ

सरदारी लाल

बृन्दावन, पूरन, सन्तू, रानी, राजी ।

[पर्दा पंडित ताराचंद की बैठक में झुलता है। यह बैठक नये और पुराने का अद्भुत सम्मिलन उपस्थित करती है, क्योंकि इस में काँच भी लगे हैं, तिपाइयाँ भी रखी हैं और एक तख्त पर गाव-तक्रिया भी लगा है।

बायीं दीवार में एक बड़ी खिड़की है, तख्त इसी के बराबर बिछा है। खिड़की पर पर्दा लटक रहा है, शायद पूरा नहीं खींचा गया, क्योंकि खिड़की का आधा भाग दिखायी दे रहा है, जिसके शोशों में से बाहर बागीचे के पेड़-पौधे दिखायी देते हैं।

दायीं दीवार में भी एक वैसी ही खिड़की है, जिसके अधखुले पर्दे से चबतरा और उसके

आदि मार्ग

परे बागीचा दिखायी देता है। खिड़की के इधर को एक दरवाजा है जो बाहर चबूतरे पर खुलता है। बाग़ से होकर बैठक में आने का यही दरवाजा है।

सामने की दीवार के दायें कोने में एक दरवाजा है जो आँगन में खुलता है। दरवाजे पर पर्दा लटक रहा है, किन्तु पर्दे के हटने पर आँगन और आँगन के परे बरामदे का एक भाग, पानी का नल और हौज़ साफ़ दिखायी देते हैं।

सामने दीवार के साथ कोंच का सेंट, तख़्त से आँगन के दरवाजे तक, इस ढंग से लगा है कि बार्थी और के कोंच पर बैठा हुआ व्यक्ति तख़्त पर बैठे हुए आदमी से बड़ी सुगमता से बातचीत कर सकता है।

दीवारों पर अवतारों के चित्र भी लगे हैं और महात्मा गाँधी तथा पंडित जवाहर लाल के भी, परन्तु उनमें मार्क्स और लैनिन के चित्र न जाने किसने लगा दिये हैं ! शायद पंडित जी के लड़के पूरन ने लगाये हैं और पंडित जी को उसने यह कह दिया है कि ये भी अवतारों ही की तस्वीरें हैं।

सुबह का समय है। खिड़की के शीशों से हलकी-हलकी धूप कमरे में आ रही है। पर्दा उठने पर पंडित ताराचंद हुक्का पीते दिखायी

आदि मार्ग

देते हैं और शिवराम तख्त के बराबर ही कौच पर आगे को झुके हुए बैठ रहे हैं। लगता है जैसे अभी आये हैं, क्योंकि टोपी अभी तक उनके हाथ में है, जिसे वे पर्दा उठते समय तख्त पर रखते दिखायी देते हैं।

क्षण भर के लिए ताराचंद हुक्का गुड़-
गुड़ाते हैं, फिर रानी को आवाज देते हैं।]

ताराचंद : रानी बेटा, मैंने पानी लाने को कहा था।

रानी : (आँगन से) ला रही हूँ पिता जी !

शिवराम : अरे भाई, कोई ऐसे जल्दी नहीं। इतनी दूर से पैदल ही चला आया, इसलिए कुछ प्यास-सी लग रही थी, पर ऐसी भी क्या मुसीबत है कि ...

[रानी आँगन के दरवाजे से पानी लिये प्रवेश करती है।]

रानी : लीजिए, चाचा जी !

शिवराम : (गिलास लेते हुए) जीती रहो बेटा !

[दा एक घूँट पीकर गिलास तिराई पर रखते हैं। रानी गिलास उठाने लगती है।]

— : नहीं, अभी गिलास ले जाने की ज़रूरत नहीं। मैं अभी और पीऊँगा। धीरे-धीरे पीने की आदत है मेरी।

ताराचंद : (हुक्का गुड़गुड़ाते हुए) सन्तू का भेज देना गिलास लेन। कहाँ है सन्तू ?

आदि मार्ग

रानी : जी, तरकारी लेने गया है मार्केट तक ।

ताराचंद : जब आये, भेज देना !

रानी : जी, बहुत अच्छा ।

(चली जाती है ।)

शिवराम : क्यों भई, रानी के बारे में क्या फ़ैसला किया है तुमने ? बेचारी आधी भी नहीं रही !

ताराचंद : रानी ही के दुख की दवा कर रहा हूँ शिवराम । अपनी तरफ से मैं इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखता हूँ कि उसे किसी तरह का कष्ट न हो (हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) उमने दोबारा कालिज में दाखिल होना चाहा और हालांकि लड़कियों की शिक्षा को मैं अधिक पसन्द नहीं करता, लेकिन पूरन के ज़ोर देने पर मैंने इसका प्रबन्ध कर दिया । उसने गाना सीखना चाहा और हालांकि मैं नाच-गाने को, जैसा कि तुम जानते हो, डोम मीरासियों की चीज़ समझता हूँ, पर पूरन के कहने पर और इस बात का ख्याल करके कि रानी को अपना दुख हर समय खलेगा, मैंने मूरदास हरिराम को उसे गाना सिखाने के लिए लगा दिया (हुक्के का लम्बा कश ले कर तनिक भेद भरे स्वर में) यही नहीं, मैंने अभी त्रिलोक का भी पीछा नहीं छोड़ा । बृन्दावन को उसके पीछे लगा रखा है और वह उसे मनाने की पूरी कोशिश कर रहा है (फिर हुक्का गुड़गुड़ाते और खाँसते हैं) मैं जानता हूँ अपनी सारी शिक्षा-दीक्षा, कला-

आदि मार्ग

कौशल और अपने सार गुणों के बावजूद भी रानी विरह के इस लम्बे दुख को न सह सकेगी।

शिवराम : धन चोरी हो जाय या खो जाय, ताराचंद, आदमी संतोष कर लेता है, लेकिन पास होते हुए भी अपना होते हुए भी, उसे हाथ लगाने की आज्ञा न हो, इस बात से जो कष्ट होता है, उसे मन ही जानता है।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भना करे ! (हुक्के का लम्बा कश ले कर) इसीलिए मैं इस जतन में हूँ कि त्रिलोक आकर उसे ले जाय !

शिवराम : क्या कहता है वह ?

ताराचंद : अभी तक तो अपने हठ पर अड़ा है। बात असल में यह है शिवराम कि इस शादी से उसे बड़ी आशाएँ थीं। जब उसने देखा कि उमकी आशाएँ, उसकी कल्पना के अनुसार पूरी नहीं हुईं तो उमने इस बात का सारा क्रोध बेचारी रानी पर निकाला।

शिवराम : आशाएँ ?

ताराचंद : उसे आशा थी कि दहेज में एक मकान और मोटर जरूर मिलेगी, लेकिन मकान छोड़ जब उसे मोटर भी न मिली

[पूरन बाहर चबूतरे पर दिखायी देता है।

दृष्ट भर के लिए खिड़की में से भीतर झाँकता है, फिर डाइंग रूम की ओर आता है।]

आदि मार्ग

शिवराम : उसे मकान और मोटर की क्या ज़रूरत है ?
उसके पिता के अपने मकान हैं और मोटर भी है ।

ताराचंद : (हँस कर) लेकिन त्रिलोक के अलावा उसके पिता के पाँच और भी तो बेटे हैं । बांटने पर शायद किसी मकान की बैठक और मोटर का कोई पुर्जा ही उसके हाथ लगे ।

[पूरन कमरे में आता है किन्तु दोनों को बातों में निमग्न देखकर पल भर के लिए चौखट में खड़ा मुनता है ।]

शिवराम : क्या कहते हो ? उनके तो इतने मकान हैं !

ताराचंद : सब गिरवी रखे हुए हैं । हमें तो पता ही न चला, नहीं मैं कभी रानी की शादी वहाँ न करता ।

पूरन : (हँसता है) इस बात का पता चल जाता तो कोई और बात पर्दे में रह जाती । ब्याह तो आज-कल अँधेरे में तीर मारने के बराबर है । निशान पर लगा गया तो ठीक, नहीं हाथ से निकला तीर तो वापस आता नहीं । जब दोनों पक्ष झूठ बोलने में एक दूसरे से बाज़ी ले जाने का चिन्ता में हों तो सच का पता पाना कठिन है ।

ताराचंद : (हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़ कर तीक्ष्ण-कटु स्वर में)
कहाँ से आये हों पूरन आवारागर्दी करते ?

आदि मार्ग

पूरन : आबारा-गर्दी में ठौर ठिकाना कहाँ ? सभी जगह घूमता आया हूँ ।

ताराचंद : तुम्हें कभी तमीज़ से बात करनी भी आयेगी ? (शिवराम से) और शिवराम, तुम कहा करने थे—बच्चों को जितना हाँ सके पढ़ाना चाहिए ! ये महाशय एम० ए० हैं और सुनता हूँ, अपनी जमात में अव्वल रहे थे । पूछो क्या करते हैं ? (मुंह बना कर) आबारागर्दी !

पूरन : तां आखिर आप ही कहिए क्या करूं ?

ताराचंद : (गर्ज कर) मैं कहूँ ! मेरे कहने से क्या होता है ? (शिवराम से) मैं इसके लिए कितने मित्रों के सामने बुरा नहीं बना शिवराम ? राय नाहब गनीमत राय की मिकारिश से बड़े दफ्तर में नौकर कराया (नक्रत उतारते हुए) “मुझे यह क्लर्क पसन्द नहीं है !” बुरा-सा मुंह बना कर ये महाशय वहाँ त्यागपत्र दे आये । लाला गुनझारी लाल की मिन्नतें करके उनकी फर्म में नौकर कराया, चार दिन बाद वहाँ से छोड़ आये । पूछा—‘क्यों’ ? उत्तर मिला—“दिन भर झूठ बोलना पड़ता है !” कोई पूछे, सत्यवादी हरिश्चन्द्र के अवतार तो बस तुम्हीं हाँ, शेष सारी दुनिया झूठ बोलती है । सर सीताराम की मिल में मैनेजर की नौकरी दिलायी, हफ्ते भर से अधिक वहाँ न टिके । पूछा—‘क्यों’ ? पता चला—मजदूरों पर अत्याचार इनसे सहन

आदि मार्ग

नहीं होता ! (फिर पूरन से) अब बताओ, तुम्हें और क्या करने को कहूँ ? सुबह कहाँ जाने को कहा था, कुछ याद है ?

पूरन : मैं उनसे बात करना भी अपना अपमान समझता हूँ

ताराचंद : लाट है न हिन्दुस्तान का तू (मुँह चिढ़ाते हुए) बात करना भी अपमान समझता हूँ । बहिन का सारा जीवन संकट में है और ये महाशय उस के पति से बात तक करना अपमान समझते हैं ।

पूरन : मैं जानता हूँ, उनके साथ बहिन का जीवन.....

ताराचंद : (और भी गर्ज कर) चुप रहो और अपनी यह फिलासफी अपने पास रखो ।

रानी : (आँगन से) पूरन भय्या, ज़रा इधर आना, यह ट्रंक ज़रा नीचे उतरवाना ।

पूरन : आया, रानी ।

(चला जाता है ।)

ताराचंद : ज़रूरत से ज्यादा शिश्ता ने लड़के का दिमाग खराब कर दिया है (हक्का गुड़गुड़ाते हैं) मुझे कभी-कभी आशंका होती है कि यह अपने साथ रानी को भी न ले डूबे । स्त्री का स्थान उसके पति का घर है शिवराम, माता पिता के पास लड़की कै दिन रह सकती है ?

शिवराम : बड़े-बड़े राजा महाराजा लड़कियों को अपने घर नहीं रख सकते ताराचंद, फिर हमारी-तुम्हारी तो बिसात ही क्या है !

आदि मार्ग

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे ! (हुक्के का कश लगा कर) तुम्हीं कहो । रानी अपने घर न जायगी तो क्या उम्र भर यहाँ बैठा रहेंगी ? मैं उसे जो यह शिक्षा दिला रहा हूँ सो इसका कारण यही है कि त्रिलोक को उससे जो शिकायत है वह दूर हो जाय, नहीं उसे नौकरा तो करनी नहीं ।

शिवराम : भले घरों की बहू-बेटियाँ कहीं नौकरी करती हैं !

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे ! यह साला जो आज भाई बना फिरता है, कल जो मेरी आँख बन्द हो जाय तो बात भी न पूछेगा । देखो शिवराम इन लोगों के किये तो कुछ हांगा नहीं । ये सब, नादान छांकरे हैं । इन्हें यह समझ नहीं कि कौन सी बात करने की है और कौन सी नहीं । तुम्हें इतने सवरे कष्ट देने का उद्देश्य यह भी है कि तुम स्वयं त्रिलोक से मिलो और किसी न किसी तरह रानी को बुलाने के लिए उसे तैयार कर लो । देखो, त्रिलोक के पिता से तुम्हारी दोस्ती रही है । उस पर भी दबाव डालो । वह मेरा मकान ही लेना चाहता है तो मैं अपना पुराना मकान उसके नाम कर दूँगा । आखिर जमाई और बेटे में फर्क ही क्या है ? रानी अपने घर सुखी रहे, मैं और मकान बनवा लूँगा ।

शिवराम : लेकिन रानी से उसे शिकायत क्या है ?

ताराचंद : दसियों शिकायतें हैं—वह पढ़ी लिखी नहीं, सभ्य नहीं, सुन्दर नहीं, विनम्र नहीं, मुंह-फट है,

आदि मार्ग

सास-ससुर का आदर नहीं करती.....

शिवराम : तुमने रानी को समझाया नहीं ?

ताराचंद : अरे भाई, जब वह पिछले साल रोती हुई आयी, तो मैंने समझा बुझा कर उसे वापस भेज दिया था। लेकिन सच पूछो तो रानी का इसके सिवा कोई दोष नहीं कि वह त्रिलोक की आशा के अनुसार दहेज में एक मोटर और मकान नहीं ले गयी ?

शिवराम : तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ ? हुई थी तुम्हारे सामने इस बात की चर्चा ?

ताराचंद : (हुक्का गुड़गुड़ा कर) अरे यह तो बुझ गया !
(नौकर को आवाज देते हैं) सन्तू, ओ सन्तू !

रानी : (आँगन से) क्या बात है पिता जी ?

ताराचंद : यह चिलम बुझ गयी। उससे कहना ज़रा भर कर दे जाय !

रानी : वह तो अभी आया नहीं पिता जी, मैं आती हूँ।

(रानी आती है और चिलम ले जाती है)

ताराचंद : (रानी से) ज़रा तमाखू दबा कर भरना। पूरन क्या कर रहा है ?

रानी : (जाते जाते बाहर चले गये हैं बासीचे में !

ताराचंद : (खाली हुक्का गुड़गुड़ाते हुए) त्रिलोक ने मुझ से तो कभी कुछ नहीं कहा। मेरे सामने तो झिझकते झिझकते उसने इन्हीं बातों का जिक्र किया था, लेकिन रानी ने ससुराल में अपने

आदि मार्ग

शुरू के दिनों की बाबत जो कुछ बताया है, उसी से मुझे पता चल गया कि असल में दुखती रग कौन सी है। शुरू शुरू में त्रिलोक ने रानी को उसके पिता की कंजूसी के लिए कोसा और कहा कि उसे धाखा दिया गया है। उसे आशा दिलायी गयी थी कि एक मोटर और मकान दहेज में दिया जायगा।

शिवराम : हुई थी ऐसी बात ?

ताराचंद : (जोर दे कर) कभी नहीं। मैं और परमानन्द त्रिलोक को देखने गये थे। इस बात का जिक्र तक नहीं हुआ। उस वक्त तो न इतनी पढ़ी-लिखी का जरूरत थी, न सुन्दर की। मेरे सामने त्रिलोक ने साफ साफ कहा कि मैं बहुत पढ़ी-लिखा लड़की पसन्द नहीं करता। बस भले घर को ऐसी सरल और सुशील लड़की चाहिए, जो मुझे घर का आराम दे सके। जब मैं शाम को कचहरी से थका-माँदा आऊँ तो मुझे लगे कि मैं घर आ गया हूँ। मुझे ऐसी पत्नी नहीं चाहिए जो घर ही को कचहरा बना रखे—और मैं उससे विश्वास दिलाया था कि वह रानी में ये सब गुण पायगा। अब परमानन्द ने उसे अपनी तरफ से उसे कोई सज्ज बाग दिखाये हों तो मुझे खबर नहीं।

(रानी चिलम लिये आती है ।)

रानी : यह लीजिए चिलम पिता जी, उपले की आग रख

आदि मार्ग

कर लायो हूँ।

ताराचंद : (हुक्का गुड़गुड़ा कर) जीती रहो बेटी ! (शिवराम से) लो शिवराम, पियो !

[रानी चली जाती है और शिवराम बेपरवाही से हुक्के के दो कश लगा कर नै ताराचंद की ओर कर देता है ।]

शिवराम : लेकिन तुम्हारी इच्छा के बिना परमानन्द ने ऐसा क्यों किया होगा !

ताराचंद : कभी मेरा विचार था मोटर और मकान देने का, लेकिन भाई मुझे राजी की भी तो शादी करनी थी। रानी का मकान देता तो राजी को भी देता और फिर जब त्रिलोक और उसके पिता ने कहा कि हमें दहेज की बिल्कुल परवाह नहीं, ईश्वर का दिया हमारे पास बहुत कुछ है, हमें तो बस सरल और सुशील लड़की चाहिए तो मैंने अपना विचार बदल दिया। और फिर पूरन का भी खयाल था। लाख आवारा हां, फिर भी मेरा लड़का है।

शिवराम : हां, हां, पूरन के लिए कुछ भी न छोड़ना परले सिरे की बेइन्साफी होती। पढ़ा-लिखा बे-ऐब लड़का है, जिस दिन भां टिक कर बैठ गया, तुम से दुगुना कमा लेगा।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारे भला करे ! (चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) मुझे क्या मालूम था कि त्रिलोक और उसके

आदि मार्ग

पिता ने जो कुछ कहा, वह सब ऊपर की बातें थीं। उनकी आँखें तो मोटर और मकान पर लगी थीं। ज्यों ही रानो घर गयी, उसे सुनना पड़ा कि वह एक कंजूस बाप की बेटी है, उसकी सास ने, उसके ससुर ने, उसकी जेठानियाँ और ननदों ने उसे दहेज की कमी के ताने दिये, त्रिलोक ने कई बार उन लड़कियों की चर्चा की जिनके पिता उसे कहीं अधिक दहेज देने को तैयार थे, या जो ज्यादा पढ़ी लिखी सभ्य.....

(अचानक काल-बेल बजती है ।)

ताराचंद : (अपनी बात जारी रखते हुए) सुन्दर, सुशील या विनम्र थीं ।

(काल-बेल फिर बजती है ।)

— : (उच्च स्वर में) अरे सन्तू, देख कौन है ? बैठाना बाहर बरामदे में ! (शिवराम से) वह कुछ भी कहती या करती, उसे किसी न किसी लड़की या उसके रिश्तेदारों की बात सुननी पड़ती । उसे इतना तंग किया गया कि वह यहां आ गयी । तब मैंने उसे समझा-बुझा कर वापस भेज दिया । समझाया कि बेटी, पति जिस हाल में रखे, उसी में रहना चाहिए और ससुराल के दोष गिनने के बदले गुण ढूँढने चाहिएँ । और मैं जानता हूँ, रानो ने अपनी तरफ से किसी तरह की शिकायत का अवसर नहीं दिया । मुझे क्या

आदि मार्ग

मालूम था कि ब्राह्मणों के भेस में ये लोग भेड़िये हैं ! लेकिन शिवराम, जो भी हां, लड़की की ठीक जगह तो उसकी ससुराल ही है। तुम ज़रा कोशिश कर देखो। मुझे मकान या मोटर की चिन्ता नहीं। रानो के लिए मैं इनका प्रबन्ध कर दूँगा।

पूरन : (बागीचे की ओर से आता हुआ) पिता जी, राय सरदारीलाल आये हैं।

ताराचंद : (घबरा कर उठते हुए) तो उन्हें ले आये हांते।

पूरन : जी उन्होंने कहा—“मैं यहीं बरामदे में बैठा हूँ, धूप बड़ी प्यारी लग रही है !”

शिवराम : अच्छा भाई, तो मैं चला। त्रिलोक से आज ही मिलूँगा।

ताराचंद : अरे भाई चलो ज़रा धूप में बैठते हैं।

(शिवराम को साथ लिये चलते हैं।)

— : (जाते जाते पूरन से) सन्तू आये तो हुक्का बाहर भिजवा देना पूरन।

पूरन : जी बहुत अच्छा।

[चले जाते हैं रानी तेज़ तेज़ आती है और भाई के गले लग जाती है।]

रानी : (हँसे हुए गले से) पूरन !

पूरन : (उसकी पीठ को थपथपाते हुए) क्यों रानो, क्या बात है ?

रानी : पिता जी मुझे फिर वहाँ भेजना चाहते हैं,

आदि मार्ग

तुम्हीं कहो—मैं क्या करूँगी वहाँ जा कर ? क्या इस तरह उनके लोभ का पेट भरने से मेरा घरेलू जीवन सुखी हो सकेगा ?

पूरन : तुम चिन्ता न करो रानो, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई तुम्हें वहाँ नहीं भेज सकता ।

रानी : (हँधे हुए गले से) पूरन, भैया !

पूरन : (उसकी पोठ थपथपाते हुए) मैं कहता हूँ तुम ज़रा भी न घबराओ ।

रानी : पिता जी दूसरों से कुछ नहीं कहते, किन्तु अपने मन में वे भी मुझे कम दोषी नहीं समझते (अचानक पूरन की आँखों में देखते हुए) एक बात पूछूँ ?

पूरन : कहो !

रानी : क्या तुम भी मुझे ही दोषी समझते हो ?

पूरन : दोषी, कभी नहीं ! मुझे तो इस बात का गर्व है कि तुमने अपने स्वाभिमान की रक्षा की ।

रानी : मैं उस दम घोटने वाले वातावरण में किस तरह रह सकती थी ? मुझे पिता जी का डर न होता तो मैं कभी की आ जाती । मुझे भय था, वे मुझे फिर उसी नरक में जाने को कहेंगे । पहली बार जब मैं आयी थी तो जानते हो, उन्होंने कितना शोर मचाया था । उस वक़्त मैं समझती थी, वे लोग अपनी ग़लती मान जायेंगे, इसलिए मैंने पिता जी से सब बातें न कही थीं, लेकिन इस बार सब कुछ बता देने पर भी वे मुझे उसी

आदि मार्ग

नरक में भेजने का यत्न कर रहे हैं ।

पूरन : तुम किसी तरह की चिन्ता न करो । पिता जी पति का पत्नी का परमेश्वर समझते हों तो समझें, मैं ऐसा नहीं समझता । मेरे निकट पति पत्नी का परमात्मा नहीं, उसका साथी है और उस साथ को निश्चाहने का सारा उत्तरदायित्व पत्नी ही पर नहीं, पति पर भा है !

[पंडित ताराचंद और राय सरदारीलाल बातें करते हुए प्रवेश करते हैं ।]

ताराचंद : अजीब मौसम है यह भी सरदारीलाल, धूप में बैठो तो गर्मी लगती है और छाया में बैठो तो ठंडक (हँसते हैं) अभी दो मिनट पहले धूप कितनी प्यारी लग रही थी, लेकिन इतने ही में सिर चकराने लगा (पूरन से) ज़रा सन्तू को भेजो पूरन, हुक्का ताज़ा कर जाय । और देखो बाहर कोई तुम से मिलने आया है ।

पूरन : जी !

(जाता है । रानी भी जाने लगती है ।)

ताराचंद : रानो बेटा, तुम्हारे चाचा आये हैं ।

रानी : (मुह कर) चाचा जी प्रणाम !

सरदारीलाल : (बैठते हुए) जीती रहो बेटा ! सोहागवती बनो और अपने घर सुखी रहो !

(रानी लजाती हुई चली जाती है ।)

आदि मार्ग

ताराचंद : (बैठते हुए) तुमने देखा सरदारीलाल, रानों कितनी दुबली हो गयी है। पहले से आधी भी नहीं रहा। तुम एक बार कांशिश तो कर देखो। मैं कहता हूँ यह जब तक यहां है, मैं कोई काम नहीं कर सकता।

सरदारीलाल : मैं ने तुम से कह दिया, मैं पूरा जतन करूँगा।

[सन्तु आता है और हुक्का उठा कर ले जाता है।]

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे ! रानी जैसा मेरी बेटी है सरदारीलाल, वैसी ही तुम्हारी है। मैं तो सच, पछता रहा हूँ वहां इसका ब्याह कर के, पर जो हो चुका, हो चुका। मैं नहीं चाहता कि बात अब और बढ़े। किसी ने कहा है—आंख आंभल, पहाड़ ओभल—दूर रहे तो दूर हो जायेंगे। मैं जानता हूँ, त्रिलोक रानी को पसन्द करता है। ब्याह से पहले उसने उसे देख भी लिया था। उसे जिस बात की शिकायत है वह मैं दूर कर दूँगा। मेरी बस यही इच्छा है कि वह उसे आदर-सम्मान से रखे।

(राज उदास-उदास आती है।)

राज : (अपनी उदासी को छिपाते और हँसने की चेष्टा करते हुए) पिता जी प्रणाम ! चाचा जी प्रणाम !

ताराचंद : अरे राजी ! (उठ कर प्यार से उसके सिर पर हाथ

आदि मार्ग

केरते हुए) कहो बेटी, प्रसन्न तो हो ?

सरदारीलाल : अच्छा भाई, मैं अब चलता हूँ ।

ताराचंद : अरे भाई ठहरो । मैं भी चलता हूँ तुम्हारे साथ !
कम से कम दरवाजे तक तो पहुँचा आऊँ ।

सरदारीलाल : (उठते हैं) यह शिष्टाचार रहने दो ।

ताराचंद : तुमने राजी के प्रणाम का उत्तर ही नहीं दिया
सरदारीलाल !

सरदारीलाल : (मुड़ कर) जीती रहो, जीती रहो बेटी ?

ताराचंद : (उठते हुए और राजी के कंधे पर हाथ रखे उसे भी
साथ साथ ले जाते हुए) राजी !

राज : जी पिता जी !

ताराचंद : यह तुम इतनी दुबली क्यों हो गयी हो ?

राज : (दुख को दबाते और मुस्कराने की कोशिश करते हुए)
जी नहीं, मैं तो पहले से मोटी हो गयी हूँ ।

ताराचंद : (चलते चलते क्षण भर रुक कर) तुम्हारा सामान
कहाँ है ?

राज : टूट्ट है. सो बाहर बरामदे में पड़ा है ।

ताराचंद : मदन नहीं आया ?

राज : नहीं, मैं अपने देवर के साथ आयी हूँ ।

ताराचंद : तो कहाँ है वह, साथ क्यों नहीं लायी ?

राज : जी उसे जल्दी थी । मुझे यहाँ छोड़ कर स्कूल
चला गया है । जीजी कहाँ है ?

ताराचंद : यहीं थी, शायद उधर आंगन में हो !

राज : और भैया ?

आदि मार्ग

ताराचंद : वह भी उधर बागीचे में होगा (उसकी पीठ को थपथपाते हुए) और तो सब प्रसन्न हैं, तुम्हारे सास ससुर.....

राज : (चलते चलते शरमा कर) जी !

ताराचंद : (उसे छोड़ कर सरदारीलाल के कन्धे पर हाथ रख कर चलते हुए) बड़े भले लोग हैं सरदारीलाल ! राजी के ससुर सीधे-साधे, भोले-भाले आदमी हैं—नेकखयाल और धर्म-परायण ! घमंड तो उन्हें बू तक नहीं गया। जब मैं पहले-पहल राजी के लिए उनसे मिला तो कहने लगे (रुक कर) हमें लेन-देन में विश्वास नहीं पंडित जी। हम तो आप को चाहते हैं। आप हमारे हो गये तो और क्या चाहिए (फिर चल पड़ते हैं) मैं तो ऐसे ही लोगों को पसन्द करता हूँ। और भाई मैंने फैसला कर लिया है कि त्रिलोक के नाम हो या न हो, पर मदन के नाम एक मकान जरूर कर दूंगा। लड़का तो बेचारा गाय है।

(चबूतरे के दरवाजे से निकल जाते हैं।)

राज : (अपने पिता की अन्तिम बात सुन कर रुकती है, मुड़ कर जाते हुए अपने पिता को देखती है। ओंठों पर तिक्त व्यंग्यमयी मुस्कान फैल जाती है) बेचारा गाय !

आदि मार्ग

[धम्म से वहीं आंगन के दरवाजे के पास
कौच में धँस जाती है। सन्तू हुक्का ताज़ा करके
लाता है।]

सन्तू : अरे राज है ! कहो बेटा कब आयी ?

राज : अभी आ रही हूँ सन्तू।

(बाग़ के दरवाजे से पूरन भागा आता है।)

पूरन : हैलो राजी !

राज : भैया.....

(पूरन के गले से लिपट जाती है।)

पूरन : पास से निकल गयी और मुझे देखा तक नहीं
(जब उसके मुँह को देखता है तो चौंकता है) अरे
तुम तो पीली हो गयी हो। हल्दी खाती रही हो
या (हँस कर) जीजा जी ने.....

राज : (पीड़ा-मिश्रित-क्रोध से) भैया !

पूरन : अच्छा, अच्छा भाई, (पीठ थपथपाता है) नाराज
क्यों होती हो जीजा जी का नाम सुन कर !
हमारी लाल गोरी बहिन को लेके हल्दी सी पीली
कर दिया और हम इतना भी न कहें कि.....

राज : भैया ! तुम कभी न मानोगे !

पूरन : अच्छा भाई, बिगड़ती क्यों हो ? (रानी को आवाज़
देता है) रानी, देखो राजी आयी है (सन्तू से,
जो हुक्का रख कर जा रहा है) सन्तू, ज़रा रानी
को भेज और राज का ट्रंक उठा कर भीतर रख,
बाहर बरामदे में पड़ा है।

आदि मार्ग

सन्तू : (जाते जाते) जी बहुत अच्छा !

(आँगन के दरवाज़े से रानी भागी आती है ।)

रानी : (राज से गले मिलते हुए) अरे तू इधर बैठक में क्या गोबरगणेश बनी बैठी है, उधर क्यों नहीं चली आयी ?

राज : पिता जी और चाचा सरदारीलाल बैठे थे इसलिए ।

(काल-बेल बज उठती है ।)

पूरन : (असंतोष से) यह इतवार का दिन तो एक मुसीबत बन गया है । सुबह से जो यह काल-बेल बजनी शुरू हांती है तो....

[काल- बेल फिर बजती है और पूरन 'जी आया !' कहता हुआ भाग जाता है ।]

राज : (रानो के गले से चिमटती हुई हँधे-स्वर से) जीजी !

[रानी उसकी पीठ थपथपाती है । राजी धीरे धीरे रोने लगती है ।]

रानी : अरे !.....बात क्या है ?.....राजो ! क्यों ?

राज : (और भी चिमटते हुए) जीजी !

(और भी ज़ोर से सिसकने लगती है ।)

आदि मार्ग

रानी : क्यों राजो क्या बात है ?

राज : (आँसू पोंछते हुए तनिक सम्हल कर) बात क्या होगी, योंही तुम्हें देखकर मन भर आया । कहो त्रिलोक जीजा जी आये ?

रानी : (व्यंग्य से हँस कर) आ गये ! तुम अपनी कहो, तुम्हें क्या दुख है ?

राज : नहीं जीजी, मैं हर तरह से सुखी हूँ ।

रानी : (तनिक हँस कर । उसे साथ लिये हुए रंग मंच के किनारे आ जाती है) सुख की कोई झलक तो तुम्हारे मुख पर दिखायी नहीं देती । (दोनों हाथ उसके कंधों पर रखते हुए) देखो राजो, मुझ से न छिपाओ, मैं सब भुगत चुकी हूँ ।

राज : कुछ भी तो नहीं जीजी !

रानी : क्या तुम यह सब मेरी ओर देख कर कह सकती हो ?

राज : (मुस्कराने का असफल प्रयास करते हुए) क्यों ?

रानी : मुस्कान में पीड़ा को छिपाने की कोशिश न करो राजो, तुम्हारी आंखें तो डबडबा रही हैं ।

राज : (भरे हुए गले से) जीजी !

(सहसा रानी के गले से चिमट जाती है ।)

रानी : (उसकी पीठ थपथपाते हुए, दीर्घ-निश्वास भर कर) संसार भर में व्याह खी के लिए सुख-शान्ति का सन्देश लाता है, लेकिन हमारी गुलामी के बन्धन इसके बाद और भी मजबूत हो जाते हैं !

आदि मार्ग

(राज सिसकती है) बस बस, दुख का दिल में न छिपाओ बहिन, घाव कर देता है, और कुछ समय बाद वही घाव नासूर बन जाता है। क्या सास तंग करती है ?

राज : नहीं, वे बेचारी तो कभी कुछ नहीं कहतीं।

रानी : ससुर ?

राज : वे तो देवता हैं !

रानी : ननदें ?

राज : वे न होतीं तो अब तक मैं शायद खत्म हो चुकी होती।

रानी : तो फिर.....तो फिर तुम्हारे.....

(राज बहिन के गले से चिमट कर सिसकने लगती है।)

— : परन्तु प्रोफेसर मदन तो पढ़े-लिखे आदमी हैं।
क्या बात है, कह डालो !

(राज चुपचाप सिसके जाती है।)

— : मुझसे न कहोगी तो और किससे कहोगी.....
(राज सिसके जाती है) ...कुछ कहो भी। प्रोफेसर साहब तो बड़े हँस-मुख और रसीले आदमी हैं।

(उसे ले जाकर कौच पर बैठा देती है।)

राज : (आँसू पोंछते हुए, धीरे धीरे) सुनती हूँ बड़े हँस-मुख थे। ठहाके मारते थे तो मकान गूँज उठता था. लेकिन मैंने उनका ठहाका कभी नहीं सुना।

आदि मार्ग

मुस्कराते हैं, पर उस मुस्कान में उल्लास का तो कहीं ढूँढे से भी पता नहीं चलता ।

रानी : लेकिन वे तो.....ब्याह में तो.....

राज : एक दिन मैंने पूछा—‘सुनती हूँ आप खूब हँसते थे, ठहाके मारते थे, मैंने तो एक भी नहीं सुना !’—तब ठहाका मार कर हँस दिये—खाली, खोखला, नीरस ठहाका !

रानी : समझने की कोशिश करते हुए) हूँ !

(स्वयं भी कौच के बाजू पर बैठ जाती है ।)

राज : कहीं हँस भी रहे होते और मैं चली जाती तो उनकी हँसी तत्काल बन्द हो जाती । काले काले से मेघ उनके मुख पर घिर आते । फिर जो वे मुस्कराने भी तो उनकी मुस्कान कहीं योजनों दूर से आने वाली थकी हागी परदेसिन सी दिखायी देती ।

रानी : उन्होंने तुम्हें पसन्द नहीं किया ।

राज : सुनती हूँ किसी बहुत पढ़ी-लिखी लड़की से ब्याह करना चाहते थे, किन्तु एक तो उस लड़की के माता-पिता न थे, दूसरे वह ब्राह्मण न थी, इसलिए इनके माता पिता तैयार न हुए । इन्होंने बहुतेरा समझाया, पर माँ ने उन सब कष्टों का वास्ता दिलाया जो इन्हें पाल-पोस कर बड़ा करने में उसने सहे थे और पिता ने उन मनीआर्डरों की रसीदों का ढेर इनके सामने

आदि मार्ग

लगा दिया जो इनकी शिक्षा के निमित्त वे हर महीने भेजते रहे थे। बारह हजार की रसीदें थीं और वे चाहते थे कि उनका लड़का उनकी इच्छानुसार शादी करे !

रानी : (व्यंग्य से) और लोग माता-पिता की ममता के गात गाते हैं

[उठकर कमरे का एक चक्कर लगाती है और फिर उसके पास आकर बैठ जाती है।]

— : तो उन्होंने तुम्हें पन्सद नहीं किया ?

राज : मैं क्या जानूँ जीजी ? ऐसा लगता है जैसे वे उस लड़की को भुला नहीं सके !

रानी : तुम उनका मन बहलाने की कोशिश करती !

राज : मैंने लाख कोशिश की, पर असफल रही। उनके पास जाती तो ऐसे बैठे रहते जैसे मुझ से कोसों दूर हों। बातें करते तो मालूम होता, जैसे मुझ से नहीं, शून्य से बातें कर रहे हैं। लेटते तो लगता जैसे बर्फ के पानी में नहा कर लेटे हैं।

रानी : (केवल दीर्घ-निश्वास लेती है) हैं.....हूँ.....

(उठकर कमरे में घूमने लगती है।)

राज : हाँ, जब मैं रोती तो मुझे बाहों में भर कर प्यार करने लगते। कहते—तुम अभागी हो राज, मैं भी आभागा हूँ और दर्शनो भी.....

रानी : दर्शनों कौन ?

आदि मार्ग

राज : वही लड़की जिससे वे शादी करना चाहते थे ।
पूरा नाम सुदर्शन है । एम० ए० है, उसने अभी
उनका पीछा नहीं छोड़ा ।

रानी : अजीब बेशरम लड़की है !

राज : कभी जब मैं कहती—आप जिसे चाहें शौक से
प्यार करें, पर मुझे भी न ठुकरायें, तो मुझे बाहों
में भींच लेते, पर साफ लगता जैसे मन से नहीं
मेरे रोने से मजबूर होकर प्यार करते हैं ।
और कभी इस तरह प्यार करते करते अपने
बाल नोचने लगते । कहते—मैं कायर हूँ,
कायर ! माता पिता के भय से मैंने अपना और
तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया । और फिर रोने
लगते, उस समय जीजी, न जाने मेरे जी को
क्या होने सा लगता, मैं उन्हें बाहों में भर लेती ।
पर मेरे स्पर्श में तो जैसे हजार बिच्छुओं के डंक
हों, वे हड़बड़ा कर उठ बैठते । मुझे परे हटा
देते । पागलों की तरह चिल्ला उठते—तुम
मुझसे क्यों चिमटती हो राज ? तुम्हें मुझको
छोड़ कर चले जाना चाहिए, तुम्हें मेरा कोई
काम न करना चाहिए । (दीर्घ-निश्वास लेती है)
लेकिन जीजी, न जाने क्यों, जितना वे मुझसे
भागने की कोशिश करते, उतना ही मैं उनके
निकट रहना चाहती ।

रानी : (थकी सी आकर उसके पास कौच पर बैठ जाती
है) तो अब वे तुम्हारे पास नहीं आते ।

आदि मार्ग

राज : नहीं, कुछ दिन पहले तक निरन्तर आते थे, पर जब भी आते ऐसा लगता जैसे बँधे-बँधे आये हैं.....

रानी : (सिर्फ़ लम्बी सांस लेती है) हैं.....

राज : (अपनी बात जारी रखते हुए) एक दिन कहते थे—
क्यों न हम अभी कुछ देर दो मित्रों की तरह रहें ! धीरे-धीरे हम एक दूसरे को समझ जायेंगे । एक दूसरे के गुणों को पहचान लेंगे । फिर हम पति-पत्नी की तरह रहेंगे—पति-पत्नी की तरह ऐसी जिन्दगी बितायेंगे जिसका हर नया दिन थकन और उकताहट लाने के बदले स्नेह और उल्लास लायगा ।

रानी : तुम ऐसा ही कर लेती ।

राज : मैंने कोशिश की, पर तब सासु जी ने कहा—
'तुम तो पगली हो ! वह तुमसे दूर रहना चाहता है । उस पर उस चुड़ैल ने जादू कर रखा है, उसका मन उड़ता रहता है, बाँध कर न रखोगी तो उड़ जायगा और उड़ा हुआ पंखी फिर हाथ नहीं आता ।' मैंने उन्हीं का कहा माना । जैसे वे कहती रहीं, मैं करती रही । पर इस प्रयास में जो थोड़ा बहुत बन्धन था, वह भी टूट गया ।

[रानी कुछ कहना चाहती है, किन्तु नहीं कहती । क्षण भर दोनों चुप रहती हैं । राज उठकर धीरे-धीरे कमरे में घूमने लगती है ।]

— : ज्यों ज्यों मैं उनके निकट जाने का प्रयास करती,

आदि मार्ग

वे मुझसे दूर भागते । दोपहर को उन्होंने घर आना छोड़ दिया । लंच कालेज ही मँगा लेते । शाम को भी देर से आते । धीरे-धीरे यह देर बढ़ती गयी । बहुत रात गये घर आते और चुपचाप बिस्तर पर लेट जाते । मैं चाहती उनके पाँव दबाऊँ, उनके सुख-दुख की बात पूछूँ, किन्तु मेरी तो शक्ल ही से जैसे उन्हें भय आता— 'मुझे मत छेड़ो, मुझे साने दो !' यही कहते । मैं चुपचाप रोंने लगती तो लपक कर उठ बैठते और घटों आंगन में चक्कर लगा कर गुज़ार देते । कभी चिढ़ कर कहते— 'तुम जाने किस मिट्टी की बनी हुई हो । तुम्हें स्वाभिमान बू भी नहीं गया । मैं तुमसे इतनी घृणा करता हूँ और तुम मेरे पाँव दबाना चाहती हो' !

(हताश सी तख़्त पर बैठ जाती है)

रानी : (उठ खड़ी होती है) मैं हैरान हूँ, तुमने इतनी देर यह सब कैसे सहा ! मैं तो बहुत पहले छोड़ कर चली आती ।

राज : न जाने क्यों जीजी, उनकी घृणा पर मुझे कभी क्रोध नहीं आया । जब-जब उन्होंने मुझ से घृणा का बर्ताव किया, मेरे मन सदा दया उपजी । सदा जी हुआ उनके पास जाऊँ, अपने प्यार से उनके धावों को भर दूँ । पर मैं जिसना उनके निकट जाने की कोशिश करती रही, वे दूर होते गये ।

आदि मार्ग

(गला रुँध जाता है और आँखों से आँसू बहने लगते हैं)

रानी : (उसके पास बैठते हुए, उसके कन्धे पर प्यार का हाथ फेरते हुए) राजी !

राज : (रुँधे हुए गले से) निरन्तर रोते जागते मेरी यह दशा हो गयी (सिसकी रोक कर) घर वालों से आँख मिलाते मुझे लज्जा आने लगी । ऐसा मालूम होने लगा, मानो सब मुझे दया की दृष्टि से देखते हैं जैसे उनकी यह दया धीरे धीरे घृणा में बदल रही है ।

रानी : मैं कहती हूँ तुम पहले ही क्यों न चली आयी ?

राज : आशा का एक अज्ञात सा तार जो बँधा हुआ था जीजी !

[कुछ देर चुप रहती है । रानी पूर्ववत् शून्य में देखती घूमे जाती है । दाँत उसके भिँचे हुए हैं और ज्ञात होता है, जैसे उसके मन में क्रोध का एक दुर्निवार बवंडर उठ रहा है ।]

—: परसों पता चला कि अब होस्टल ही में रहेंगे । सुपरिन्टेन्डेन्ट हो गये हैं । बस वह तार भी टूट गया । मैंने पत्र लिखकर उन्हें दो तीन मिनट के लिए बुलवाया और कहा—मेरा मन यहाँ नहीं लगता, मुझे मैके भिजवा दो ! कहने लगे—हाँ, तुम कुछ दिनों के लिए मैके हो आओ ! और चुपचाप उन्होंने मेरी सब चीजें ट्रंक में

आदि मार्ग

भर दी, एक छल्ला तक सास के पास न रहने दिया और छांटे भाई से कहा कि वह मुझे छोड़ आये। उसके बाद जैसे आये थे, वैसे चले गये। न उन्होंने मुझसे कुछ कहा और न मैं ही उनसे कुछ पूछ सकी।

गनी : सास ने रोका नहीं ?

राज : उन्होंने बहुतेरा कहा। उनकी ओर देखती तो वहाँ से हिलने का जी न चाहता। मैं तो उनकी सेवा में जीवन भर पड़ी रहती, किन्तु वहाँ एक वही तो नहीं, दूसरे भी हैं और उन सब की नज़रों का सामना करना मेरे बस की बात नहीं।

[वृजनाथ और ताराचंद बातें करते हुए आते हैं।]

ताराचंद : तुम ज़रूर कोशिश कर देखो वृजनाथ। तुम इसके पिता के घनिष्ठ मित्र हो। तुम्हारा वह बड़ा आदर करता है, तुम्हारी हर बात मानता है। रानी तुम्हारी भी तो बेटी है।

रानी : चलो आँगन में चलकर बैठें।

[दोनों चली जाती हैं। ताराचंद आकर तख्त पर बैठते हैं और वृजनाथ कौच पर।]

ताराचंद : (हुक्का गुड़-गुड़ा कर) यह चिल्म तो बुझ गयी। सन्तू, ओ सन्तू !

सन्तू : (आँगन से) जी सरकार !

आदि मार्ग

(भागा आता है)

ताराचंद : यह हुक्का ताज्जा नहीं किया तू ने ? चिल्म तो बिल्कुल ठंडी पड़ी है !

सन्तू : मैं तो ताज्जा करके रख गया था । सरकार ही चले गये थे । अभी आता हूँ ।

(चिल्म लेकर चला जाता है ।)

तागचंद : (खाली हुक्का गुड़गुड़ाते हुए) जब तुम्हें सब बातों का पता है वृजनाथ तो फिर कोशिश क्यों नहीं कर देखते । मैंने वृन्दावन से कह रखा है, शिवराम, सरदारीलाल और दूसरे मित्रों से भा कह रखा है, (भेद करे स्वर में) मैं स्वयं उस से यह बात नहीं कर सकता । उसे जो शिकायत है, उसे मैं दूर करने का तैयार हूँ, लेकिन यदि मैं उससे पूछूँगा तो वह इस शिकायत के अस्तित्व ही से इनकार कर देगा । रानों का फिर से बसाने के लिए तुम युक्तियाँ तो दूसरा देना, लेकिन चतुराई से इस बात की आर भी सकते कर देना कि यदि वे दोनों अलग रहेंगे तो मैं अपना एक मकान उनके नाम कर दूँगा और कुछ समय बाद मोटर भी ले दूँगा ।

वृजनाथ : हूँ ।

ताराचंद : (खाली हुक्के का कश लगा कर और खींच कर) और मुझे पूरा विश्वास है कि यदि तुम समझदारी से काम लोगे तो यह बिगड़ी हुई बात बन जायगी (और भी भेद भरे स्वर में) और

आदि मार्ग

फिर कचहरी में तुम्हारा जो प्रभाव है, उसको भी तुम काम में ला सकते हो। धमकी देना ही काफी होगा। रानो का जीवन सँवर जायगा और मैं आयु भर तुम्हारा आभार मानूँगा।

[सन्तूचिल्ल लाकर हुक्के पर रखता है। ताराचंद हुक्के के लम्बे लम्बे कश खींचते हैं।]

वृजनाथ : मैं पूरी पूरी कोशिश करूँगा, लेकिन तुम्हें विश्वास है कि और कोई बात नहीं है ?

ताराचंद : यों तो बीसियों हैं, परन्तु उन सब की तह में यही लोभ काम करता है। वह मानेगा नहीं, पर तुम ज़रा चतुराई से काम लोगे तो वह राह पर आ जायगा।

वृजनाथ : मैं आज ही उससे मिलूँगा।

ताराचंद : मुझे रानो के ब्याह में बड़ा कटु अनुभव हुआ वृजनाथ। अच्छे अच्छे यांग्य और बुद्धिमान लड़के मेरी आँखों के सामने आये, पर मैं इसी हठ पर अड़ा रहा कि लड़की अपने से बड़े घर में जाय। मैं क्या जानता था, बाहर से बड़े दिखायी देने वाले भीतर से खोखले होते हैं।

वृजनाथ : मैं तो सदा ही से इस बात के पक्ष में हूँ कि घर की अपेक्षा लड़का देखा जाय ?

ताराचंद : (एक लम्बा कश लगा कर) राजी के लिए मैंने लड़का ही देखा है। मदन के पिता बेहद गरीब

आदि मार्ग

थे। अपनी आधी पेन्शन पेशगी लेकर उन्होंने मदन को शिक्षा दिलायी और उनका सारा श्रम और त्याग सफल हुआ। एम० ए० करते ही उसे कालेज में नौकरी मिल गयी। अब वह पी० एच० डी० की तैयारी कर रहा है। इतना समझदार, हँसमुख और भला लड़का है कि पल भर जो उससे बातें करता है, उसके गुण गाने लगता है।

वृजनाथ : मुझे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि राज इतने अच्छे घर व्याही गयी।

ताराचंद : (सोल्तास) मदन तो गाय है गाय ! राज तो वहाँ सचमुच राज करेगी !!

[प्रसन्नता से हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं।

शिवराम घबरीया हुआ प्रवेश करता है।]

शिवराम : ताराचंद, तुमने सुना, तुम्हारा जमाई दूसरा ब्याह कर रहा है।

[हुक्के की नली ताराचंद के हाथ से छूट जाती है और वे उठने का प्रयास करते हैं]

ताराचंद : (आधे बैठे, आधे उठे हुए) कौन ? त्रिलोक !

शिवराम : नहीं, मदन !

[ताराचंद फिर धम्म से तख्त पर बैठ जाते हैं। अँगन से किसी के गिरने और रानों के चीखने की आवाज़ आती है।]

रानी : पिता जी..... पिता जी

शिवराम : मैं कहता हूँ तुम बैठ क्या गये हो ताराचंद, यदि

आदि मार्ग

कुछ करना चाहते हो तो अभी कार लेकर चलो। खाईवालों की धर्मशाला में हो रही है शादी। मुझे तो विष्णु पंडित से पता चला। उसका वह सिर फिरा लड़का गया है ब्याह पढ़ाने।

ताराचंद : (तत्काल उठकर) सन्तू.....सन्तू !

(सन्तू भागा आता है)

रानी : (आँगन से) पिता जी.....पिता जी.....

ताराचंद : कार ले जाओ और फ़ैक्टरी से बिजली पहलवान और कुछ दूसरे मजदूरों को लेकर खाईवालों की धर्मशाला में पहुँचो। मैं तुम्हारी कार में चलता हूँ शिवराम।

शिवराम : मैं तो पैदल ही भागा आया हूँ।

बृजनाथ : चलिए, मैं आपको अपनी कार में ले चलता हूँ।

ताराचंद : क्या यह शादी मदन के पिता की इच्छा.....

शिवराम : चलो, चलो, मैं सब बताता हूँ।

[सब जल्दी जल्दी निकल जाते हैं

रानी आँगन से चिल्लाती हुई आती है।]

रानी : (आँगन से) पिता जी.....पिता जी.....सन्तू
.....पूरन....!

(वाटिका की ओर से पूरन भागा आता है।)

पूरन : क्या बात है ? क्या बात है ?

रानी : राजी बेहोश हो गयी है। चलकर देखो तो इसके दाँत पच्चा हो गये हैं।

आदि मार्ग

[दोनों आँगन में जाते हैं, दूसरे क्षण
अचेत राजी को उठाये लाते हैं ।]

पूरन : क्या बात हुई ?

रानी : बस खड़े खड़े गिर पड़ी ।

(उसे तख्त पर लिटा देते हैं ।)

पूरन : घबराओ मत, लपक कर थोड़ा सा पानी ले
आओ ।

(रानी जाती है ।)

— : एक चमच भी लेती आना, (राज को हिलाते
हुए) राजी.....राजी.....

(राज बेसुध है ।)

— : राजी.....राजी

[उठकर बिजली का पंखा चला देता
है । रानी पानी लाती है ।]

रानी : अरे, तुमने पंखा छोड़ दिया ! यहाँ तो पहले ही
ठंड है ।

रन : तुम चिन्ता न करो । पानी लाओ, इसके मुँह
पर छीटे दूँ ।

[रानी पानी देती है । पूरन राज के
मुख पर छीटे मारता है ।]

— : राजी... .. राजी.....

(राज पूर्ववत् बिसुध है ।)

— : (फिर छीटे मारता है) राजी.....राजी

(राज हिलती नहीं, बिसुध पड़ी रहती है ।)

पूरन : ज़रा चमच दो ।

आदि मार्ग

रानी : मैं भूल गयी. अभी लायी ।

(भाग जाती है ।)

पूरन : (उसके बालों पर हाथ फेरते हुए) राज.....
राजी.....और कहती थी मैं बड़ी प्रसन्न हूँ
ससुराल में,

(रानी चमच ले आती है ।)

रानी : यह लो चमच ।

पूरन : तुम ज़रा इसकी नाक दबाओ । मैं पानी का
चमच मुँह में डालता हूँ ।

(रानी अंगूठे और तर्जनी की मदद से राज
की नाक दबाती है ।

— : (चमच भर कर मुँह में डालते हुए) यह हिस्टीरिया
का दौरा है या कुछ और ? पहले तो कभी इसे
मूर्च्छा न आयी थी ?

रानी : दाँत पचची हैं, पानी तो बह गया सारा ।

पूरन : तुम चिन्ता न करो, नाक दबाये रखो ।

[रानी बहिन की नाक दबाये रखती
है । साँस के रुक जाने से राज के दाँत खुल
जाते हैं । पूरन पानी का चमच मुँह में डालता
है । कुछ क्षण बाद राज तेज़ तेज़ साँस लेती
है । वह दूसरा चमच मुँह में डालता है ।
अचेतावस्था में गरगराहट के साथ राज पानी
पी जाती है ।]

— : (प्यार से) राजी.....राजी.....

रानी : (प्यार से) राजो.....राजो.....

आदि मार्ग

[राज पूरी तरह तो होश में नहीं आती,
किन्तु पहले उसका एक हाथ हिलता है फिर
उसकी आँखें खुल जाती हैं ।]

पूरन : (प्यार से) राजा, क्या बात थी ? चक्कर आ
गया था ?

[राज उठना चाहती है । पूरन बाँह के
सहारे से उसे उठाकर बैठा देता है ।]

— : कामरेड बिहारी आ गये, मैं उनके साथ बातों में
उलझ गया । बात क्या है ? इतनी दुबली हो रही
हो तुम । कभी शीशे में अपना मुँह नहीं देखा ?
खाने को नहीं देते रहे जीजा जी तुम्हें ?

रानी : तुम्हारे जीजा जी दूसरी शादी कर रहे हैं ।

पूरन : क्या.....कौन ?

रानी : मदन !

पूरन : मदन !

[चौंकर कर उठ खड़ा होता है, सहारा
हट जाने से राज फिर लेट जाती है ।]

रानी : अभी चचा शिवराम ने बताया । खाईवालों की
धर्मशाला में हो रही है शादी । पिता जी,
चचा शिवराम और बृजनाथ के साथ वहीं
गये हैं ।

(पूरन कौच में धँस जाता है ।)

पूरन : (थके और उदास स्वर में) मैंने पहले ही कहा
था । उड़ती उड़ती खबर सुनी थी कि प्रोफेसर
मदन दूसरी जगह शादी करना चाहते हैं ।

आदि मार्ग

रानी : एम० ए० पास लड़की है, जिसके न माता है न पिता ।

पूरन : (हताश भाव से जैसे अपने आप) शादी के लिए न माता की आवश्यकता है न पिता की ।

रानी : जाति से भी वह क्षत्री हैं ।

पूरन : जाति का भी ब्याह से कोई सम्बन्ध नहीं । हमके लिए तो केवल संगी हमदर्द और हम-खयाल होना चाहिए, जिसे हम पसन्द कर सकें, जिसके विचारों को हम पसन्द कर सकें । और मैंने पिता जी से कहा था कि आप मदन के पिता से बात करने के बदले मदन से बात कीजिए, उसके विचारों को जानिए—आपने अपनी ओर से पढ़ा-लिखा, भला, कमाऊ लड़का ढूँढ लिया, यह भी देखा उसकी क्या आवश्यकताएँ हैं? किन्तु पिता जी मुझे तो सिर फिगा और आवागर्द समझते हैं । कहने लगे—‘मैं लड़के के पिता से मिला हूँ. बड़े सज्जन हैं । अहंकार उनमें नाम को भी नहीं है । भेंट हुई तो कहने लगे—‘मैं तो आप को पाकर धन्य हो जाऊँगा ।’ मैंने कहा—‘आपने उनको आवश्यकताएँ जान लीं, उनके लड़के की आवश्यकताएँ भी तो जानिए । वह भी आपकी लड़की को पाकर धन्य होगा या नहीं ।’

राज : (दुर्बल स्वर में) क्या मैं उनकी हमदर्द नहीं ? मुझसे बढ़ कर उनका हमदर्द कौन होगा ?

आदि मार्ग

पूरन : किन्तु शायद तुम उनकी हम-खयाल नहीं। वे प्रोफेसर हैं और वह एम० ए०। दोनों एक दूसरे के विचारों को, एक दूसरे के स्वभाव को एक दूसरे की आवश्यकताओं को समझने होंगे। तुम कदाचित् उन्हें नहीं समझ सकती, और वे भी शायद तुम्हें नहीं समझ सकते। मैंने पिता जी से यही कहा था—‘आपने राजी को उच्च शिक्षा नहीं दी और उसके सबसे बड़े गुण ये हैं कि वह अच्छा खाना पका सकती है, अच्छे कपड़े सी सकती है, कई नमूनों के स्वेटर बुन सकती है, मेज़पोश और पलंगपोश काढ़ सकती है, और घर का काम बड़ी कुशलता और मितव्ययता से चला सकती है। कहीं ऐसा न हो कि उसके यही गुण वहाँ जाकर अवगुण बन जायँ, किन्तु उन्होंने मुझे डाँट दिया। कहने लगे—‘तुम्हें पढ़ा कर मैं बड़ा सुखी हो गया हूँ जो अब लड़कियों को पढ़ाऊँगा।’ मैंने कहा—‘तब इसका व्याह्र उतने पढ़े-लिखे से न कीजिए।’ कहने लगे—‘तू मेरा पुत्र है या पिता!’ (कटु व्यंग्य से) जैसे उनके पिता होने से मेरी बात गलत होगयी।

रानी : मैं पूछती हूँ पिता जी तो इतने पढ़े-लिखे नहीं, प्रोफेसर मदन तो काफ़ी पढ़े लिखे हैं। जब वे एक लड़की को चाहते थे तो उन्होंने क्यों की यहाँ शादी।

पूरन : (कन्धे झटका कर) कह नहीं सकता, किन्तु

आदि मार्ग

शायद.....

राज : (दुर्बल स्वर में) मैं जानती हूँ—माता-पिता के उकारों से उन्मत्त होने के लिए ।

रानी : (व्यंग्य से) तो फिर उन उपकारों को इतनी जल्दी क्यों भूल गये ?

राज : मैंने भी एक दिन यही पूछा था । कहने लगे—
'मेरे लिए ब्याह करना आत्म-हत्या के समान था । मैं सोचता था, मैं अपने भावों का गला घोट दूँगा, अपने भूत के लिए मर जाऊँगा, किन्तु मैं मर नहीं सका और जी भी नहीं सका । मैं अपाहिज हो गया हूँ । तुम उस मनुष्य की कल्पना करो जो आत्म-हत्या करने की चेष्टा में अपाहिज हो जाय ।'

रानी : तो अब दूसरा विवाह करके वे जी जायेंगे !

राज : वे सोचते हैं कि शायद वे अपाहिज न रहेंगे ।

रानी : इतनी सजधज से आये थे आत्म-हत्या करने ।

राज : सजधज उनके सगे-सम्बन्धियों के कारण थी ।

रानी : इतना हँसते थे, ठहाके मारते थे ।

राज : वह सब तो दिखावा था, दिल तो वे पीछे ही छोड़ आये थे ।

रानी : किन्तु तुम्हारे लिए उन्होंने क्या सोचा ? तुम्हारा भी तो उन पर कुछ अधिकार है, तुम उनकी ब्याहता पत्नी हो ।

राज : एक दिन सास के कहने पर मैं उनके पास गयी थी । उदास थके थके से वे बिस्तर पर लेटे हुए

आदि मार्ग

थे। मैंने हँस कर कहा—‘दर्शनो की बात सोच रहे हों?’ एक उदास सी मुस्कान उनके ओंठों पर फैल गयी। मैंने कहा—‘मेरा भी अधिकार है, मैं आपकी ब्याहता हूँ। इतने बरातियों के सामने, यज्ञ की अग्नि को साक्षी करके आप मुझे ब्याह लाये हैं।’ कहने लगे—‘तुम्हारे अधिकार की नींव तो केवल एक बाह्य प्रथा पर है, हृदय से उसका कोई लगाव नहीं। सुदर्शन का अधिकार मेरे हृदय से सम्बन्ध रखता है। बरातियों ने, पंडित-पुरोहितों ने, हमारे माता-पिता ने, यज्ञ की अग्नि ने हमें एक दूसरे के शरार सौंप दिये हैं, हृदय तो नहीं सौंपे।’

पूरन : यही मैं कहा करता हूँ—न जाने कितनी पत्नियाँ मन ही मन अपने संगियों से घृणा करते हुए भी प्रकट उन पर अपना सर्वस्व निछावर कर देती हैं। और न जाने कितने पात अपनी पत्नियों से तीव्र-घृणा करने के बावजूद उनसे निबाहे चले जाते हैं।

राज : कहते थे—‘मेरे मन पर सुदर्शन का अधिकार था। मैंने सोचा था, उसे वहाँ से हटा कर तुम्हें बैठा लूँगा, किन्तु मैं सफल नहीं हो सका।’

रानी : कैसी निर्लज्ज लड़की है यह दर्शनो ! जब उन्होंने उसका इतना अपमान करके तुमसे विवाह कर लिया तो वह किस प्रकार उनका पीछा पकड़े हुए हैं ? मैं जीवन भर ऐसे व्यक्ति का मुँह न देखती।

आदि मार्ग

राज : शायद वह अब भी उनसे प्रेम करती है ।

रानी : मैं लाख प्रेम करती, पर उस अपमान के बाद अपने स्वाभिमान को छोड़ कर उनके पीछे यों मारी मारी न फिरती ।

(क्षणभर के लिए सब मौन रहते हैं ।)

रानी : पर आखिर तू कंगी क्या ?

राज : जो ईश्वर चाहेगा ।

ईश्वर यही चाहता है कि पुरुष स्त्रियों पर हमेशा अत्याचार करें । मुरभाये हुए फूल या सड़े हुए फल की तरह उठाकर फेंक दें । ईश्वर !

(बरामदे से पंडित ताराचंद की आवाज़ आती है)

ताराचंद : ये सब कहने की बातें हैं वृजनाथ । इस तरह आसानी से मैं उसे नहीं छोड़ सकता । मैं राजी को इसी समय वहाँ भेज दूँगा । उसने समझा कि शायद वह इस प्रकार बचकर निकल जायगा । उसे राजी को घर में बसाना होगा ।

(प्रवेश करते हैं ।)

— : अरे, राजों क्यों इस तरह पड़ी है ? तबीयत तो ठीक है इसकी !

रानी : इसे मूर्च्छा आ गयी थी ।

ताराचंद : इस दशा में मूर्च्छा न आती तो और क्या होता (नौकर को पुकारते हैं ।) मन्तू, मन्तू

आदि मार्ग

- सन्तू : (बाहर के दरवाजे से आता हुआ) जी सरकार ?
- ताराचंद : भाग कर बाज़ार से चार छः आने का गाजर का मुरब्बा और कुछ चाँदी के वरक ले आ। यह बहुत कमज़ोर दिखायी दे रही है।
- (सन्तू 'जी सरकार' कहता हुआ भाग जाता है।)
- : (राज के सिर पर प्यार का हाथ फेरते हुए) तू किसी तरह को चिन्ता न कर बेटी। वह उस चुड़ैल के फंदे में फँस गया है। उस वेश्याने.....
- पूरन : एक भली लड़की को वेश्या कहते हुए आपको संकोच नहीं होता।
- ताराचंद : चुप रहो। वह वेश्या नहीं तो और क्या है। जो लड़की एक विवाहित पुरुष के साथ नंगे सिर, नंगे मुँह, बारीक कपड़े पहने, ओंठ-मुँह रंगे आवाज़ घूमती है; जिसे न अपना ध्यान है, न भले घराने की दूसरी लड़की का, वह वेश्या नहीं तो और क्या है? मैं कहता हूँ वेश्याओं में भी इतनी लाज-शरम होती होगी। क्यों बृजनाथ? वह उस वेश्या के चक्कर में फँस गया है, पर जल्दी ही उकता जायगा, यह मैं लिखे देता हूँ।
- बृजनाथ : यह तो एक बाहरी आकर्षण है ताराचंद, चार ही दिन में उतर जायगा।
- ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे? उसकी तो सारी पगार* इसकी एक साड़ी पर खर्च हो जायगी।

* पगार : वेतन

आदि मार्ग

- पूरन : आखिर आप क्या फ़ैसला कर आये ?
- ताराचंद : मैं मार कर भगा देता सबको पर विवाह हो चुका था । एक भी भाँवर कम रह जाती तो मैं रुकवा देता शादी । बिजली पहलवान भुरकस बनाकर रख देता सबका, किन्तु राजी का ध्यान आगया ।
- रानी : आपने मदन से पूछा नहीं कि अगर तुम्हें इसी लड़की से ब्याह करना था तो किसी दूसरी भली लड़की का जीवन क्यों नष्ट किया ।
- ताराचंद : पूछा नहीं—मेरे सवालों के मारे नाक में दम आ गया प्रोफ़ेसर साहब का । बात तक न मुँह से निकली । मैं चाहता तो साथियों समेत उन सब के हाँश ठिकाने कर देता, किन्तु पंडित उदय शंकर वहाँ पहुँच गये । अपने इस लड़के की करतूत का उन्हें भी उसी समय पता चला था । पगड़ी उतार कर उन्होंने मेरे पैरों पर रख दी और कहने लगे—‘लड़के से गलती हो गयी है । आप चिन्ता न करें, हमारी बेटी को किसी प्रकार का कष्ट न होने पायगा । कुछ दिनों की बात है, इस लड़के का जादू उतरा कि वह उसी के चरणों में जा गिरेगा ।’
- बृजनाथ : यही तो मैं कहता हूँ । जवानी के मद में लड़के कई बार ऐसी गलतियाँ कर बैठते हैं ।
- रानी : तो क्या इस ब्याह के बाद भी आप राजी को वहाँ भेजेंगे ?

आदि मार्ग

बृजनाथ : नहीं तो क्या बेटा उस चुड़ैल के पैर वहाँ जमने देंगे ? इस समय वह राजी को भी रखने के लिए तैयार है ।

पूरन : किन्तु उन्होंने राजी में कोई दोष तो बताया होगा ।

बृजनाथ : कुछ नहीं । उस पर उस लड़की का जादू सवार है । वह कहता है राजी में और मुझमें किसी प्रकार की मानसिक समता नहीं । मैंने उसे समझाया कि मानसिक समता एक महीने में नहीं हो जाती । सुदर्शन को आप एक वर्ष से जानते हैं । राजी को आप एक वर्ष दीजिए । जहाँ तक मेरा विचार है उसने यह काम अपने पिता से बदला लेने के लिए किया है ।

रानी : बदला !

बृजनाथ : वह यहाँ ब्याह न करना चाहता था, उन्होंने विवश किया । उसी के विरुद्ध एक प्रबल आक्रोश और प्रतिशोध का चिन्ह है यह शादी ।

पूरन : लेकिन इस घरेलू झगड़े में एक दूसरी निर्दोष लड़की का जीवन नष्ट करने का उन्हें क्या अधिकार है ।

रानी : और इस अपमान के बाद राजी ही क्यों वहाँ जाय ?

बृजनाथ : राजी का वह घर है । उस पर उसका अधिकार है । यदि पति एक भूल करता है तो पतिव्रता-स्त्री

आदि मार्ग

को उसे क्षमा कर देना चाहिए ।

रानी : किन्तु यदि स्त्री ऐसी गलती करती है तो क्या पति उसे क्षमा कर देता है ?

ताराचंद : रानी !

बृजनाथ : यदि राजी इस समय चली जायगी, मान-अपमान का ख्याल छोड़ विवेक से काम लेगी तो वह अपने पति को इस लड़की के चंगुल से बचा सकेगी (राजी से) देखो बेटी, तुम्हारे पति ने एक भूल की है । तुम दूसरी भूल न करना । उसकी गलती को क्षमा कर देना । उसे अपना लेना । उसे उसकी गलती की याद न दिलाना । उस लड़की को भी न कोसना—यह काम तुम अपने सास-ससुर के लिए छोड़ देना—यदि वह उस लड़की के पास जाय तो उसे न रोकना । यदि वह लड़की तुम्हारे पास आये तो उससे घृणा का व्यवहार न करना । यदि तुम यह सब करोगी तो अन्त में विजय तुम्हारी होगी । उस लड़की से वह कुछ ही दिनों में उकता जायगा ।

पूरन : किन्तु वह लड़की अब केवल दूसरी लड़की नहीं रही, उसकी व्याहता पत्नी है ।

रानी : क्या आप राजी को सौत पर भेजेंगे ?

बृजनाथ : माता कौशल्या की एक छोड़ दो सौतें थीं ।

पूरन : लेकिन दशरथ राजा थे । आप आम लोगों की बात कीजिए । और फिर कौशल्या ही कौन सी सुखी रहीं—चौदह वर्ष तक रोते रोते उनकी

आदि मार्ग

आँखें अन्धी हो गयीं। और कौन कह सकता है कि रामायण में सत्य कितना है और झूठ कितना ?

ताराचंद : (अत्याधिक क्रोध से) पूरन !

रानी : जिस व्यक्ति ने राजी का इतना तिरस्कार किया, बिना किसी दोष के दूसरा ब्याह कर लिया, उसके पास जाने को, उसकी सेवा करने को आप कहते हैं।

बृजनाथ : भगवान शंकर की भाँति हिन्दू देवियों ने कई बार जान बूझ कर विष-पान किया है।

पूरन : किन्तु मैं पूछता हूँ, विष पान क्यों आवश्यक हो ?

ताराचंद : (दुश्के की नै छोड़ कर) तो क्या तुम चाहते हो कि वह जीवन भर यहाँ बैठी जलती-कुढ़ती रहे ?

रानी : जले कुढ़ेगी क्यों, आप उसे पढ़ाइए, लिखाइए अपने पाँवों पर खड़ा होना सिखाइए।

बृजनाथ : बेटा पढ़ाना लिखाना लड़की को आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाने के लिए होता है; किन्तु ब्याह का केवल यही पहलू तो नहीं, दूसरा भी है। यदि विवाह का केवल आर्थिक पहलू ही होता तो राजे-महाराजे कभी अपनी लड़कियों के ब्याह न करते।

पूरन : राजी का दूसरा ब्याह हो सकता है।

ताराचंद : } पूरन !
राज : } भैया !

आदि मार्ग

पूरन : पुरुष एक स्त्री के होते दूसरा ब्याह कर सकता है तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती, विशेषकर पुरुष के ठुकरा देने पर ?

बृजनाथ : कानून के अनुसार हिन्दू ब्याह टूट नहीं सकता । कानून राजी को इस बात की आज्ञा न देगा ।

पूरन : प्रोफेसर मदन दे देंगे ।

राजी : (अत्यन्त पीड़ा और दुःख से, जैसे इस जिक्र ही से उसे कष्ट हो रहा हो) भैया !

ताराचंद : तुम्हें शर्म नहीं आती, अब ब्राह्मणों की लड़कियाँ वेश्याएँ बनेंगी !

पूरन : किन्तु ब्राह्मणों की लड़कियाँ क्या.....

ताराचंद : (गरज कर) चुप रहो ।

राजी : मैं जाऊँगी पिता जी । आप अभी मुझे स्वयं वहाँ जाकर छोड़ आइए ।

रानी : गीली लकड़ी की तरह तुम्हें सुलगना पसन्द है ।

राजी : मैं यहाँ भी सुलगती रहूँगी जीजी ।

(बृन्दाबन प्रसन्न-वदन प्रवेश करता है ।)

बृन्दाबन : ताराचंद बधाई हो ! लो मुँह मीठा कराओ ! और रानो को तैयार कर दो ।

ताराचंद : क्या त्रिलोक से तुम मिले ?

बृन्दाबन : मैं कहता हूँ, मैंने इस चतुराई से बात की कि वह म केवल मान गया, बल्कि रानो को लेने आ रहा है ।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे बृन्दाबन, ईश्वर तुम्हारा सदैव भला करे ! तुमने मेरे वंश को इस कलंक

आदि मार्ग

के टीके से बचा लिया। तुमने केवल रानो का जीवन ही नहीं सुधारा, मेरी सबसे बड़ी चिन्ता भी दूर कर दी। यह बताओ यह चमत्कार हुआ कैसे ?

बृन्दावन : एक दिन अपने लड़के का जिक्र करते हुए मैंने बातों में त्रिलोक से उसके ब्याह और घरेलू जीवन की बात चला दी। उसके भाग्य को सराहा कि उसे रानी जैसी भले घर की सुशील और समझदार लड़की मिली है। इस पर जल कर वह अपने वैवाहिक जीवन की असफलता का रोना रोने लगा। उसने रानी के खिलाफ शिकायतों का एक दफ्तर खोल दिया। मैंने उसे समझाया कि जहाँ परिवार इकट्ठे रहते हैं, वहाँ बहुओं के खिलाफ ये शिकायतें आम होती हैं। सौ में से शायद ही एक बहू ऐसी मिले जिसके प्रति ये शिकायतें न हों।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे !

बृन्दावन : (प्रशंसा से खुश होकर) इस पर वह भेंपा। फिर कहने लगा—इस हालत में जब कि मैंने प्रैक्टिस अभी हाल ही में शुरू की है, मेरे लिए अलग घर बसाना मुश्किल है। मैंने कहा—तुम अलग रहना चाहो तो तुम्हारे ससुर ही तुम्हारी मदद कर सकते हैं। उनका पुराना मकान कचहरी रोड पर है ! एक दिन वे जिक्र भी कर रहे थे कि शादी के मौके पर कुछ

आदि मार्ग

कारणों से मैं उसे रानी के नाम नहीं कर पाया । तुम और रानी उधर आ जाओ तो वे बड़े प्रसन्न होंगे । मकान तुम दोनों को दे देंगे, और यों भी वे हर तरह से तुम्हारी मदद करते रहेंगे ।

ताराचंद : ईश्वर तुम्हारा भला करे !

बृन्दावन : इस पर वह मान गया और कहने लगा कि असल में अस्सी प्रतिशत जोड़ों के असफल रहने का कारण ज्वाइंट केमेली है । नये घर में आकर नयी व्याही लड़कियों को अपने व्यक्तित्व का नये सिर से ढालने की बड़ी मुश्किल से दो चार होना पड़ता है । जब वे इस कोशिश में असफल होती हैं, तो उन्हें हर घड़ी सास-ननदों के ताने सहने पड़ते हैं—और मैं तुम्हें सच बताऊँ, कहने लगा—मैं तो सचमुच रानों को मन से चाहता हूँ, लेकिन माता-पिता और बहिनों के हाथों मजबूर हूँ ।

बृजनाथ : और क्या, ये अनपढ़ सास-ननदें जो न करें थोड़ा है !

बृन्दावन : बस उस दिन तो इतना कह कर मैं चला आया । आज मिलने गया तो पता चला कि इस बीच मैं बाप-बेटे में तुमुल-युद्ध हो चुका है । लड़के के इस प्रस्ताव को सुन कर कि वह अपनी पत्नी को लेकर अलग हो जायगा, पिता ने उसे बेदखल करने की धमकी दी है । इस पर वह

आदि मार्ग

भी तन गया है और उसने संकल्प किया है कि वह तंगी से गुजारा कर लेगा, किन्तु रानी को लेकर अलग हो जायेगा। मैंने उसे समझाया कि तुम्हारे ससुर तुम्हारी हर तरह से सहायता करेंगे। रानी शिक्षा पा रही है और तुम्हारी उपयुक्त संगिनी सिद्ध होगी। उसने कहा था, “मैं अभी रानी को लेने के लिए जाने की सोच रहा हूँ।” आज वह किसी समय भी रानी को लेने के लिए आ सकता है। लो, अब कराओ मुँह मीठा ताराचंद !

ताराचंद : (उठ कर उसे आज़िगन में कस लेते हैं) इस उपकार का बदला किस प्रकार चुकाऊँ भाई ! तुमने मुझे जीवन भर के लिए खरीद लिया। इन सफेद बालों की लाज रख ली तुमने बृन्दाबन ! (पूरन से) क्यों पूरन, मैं न कहता था बृन्दाबन उसे मना लेगा। बुद्धिमान यों बिगड़ी बात बना लेते हैं, और तुम कहते थे (नकल उतार कर) मैं उससे बात तक करना अपना अपमान समझता हूँ।

पूरन : मेरा अब तक यही ख्याल है।

ताराचंद : (मुँह चिढ़ाते हुए) मेरा अब तक यही ख्याल है। शरम तो नहीं आती (रानी से) चलो रानी, तैयारी करो बेटा।

रानी : आपने उन्हें मकान का लालच दिया है।

ताराचंद : लालच ! वह तो मैं तुम लोगों के नाम करने ही

आदि मार्ग

बाला था ।

रानी : (और भी दृढ़ता से) आपने उन्हें मकान का लालच दिया है ।

ताराचंद : तुम तो पागल हो । वह तो मैं तुम्हारे नाम करूँगा, किन्तु बेटा स्त्री का धन उसके पति ही का होता है । तुम और त्रिलोक कोई दो थोड़े ही हो ।

रानी : न मैं उनका घर चाहती हूँ न आपका मकान ।

ताराचंद : क्या.....!

रानी : मैं वहाँ नहीं जाना चाहती ।

ताराचंद : पागल हो गयी है ।

रानी : जिस व्यक्ति के निकट चन्द हजार के एक मकान का मोल मेरे मान से कहीं अधिक है, जो मुझे नहीं, मकान को चाहता है, मैं उस लोलुप को शकल तक नहीं देखना चाहती ।

ताराचंद : (क्रोध से) रानो !

बृन्दावन : हिन्दू देवियाँ सपने में भी कभी अपने पति के खिलाफ ऐसे शब्द नहीं कहतीं ।

पूरन : चाहे वह पति कितना ही अत्याचारी क्यों न हो ?

ताराचंद : पूरन !

बृन्दावन : तुम लोग गलत समझते हो । वह अत्याचारी नहीं, वह लोलुप भी नहीं, वह तो बेचारा गाय है । सारा दोष तो उसके माता-पिता का है ।

पूरन : (व्यंग्य से) बेचारा गाय !

बृन्दावन : रानो, वह सचमुच मैं तुम से प्रेम करता है ।

आदि मार्ग

तुम्हारा आदर करता है। तुम्हारे लिए तो वह अपने माँ-बाप तक को छोड़ने के लिए तैयार है।

रानी : मैंने कभी नहीं चाहा कि वे अपने माँ-बाप से अलग रहें, अपने माँ-बाप को छोड़ दें, किन्तु यदि इस प्रकार वे एक मकान हथिया सकें, तो इस बात का ढँढोरा पीटने में भी उन्हें संकोच न होगा। आप कहते हैं, वे मुझसे प्रेम करते हैं, यदि मकान के साथ आप उन्हें मोटर भी ले देने का वचन दें तो वे मेरी पूजा तक करने लगेंगे।

बृन्दावन : (शर्म दिलाते हुए) रानी बेटी !

रानी : मैं पूछती हूँ, इस लोलुपता का पेट आप कब तक भर सकते हैं ? और मैं ही ऐसे लालची के साथ कब तक रह सकती हूँ ?

ताराचंद : (गरज कर) तू अपने पति से घृणा करती है।

रानी : (निर्भीकता से) मेरा रोम-रोम उससे घृणा करता है।

ताराचंद : (संयम को खोकर) रानी तू बके जा रही है और मैं मौन तेरे मुँह की ओर तक रहा हूँ। तू नहीं जानती. अपने पति के विरुद्ध सपने में भी बुरी बात सोचना कितना बड़ा पाप है। तू नहीं जानती तू ने एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया है, तुझे एक ब्राह्मण माँ ने पाला है, तू किसी चांडाल के घर उत्पन्न नहीं हुई।

आदि मार्ग

- पूरन :** जहाँ तक मनुष्यता की बात है, ब्राह्मण और चांडाल में कोई अन्तर नहीं। और फिर ब्राह्मण की लड़की का दिल चांडाल की लड़की से बड़ा नहीं होता और न वह पत्थर का होता है।
- ताराचंद :** चुप रहो पूरन और अपनी फिलासफी अपने पास रखो ! (रानी से) तू ससम्भती है रानो कि अपने पिता के सम्मुख तू ऐसी अधर्म की बात करेगी और वह चुपचाप सुन लेगा।
- रानी :** आपके धर्म की बातें मैंने बहुत सुन लीं। आप का धर्म भी पुरुषों का धर्म है।
- वृन्दावन :** मैं कहता हूँ बेटी, त्रिलोक सचमुच तुम्हारा आदर करता है।
- रानी :** मैं उस व्यक्ति को आप से अधिक जानती हूँ।
- वृजनाथ :** तुम्हारे लाभ ही के लिए तो ये मकान तुम्हारे नाम कर रहे हैं बेटी !
- रानी :** आप यह समझते हैं कि ये मकान मेरे नाम करके मुझ पर कोई एहसान कर रहे हैं। ये मेरे गले में सदा के लिए दासता की बेड़ी डाल रहे हैं। मुझे ऐसे व्यक्ति के साथ रहने को विवश कर रहे हैं जिसके लिए मेरे मन में रंच मात्र भी सम्मान नहीं। ये मुझे फिर उस नरक में धकेलना चाहते हैं, जहाँ घुट-घुट कर मैं अधमरी हो गयी हूँ। ये चाहते हैं, इनके नाम पर, इनके कुल के नाम पर कोई कलंक न आये, चाहे इनकी लड़की घुट-घुट कर मर जाये।

आदि मार्ग

ताराचंद : (अत्यधिक क्रोध से) रानो !

रानी : (पूर्ववत् वृजनाथ से) मैं उस व्यक्ति के साथ दो वर्ष तक रही हूँ और जितना मैं उसे जानती हूँ, आप या चाचा जी नहीं जानते । एक मकान के लोभ में वह मुझे ले जायगा । वह मेरी प्रशंसा और खुशामद भी करेगा, किन्तु क्या इतना मोल देने के बाद इस खरीदे हुए पति को मैं पसन्द कर सकूँगी ? उसका सम्मान कर सकूँगी ? उसे पति परमेश्वर समझ सकूँगी !

ताराचंद : मालूम होता है इस निकम्मे, आवारागर्द लड़के ने तेरा भी दिमाग खराब कर दिया है । पिता के नाते मेरा यह आदेश है कि तू अपने पति के घर जायगी ।

रानी : मैं इस आदेश का पालन नहीं कर सकती ।

ताराचंद : तू अपने पति के घर जायगी या इस घर में भी न रहेगी ।

रानी : मैं इस घर को भी नमस्कार करती हूँ ।

(हाथ जोड़ कर चलने को उद्यत होती है ।)

वृन्दावन : रानो बेटा, तू कहाँ जा रही है ? तू नहीं जानती कि तू लड़की है, तू कहाँ जायगी ।

रानी : (अवलूढ़ कंठ से) जहाँ सींग समायेंगे, चली जाऊँगी, किन्तु इस घर में एक पल भी न रहूँगी ।

पूरन : इस बात की चिन्ता न कीजिए चाचा जी । रानो को कहीं और न जाना होगा । यह मेरे साथ

आदि मार्ग

जायगी। जिसे आप लोग निकम्मा और आवारा समझ रहे हैं, वह अपनी सारी आवारागर्दी छोड़कर तन-मन से परिश्रम करेगा, कमायेगा और अपनी बहिन को इस योग्य बनायेगा कि वह अपने पाँवों पर खड़ी हो सके। और अपने पिता के मकान या मोटर के बल पर नहीं, अपनी योग्यता के बल पर आदर-मान पा सके।

ताराचंद : अच्छा, तो यह आग तुम्हारी लगायी हुई है। निकल जाओ, तुम दोनों मेरे घर से निकल जाओ !

राजी : (उठकर अपने पिता को समझाते हुए) पिता जी !

पूरन : चलो रानो, इन पिताओं और पतियों में कोई अन्तर नहीं।

वृन्दावन } : ताराचंद !

वृजनाथ } : पूरन

ताराचंद : (उसी क्रोध की दशा में) चले जायँ। मेरी आँखों से दूर हो जायँ। ऐसी सन्तान से मैं निःसन्तान भला। बचपन ही से इनकी माँ मर गयी। इतनी मुसीबतों से मैंने इन्हें पाला। क्या इसीलिए कि बड़े होकर ये ऐसे निर्लज्ज और नाखलफ़ साबित हों ?

रानी : (हँधे हुए गले से) आप अन्याय करते हैं पिता जी। हम आप के उपकारों का बदला नहीं चुका सकते, लेकिन.....

ताराचंद : (चीख कर) चले जाओ ! मेरी आँखों से दूर हो

आदि मार्ग

जाओ ।

राज : (रानी की ओर बढ़ते हुए) जीजी !

रानी : (जाते जाते रुक कर) आज से हमारे मार्ग अलग-अलग होंगे राजो । मैं प्रार्थना करूँगी कि तुम सुखी रहो ।

पूरन : स्वाभिमानियों के लिए आदि-काल से यह मार्ग खुला है राजो ।

राज : मेरा मार्ग भी तो आदि है भैया ।

पूरन : भगवान तुम्हारे पाँवों को छलनी होने से बचाये ! (रानी के कन्धे पर हाथ रखते हुए) चलो रानो !

(चलते हैं)

बृन्दावन : } (उठते हुए) ताराचंद !
बृजनाथ : } (उठते हुए) पूरन !

(पर्दा एक दम गिर पड़ता है)

अंजो दीदी

पात्र

अंजली

अनिमा

मुन्नी

नीरज

वकील साहब, श्रीपत, राधू

[पर्दा श्री इन्द्र नारायण वकील की शानदार कोठी के मिले जुले डाइनिंग-ड्राइंगरूम में खुलता है। लेकिन कोठी वकील साहब को चूँकि दहेज़ में मिली है, इसलिए वह उनकी कोठी न कहलाकर उनकी बीवी श्रीमती इन्द्र नारायण की कोठी कहलाती है जो साधारणतः 'अंजली दीदी' या 'अंजो दीदी' के नाम से प्रसिद्ध है।

यह खाने और बैठने का मिला जुला कमरा बड़ा खुला और कुशादा है। दो भागों में विभक्त कर, इससे खाने और बैठने के कमरों का काम लिया जाता है। कोठी को एक अंग्रेज़ इंजीनियर ने बनवाया था और तब शनि के

आदि मार्ग

दिन यह कमरा 'बाल रूम' का भी काम देता था। पर जब शाहब और जुए के कारण कर्ज़ से लदकर इंजीनियर साहब ने कोठी बेची और अंजो दीदी के नाना ने उसे खरीद लिया तो यद्यपि उन्होंने इस कमरे से 'बाल रूम' का काम कभी नहीं लिया तो भी शेष सजावट अंग्रेजी ढंग ही की रहने दी।

बायीं ओर के आधे भाग में खाने की मेज़ और छै कुर्ियाँ लगी हैं। सामने एक बहुत खूबसूरत साइड बोर्ड है, एक कोने में तिपाई पर चिलमची रखी है और ऊपर खट्टी पर तौलिया टँगा है। छत पर बिजली का पंखा मन्थर गति से चल रहा है।

बायीं दीवार में एक दरवाज़ा है जो वकील साहब तथा नीरज के कमरों में खुलता है। उसकी चौखट के ऊपर दीवार में एक कीमती और सुन्दर कलाक अनवरत टिक टिक कर रहा है।

डाइनिंग रूम और ड्राइंग रूम के मध्य बर्मा टीक का एक कीमती फोल्डिंग पर्दा खड़ा है, जिसके फ्रेम में रेशमी कपड़ा लगा है। ड्राइंग रूम में आने का मार्ग इस पर्दे के दोनों ओर से है। घर के अंदर से आने वाले पर्दे के उधर से आते हैं और बाहर से आने वाले पर्दे के इधर से।

अंजो दीदी

ड्राइंग रूम में सामने तफ़्त और गाव तकिये लगे हैं, इधर को कौच और तिगाई लगी है। धरती पर ग़ालीचे बिछे हैं। एक दरवाज़ा दायाँ दीवार में है जो बाहर बरांडे में खुलता है। एक दरवाज़ा सामने दीवार में पर्दे के निकट है, जो रसोई घर को जाता है।

पर्दा उठते समय ड्राइंग रूम खाली है। खाने के कमरे में पाँच कुर्सियाँ मेज़ के नीचे हैं और छठी पर अनिमा (पच्चीस एक वर्ष की मंभले कद और गदराये शरीर की तन्वंगी) बैठी सम्भवतः दूसरों के आने की प्रतीक्षा में लैस बुन रही है।

दोनों कमरे निष्कलंक रूप से साफ़ हैं। प्रकट है कि उनकी सफ़ाई केवल नौकरों पर ही निर्भर नहीं, अंजो दीदी स्वयं इसमें दिनचर्या लेती हैं। हर चीज़ करीने से लगी साफ़ और स्वच्छ है। दोनों कमरों में कहीं धब्बा, जाला, या धूलि नहीं।

प्रभात की बेला है, क्लाक में आठ बजने को हैं, पर्दा उठने के बाद घड़ी में आठ की टन-टन सुनाई देती है। इसके साथ अन्दर दरवाजे से अंजो दीदी प्रवेश करती हैं और अनिमा के पास से तेज़ निकलती हुई रसोई घर के दरवाजे पर जाकर आवाज़ देती हैं :

आदि मार्ग

अंजली : मुन्नी नाश्ता रखो मेज़ पर (तनिक कड़े स्वर में)
तुम कर क्या रही हो ? आठ बजने को आये
हैं और नाश्ते का कहीं पता नहीं ।

मुन्नी : (पृष्ठ-भूमि में) बस लिये आ रही हूँ मेम
साहब ।

[अंजली फिर खट खट करती अन्दर के
दरवाज़े पर जाकर बच्चे को आवाज़ देती]

अंजली : नीरज बेटा, कपड़े बदल लिये तुम ने ।

नीरज : (पृष्ठ भूमि में) बस हो गया तैयार ममी !

अंजली : और अपने पापा से कहो, नहा कर सीधे इधर
आयें । नाश्ता कर लें, फिर चाहे जो करते रहें ।
तौलिया उनका टॉवल स्टैंड पर पड़ा है, और
कपड़े पलंग पर रखे हैं । (फिर पलटती है)
अभी तक स्नान नहीं किया और आठ बजने
का आये हैं ।

वकील साहब : (पृष्ठ भूमि में) अरे भई आया, आ.....इ.....
या, आ.....इ.....या !

अंजली : (अनिया की ओर देख कर) इनकी आदत भी
.....तुम बैठे बैठे अब तो नहीं उठीं अबो !
मैंने कहा, नाश्ते का समय हो रहा है, इन सब
को तैयार कर दूँ (हँसती हुई एक कुर्सी मेज़ के
नीचे से खींचती है ।) मैं शोर न मचाऊँ तो नाश्ते
को दस बज जायँ ।

(बैठ जाती है ।)

अंजो दीदी

[अंजली यद्यपि अग्निमा की समवयस्क है, लेकिन उससे पाँच एक वर्ष बड़ी दिखायी देती है—पतले छरहरे शरीर की दुर्बल नसों वाली युवती, जो न केवल ब्याह की चक्की में जुटी हुई है, बल्कि पूरी निष्ठा और गम्भीरता से जुटी हुई है। सुन्दर मुख पर अभी से हल्की सी लकीरें बन गयी हैं और मुस्कान के बावजूद, जो इस समय उसके ओठों पर खेनने लगी है, उसका मस्तक, मस्तिष्क की सदा तनी रहने वाली नसों का परिचय देता है।]

लेकिन इस सूक्ष्म सी मलिनता के अलावा, क्या पहरावे की सुरुचि, स्वच्छता और निर्दोषता और क्या व्यक्तित्व की स्फूर्ति, मजगता और जागरूकता—हर बात में अग्निमा को मान देती है।

अग्निमा उस मुक्त मृगी सी लगती है जो जाल के बंधन से अनभिज्ञ है। वह भी यद्यपि नहा धो कर बैठी है, पर उसके बनाव-सिंंगार और ठहरावे से पूरी बेपरवाही टपकती है।

उसके मुकाबिले में अंजली ऐसे लगती है जैसे कोई देवी, जिसके साथे पर किसी अन्तरिक विचार के कारण बल पड़ गये हैं, अभी अभी साँचे में ढल कर आयी है।]

आदि मार्ग

अनिमा : (निरन्तर लेस बुनते हुए) मैं तो हैगन रह गयी अंजो दीदी तुम्हारे यहाँ का सलाका और वक्त्र की पाबंदी देख कर ।

अंजली : (प्रशंसा से फूल कर) इस घर के कण-कण को मैंने सलीका, वक्त्र की पाबंदी और सभ्य लोगों के तौर-तरीके सिखाये हैं । वहीं तुम पहले आकर देखती—घर भूतों का डेरा बना हुआ था । इतना बड़ा मकान, यह भी तो पता न चलता था कि कौन सा कमरा खाने का है, कौन सा सोने का और कौन सा उठने-बैठने का । सभी जगह चारपाइयाँ, कपड़े और बर्तन बिखरे रहते थे ।

अनिमा : लेकिन नौकर तो.....।

अंजली : थे ! पर न उन्हें बात करने का सलीका था, न काम का तमीज़ (उपेक्षा से) गंदे, गँवार, चोर और बदतमीज़ !

अनिमा : मैं तो हैगन रह गयी सुन्नी को देख कर । नौकरानी लगती हो नहीं । मैं तो समझी जीजा जी की बहिन.....

अंजली : (सहसा मुड़ कर) हैं...ऐं...ऐं....।

अनिमा : इतनी साफ सुथरी, इतनी सुघड़, इतनी सभ्य...

अंजली : (प्रसन्न होकर) कितनी जान खपायी है उसके साथ, तुम कल्पना भी नहीं कर सकती और राधू.....

अनिमा : वह आया तो मैं समझी तुम्हारे ससु...(घबरा

अंजो दीदी

कर) कि जीजा जी के पि.....(बेतरह घबरा कर)
कि...कि...तुम्हारे कोई बुजुर्ग हैं । मैं उसके
लिए आदर से कुर्सी छोड़ कर खड़ी हो गयी ।

अंजली : बुजुर्ग.....।

अनिमा : (अपनी बातें जारी रखते हुए) वह चौंका । पर
जब तक वह कुर्सियाँ-मेज झाड़ता रहा, मुझे
बैठने का साहस नहीं हुआ । हालांकि मैं अच्छी
तरह जान गयी हूँ, वह नौकर है, पर जैसे विश्वास
नहीं होता ।

अंजली : हमारे नाना जी कहा करते थे—नौकरों को सदा
साफ-सुथरा रखना चाहिए । घर के भाग्य का
पता जैसे देहली से चलता है, वैसे ही मालिकों
के स्तर का पता नौकरों के पहरावे से लगता
है । गंदे नौकरों से नाना जी को बड़ी चिढ़ थी ।
उनके साथ रह कर मैं भी वैसी ही हो गयी ।
मैं तो चाहती हूँ कि नीरज भी सफाई-पसन्द,
सभ्य और सलीके वाला बने ।

अनिमा : बड़ा प्यारा बच्चा है नीरज, इधर से गुजरा तो
मुझे दोनों हाथ जोड़ कर ' नमस्कार ' किया ।

अंजली : (फूल कर) सभ्यता और शिष्टाचार की कमी
तुम उसमें न पाओगी । (उठती है और अन्दर के
दरवाजे पर जाकर आवाज़ देती है) हो गया
तैयार नीरू बेटे ?

नीरज : (पृष्ठ-भूमि से) जी ममी !

अंजली : (फिर पर्दे के पीछे दरवाजे पर जाकर नौकरानी को

आदि मार्ग

आवाज़ देती है) ,मुन्नी नीरू बेटे को नाश्ता दे दो ।

मुन्नी : (पृष्ठ-भूमि में) दे रही हूँ मेम साहब !

अंजली : वह हमेशा सुबह समय से उठता है; अपने डैडी के साथ सैर का जाता है; स्नान-संध्या करता है और फिर कपड़े बदल कर समय पर नाश्ते के लिए तैयार हो जाता है । हमारे नाना जी कहा करते थे—वक्त की पाबंदी सम्यता की पहली निशानी है—और नीरू काम, आराम और खेल के समय पर पूरा पूरा ध्यान रखता है । समय पर पढ़ता है, समय पर आराम करता है और समय पर खेलता है । सोने की बेला खेलते या पढ़ते या पढ़ने की बेला खेलने या सोते तुम उसे कभी न पाओगी ।

(जाकर देखती है चिलमची आदि साक़ है या नहीं ।

अनिमा : एक हमारे यहाँ के बच्चे मैं—आठ-आठ बजे तक सोते रहते हैं; कान उमेठ कर जगाना पड़ता है; महीनों स्नान नहीं करते और बदतमीज़ इतने हैं कि दूसरों का तो क्या, माता-पिता तक का आदर नहीं करते ।

अंजली : हमारे नाना जी कहा करते थे—बच्चों का शुरू ही से अच्छी आदतें डालनी चाहिएँ—इतना बड़ा हो गया है नीरू, कभी कान उमेठने या डाँटने की नौबत नहीं आयी ।

अंजो दीदी

अनिमा : मैंने पूछा—नीरज बेटा नाश्ता तो तुम हमारे साथ ही करोगे न ? कहने लगा—मैं अपनी ही मेज पर नाश्ता करता हूँ मौसी जी ।

अंजली : उसकी आलमारी, मेज, टायलेट का सामान, सोने का कमरा—सब कुछ अलग है । वह सदा अपनी मेज पर नाश्ता करता है; अपनी आलमारी में कपड़े रखता है; अपने बिस्तर में सोता है; अपनी कंधी से बाल बनाता है—अपने सब काम आप करता है । हमारे नाना जी कहा करते थे—बच्चों को अपनी मदद आप करने की आदत डालनी चाहिए.....।

अनिमा : मैं तो भई मान गयी तुम्हें । मैं खुद सोच रही हूँ, कुछ दिन तुम्हारे पास रह कर अपनी आदतें सुधारूँ । समय पर उठूँ, समय पर खाऊँ । कहीं मुझे तुम्हारे ऐसा सलीका और सुघड़ापा आ जाय.....

अंजली : हमारे नाना जी कहा करते थे—सुघड़ापा स्त्री का गहना है और सदाचार पुरुष का—और मैं चाहती हूँ, नीरज सभ्य, शिष्ट और समय-निष्ठ बने !

अनिमा : और मैं कहती हूँ अंजो, तुम अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हुई हो । अपने घर को तुमने घड़ी सा बना रखा है, सब मानो उसके पुर्जे हैं ।

अंजली : जीवन स्वयं एक महान घड़ी है । प्रातः-संध्या उसकी सूइयाँ हैं । नियम-बद्ध एक दूसरी के

आदि मार्ग

पीछे घूमती रहती हैं। मैं चाहती हूँ—मेरा घर भी घड़ी ही की तरह चले। हम सब उसके पुष्प बन जायँ और नियम-पूर्वक अपना अपना काम करते जायँ।

अनिमा : जीजा जी को तो बड़ा बुरा लगता होगा यों बँधना ?

अंजली : बुरा ! (कुर्सी पर बैठते हुए हँसती है) बड़े सिटपिटाये थे पहले-पहल. पर मैं ले ही आयी अपने ढब पर। सच कहती हूँ, मुझे नीरज पर इतनी जान नहीं खपानी पड़ी, जितनी तुम्हारे इन जीजा जी पर। कोई भी तो कल न थी सीधी। न सफ़ाई का ख्याल, न समय का। मुझे चीजों को अपनी जगह रखते देर लगती, इन्हें बखेरते देर न लगती। नहा कर बाल बनाते तो कंधी कहीं रख देते, शीशा कहीं और तौलिया कहीं। कचहरी से आकर कपड़े बदलते तो कोट कहीं फेंक देते और पतलून कहीं। सच कहती हूँ, कई हैट टूट गये। आते ही कुर्सी पर पटक देते और फिर जब बेपरवाही में बैठने लगते तो ठस !

(हँसती है ।)

अनिमा : परन्तु जीजा जी तो.....

अंजली : (मुँह बना कर) बड़े कल्चर्ड दिखायी देते हैं, कभी इधर की चीज़ उधर नहीं रखते। जी हाँ ! जानती हों, कितनी माथा-पच्ची करनी पड़ी है इनके साथ ? कितनी भूक दड़तालें की हैं ?

अजो दीदी

कितनी बार रूठ कर पीहर जा-जा बैठी हूँ ?
(हँसती हूँ) मैं जब आयी तो इनके लिहाफ़ पर
गिलाफ़ तक न था । मैंने लिहाफ़ के नीचे चादर
लगा दी । लेकिन जब भी लिहाफ़ आदते तो
चादर एक ओर होती और लिहाफ़ दूसरी ओर ।
हार कर मैंने उस लिहाफ़ के साथ ही सी दिया ।
दूसरे दिन क्या देखती हूँ—चादर लिहाफ़ के
ऊपर तैर रही है—लिहाफ़ ही जनाब ने उलटा
आद रखा था ।

(अनिमा हँसती है ।)

— : क्या कहूँ, पलंग-पोश समेत बिस्तर में घुस जाया
करते थे ।

[वकील साहब हँसते हुए प्रवेश करते हैं ।
अंजली से केवल सात दस वर्ष बड़े हैं, लेकिन
शरीर अभी से छोड़ दिया है । यों अप-टू-डेट
सूट पहने हैं । पतलून की फ़ीज़ और कोट के
कालर, लगता है, जैसे अभी प्रेस किये गये हैं ।
अंजली के साथ बैठें तो बेमेल नहीं लगते ।
उनकी बेपरवाही को सूट पूरे तौर पर छिपाये हुए
है, लेकिन जब भी हँसते हैं तो पता चल जाता
है कि वास्तव में सूट ने उन्हें वैसा जकड़ रखा
है ।

बात करते हैं तो प्रायः कंधे झटकाते हैं ।
पहले शायद विवशता-वश ऐसा कहते होंगे, पर
अब तो यह उनकी आदत बन गयी है ।]

आदि मार्ग

वकील साहब : अरे भई दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं— एक वे, जो आप भी चलते हैं और दूसरों को भी चलाते हैं—इंजन की तरह—अंजो उनमें से है। दूसरे वे, जो आप नहीं चल पाते, पर दूसरा कोई चलाये तो उस के पीछे-पीछे चले जाते हैं (हँसते हैं) गाड़ी के डिब्बों की तरह ! तो भई हम तो इस दूसरी तरह के लोगों में से हैं।

(कुर्सी खेंच कर उसमें घँस जाते हैं ।)

अनिमा : गाड़ी के डिब्बे ! (हँसती हैं) जीजा जी भी.....

वकील साहब : और अंजो जैसे चलाती है, चले जाते हैं। क्यों अंजो ! दिया कभी शिकायत का मौका हमने तुम्हें ? (हँसते हैं) दिन में तीन बार नहाते हैं; चार-चार बार हाथ-पाँव धोते हैं; कम से कम चार बार खाते हैं और पाँच बार.....

अंजली : इन नाशते को आप.....

वकील : तुम इसे नाश्ता कह लो, हम तो इसे खाना ही कहेंगे। (अपनी बात जारी रखते हुए) और पाँच बार कपड़े बदलते हैं, सफ़ाई, वक्त की पाबन्दी. सभ्य समाज के तौर-तरीके सब का पूरा-पूरा ख्याल रखते हैं(हँसते हैं) अंजो के साथ शादी करने के बाद, लगता है, जैसे हम तो अछूत थे. अंजो ने आकर हमारा उद्धार किया है।

[पूरे जोर से ठहाका मारते हैं, जिसमें अंजो की “आप तो...” और अनिमा की “जीजा जी भा...” गुम हो जाती है।]

अंजो दीदी

अंजली : (लज्जा को स्वर की तीव्रता में छिपा कर) मुन्नी,
नाशता रखो मेज़ पर !

मुन्नी : (नाशते की ट्रे लाते हुए) यह लायी मेम साहब !

[नीचे की बात चीत में मुन्नी चुपचाप
नाशते का समान मेज़ पर रखे जाती है ।]

वकील साहब : और सच कहते हैं, हमने अपने आपको सोलहो
आने अंजो के अनुरूप बना लिया है । (उपेक्षा
से मुँह बना कर) हमें खुद अब गंदे लोगों से
सख्त नफरत होती है । ये कौजदारी के वकील,
आठों पहर मुजरिमों के साथ रहने से खुद भी
उन्हीं जैसे लगते हैं (हँसते हैं) वही आदतें, वही
तौर-तरीके, और भई हम सच कहते हैं, कुछ
की तो शक्त भी मुजरिमों.....

अनिमा : (हँस कर) जीजा जी आपकी शक्त तो अभी
भगवान की कृपा से.....

वकील साहब : मुझे अंजो ने बचा लिया, नहीं उनके साथ
रह कर तो मेरी सूरत भी...(हँसते हैं)
सभ्यता और सदाचार तो उन्हें छू भी नहीं गये

अंजली : हमारे नाना जी कहा करते थे—सदाचार पुरुष
का भूषण है ।

वकील साहब : पर भूषण-अलंकार स्त्रियों की चीज़ समझ कर
वे इसे पास भी नहीं फटकने देते । सदा अश्लील
बातें करने में उन्हें रस मिलता है और गंदे
इतने होते हैं कि पास बैठना दूभर हो जाता है ।
जूतों समेत मेज़ पर पाँव रखे, बैठे ढकराते

आदि मा र्ग

रहते हैं (अतीव घृणा से) बदतमीज कहीं के ! और पानी के बताशे, दही-बड़े और चाट खाकर.....

अंजली : हमारे नाना जी कहा करते थे—दही-बड़े और चाट.....

वकील साहब : मैं तो निरन्तर नाना जी को दुआ दिया करता हूँ, जिन्होंने तुम्हारे द्वारा मुझे इस चटोरपने से बचा लिया। कसम ले लो जो पिछले छः वर्ष मैं चाट को मुँह भी लगाया हो। और तो और कभी नीरज.....

अंजली : मुँह लगाने देती हूँ मैं नीरज को ऐसी गंदी चीजें !

वकील साहब : जब मैं देखता हूँ कि बड़े-बड़े वकील, ऐडवोकेट दही-बड़े और पानी के बताशों जैसी निकम्मी चीजें खा-खा कर दोने वहाँ कश पर फेंक देते हैं, तो मैं नाना जी को दुआ देता हूँ, जिनकी शिक्षा, अंजो के द्वारा मुझे इस बदतमीजी से बचाये हुए है। भगवान साक्षी हैं, जो मैंने पिछले छः बरस से चाट को एक बार भी मुँह लगाया हों।

अनिमा : (हँस कर) केवल दोने देखे हैं।

(वकील साहब एक खोखला ठहाका लगाते हैं)

अंजली : अच्छा फिर हँसिएगा, पहले नारना कर लीजिए।

वकील साहब : भई मैं कहता था, कुछ देर प्रतीक्षा कर लेते। वह श्रीपत का खत आया था कि आज सुबह की गाड़ी से वह आ रहा है।

अंजली : (व्यंग्य से) आ गया श्रीपत ! इन छः बरसों में उसने कितने खत नहीं लिखे, कभी आया भी?...

अंजो दीदी

आप भी बस.....नाश्ता शुरू केजिए !...नृपति भाई का खून आना तो मैं आँखें दरवाजे से लगाये बैठी रहती, पर श्रीपत...क्या भरोसा उसका ?

वकील साहब : भई वह घुमक्कड़ आदमी है। सदा बाहर दौरों पर रहा है।

अंजली : जी दौरों पर रहा है ! जब भी इधर से गुजरा, बड़े तमतराक से लिख दिया—श्रीमान राय श्रीपत राय इस बार अवश्य अंजो दीदी के गरीब-खाने पर पधारेंगे—लेकिन सदा गुजर गये और पता भी न दिया, किस गाड़ी से गुजरे। हमारे नाना जी कहा करते थे कि श्रीपत.....

श्रीपत : (ड्राइंग-रूम की चौखट से) श्रीमान राय श्रीपत राय पधारते हैं ।

[सब चौंकते हैं । श्रीपत ड्राइंगरूम की चौखट में खड़ा है। कीमती सिल्क का कुर्ता और लट्ठे का पायजामा पहने हुए है, लेकिन कुर्ते के दो बटन खुले हैं और दानों कपड़े तनिक मैले हो रहे हैं। आयु में अंजो से दो अढ़ाई वर्ष कम है, लेकिन अंजो की तरह पतला दुबला और कमजोर नसों का व्यक्ति नहीं। खाने-पीने और मौज मनाने वाला आदमी है। लम्बा, तगड़ा और कद्रे मोटा, कलाई में कीमती घड़ी और मुँह में स्टेड एक्स्प्रेस का सिगरेट !]

वकील साहब : (उल्लास से) श्रीपत !

श्रीपत : (सिगरेट वहीं फेंक कर पैर से मसलते हुए और बढ़कर

आदि मार्ग

- वकील साहब को आलिंगन में लेते हुए) जीजा जी !
- वकील साहब : (उसे अपने आलिंगन में भींच कर) भई बड़ी उमर है तुम्हारी । अभी अंजो कह रही थी कि श्रीपत...
- अंजली : श्रीपत, क्या कर रहे हो ? धूल और पसीने से तुम्हारे कपड़े गच हो रहे हैं और तुम निपटे जा रहे हो इनके साथ । चलो नहाओ । कपड़े बदलो ! सामान कहाँ है तुम्हारा ?
- श्रीपत : अरे दीदी ! इतने बरस बाद मिले हैं जीजा जी से, तो क्या अच्छी तरह मिलें भी नहीं (फिर से लिपट जाता है ।) कहिए जीजा जी, कैसे मित्राज हैं हुजूर के ? कसम आप की, युग बीत गये आप से मिले । कहिए वकालत का क्या हाल है ? शक्ल से तो, कसम आपकी, आप जज दिखाया देते हैं । कौजदारी के वकील (अलग हो कर, एक दृष्टि वकील साहब पर नख से शिख तक डाल कर, सिर हिलाते हुए) रत्ती भर नहीं । अंजो दीदी ने शायद.....
- अंजली : चाय ठंडी हुई जा रही है । चलो नहा लो । फिर बातें करना । सामान कहाँ है तुम्हारा ?
- श्रीपत : सामान ही कौन सा है, बिस्तर पड़ा है बाहर बरामदे में ।
- अंजली : सामान नहीं, लेकिन.....
- श्रीपत : अरे आज कल सामान साथ लेकर चलने के दिन हैं ?
- अंजली : पर कपड़े.....

अंजो दीदी

- श्रीपत : एक अचकन, कुर्ता और पायजामा होगा, सां बिस्तर में बन्द है।
- अंजली : (नौकर को आवाज़ देती है) राधू.....राधू !
- राधू : (बाहर से) जी मेम साहब ! (अन्दर आकर) जी !
- अंजली : बाहर बरामदे में इनका बिस्तर पड़ा है, उठा लाओ। बाथ-रूम में नया तौलिया और साबुन रख दो। अलमारी से साबुन की नयी टिकिया ले लो। ये नहायेंगे।
- श्रीपत : तुम भी बस दीदी.....अभी चला आ रहा हूँ। पसीना तक सूखा नहीं और तुमने नहाने का नादिरशाही हुक्म जारी कर दिया। (कुर्ता उतार कर साथ की कुर्सी पर लटका देता है) ज़रा पंग्वा तेज़ कर दो दीदी, इंजन के धुएँ ने धूल और पसीने से मिल कर.....
- अंजली : अरे.....अरे.....रे.....क्या कर रहे हो श्रीपत ! तुम्हें शर्म नहीं आती ? देखो, यहाँ अन्नो बैठी है और तुमने कुर्ता उतार कर फेंक दिया। नंगे तन तुम्हें यहाँ बैठे.....
- श्रीपत : अरे दीदी ! तुम तो व्यर्थ में गृहस्थी की चक्की से अपना माथा फोड़ रही हो। तुम्हें किमी सैनिक-कोर में छोटी-मोटी जूनियर या सीनियर कमांडर हो जाना चाहिए।
- अंजली : शिष्टता तो तुम्हें छू भी नहीं गयी। अन्नो बैठी है और तुम.....

आदि मार्ग

श्रीपत : (कुर्सी घसीटते हुए) इस समय तो मैं कुर्सी पर बैठ रहा हूँ, तुम पंखा ज़रा तेज़ कर दो दीदी । यह पसीना न सूखेगा तो मैं स्नान न कर सकूँगा (हँस कर अनिमा की ओर मुड़ते हुए) कहाँ अन्नो, तुम्हें तो जैसे युगों के बाद देखा है । मैं ता, कसम तुम्हारी, पहचान भी न सका तुम्हें । सच कहना, क्या चन्द मिनट इस पंखे के नीचे मेरे बैठने पर तुम्हें कोई आपत्ति है ? (अंजली की आग्नेय दृष्टि को लक्ष्य करके) अरे दीदी ! ऐसे देख कर रही है, मानो मैं कोई भारी अपराध कर रहा हूँ । अभी कहेंगी (अंजली की नकल उतारते हुए) हमारे नाना जी कहा करते थे..... तुम्हें हमारे नाना जी कसम दीदी, क्षण भर को बिलकुल उनका ध्यान छाड़ दो और पंखे की हवा तेज़ कर दो ।

[मेज़ पर पाँव टिका कर आराम से कुर्सी पर बैठ जाता है ।]

अंजली : मैं कहती हूँ, तुम कितने गँवार हो ! यह खाने की मेज़ है और तुम यहाँ कपड़े उतार, पसीना सुखाने बैठ गये हो । कोई हद भी है बदतमीज़ी को । हमारे नाना जी.....

श्रीपत : कहा करते थे कि श्रीपत बेहद गँवार आदमी है । खाने की मेज़ पर बैठ कर पसीना सुखाता है । मैं कहता हूँ दीदी, मैं इतनी मुद्दत के बाद यहाँ आया हूँ, तुम्हारा छोटा भाई हूँ; तुम लोगों से

अंजो दीदी

मिलने की हसरत दिल में लिये, बरसों से इस महान भारत के तूल-अर्ज में भटक रहा हूँ और तुम्हें मेरा पल भर को भी यहाँ बैठना नहीं सुहाता। तुम्हारी कसम, मैं जितनी देर यहाँ रहूँगा, एक मिनट के लिए भी आप लोगों को अपनी नज़र से ओझल न हाने दूँगा।

अंजली : यही तो मैं कहता हूँ, तुम उठो, स्नान करो, फिर बैठ कर.....

श्रीपत : मैं कहता हूँ, ब्रह्मा का वाक्य और मेरा वाक्य एक बराबर है। मैंने कहा न कि एक मिनट के लिए भी आप लोगों को अपनी नज़र से ओझल न होने दूँगा। बाथ-रूम में जाने की तो बात ही दूर रही।

अंजली : (हताश भाव से) ठंडी हो गयी चाय तुम्हारी बातों में।

श्रीपत : फिर गर्म हो जायगी (नौकर को आवाज़ देता है) राधू ! ओ राधू !!

राधू : (बाहर से) जी आया साहब !

श्रीपत : (हँसकर) कुछ ही मिनट हुए हैं मुझे यहाँ आये और कितनी जल्दी तुम्हारे नौकर का नाम मुझे याद हो गया है।

(अपने आप हँसता है)

अंजली : क्या करेगा नौकर चाय का पानी गर्म कर के ?..... फिर ठंडा हो जायगा। तुम स्नान तो कर लो।

आदि मार्ग

श्रीपत : मैं कहता हूँ दीदी, चाय पीना भी कोई संध्या-वन्दन करना है कि स्नानादि की ज़रूरत हो। ज़रा गर्म-गर्म चाय का एक कप पिलाओ, जान में जान आय, स्नान की भी देखी जायगी।

अंजली : (घड़ी की ओर देखते हुए खीजकर) मैं कहती हूँ, नाश्ते का समय कब का हा गया और तुम हो कि.....

श्रीपत : यही तो कहता हूँ। बस भट पट नाश्ता कर लिया जाय (ट्रे को अपनी ओर खींचता है) सब लांग मेरे लिए क्यों बैठे रहें? भई आप सब तो नहा कर बैठे हैं, मैं नहा कर न बैठा मही (सहसा वकील साहब की ओर मुड़ कर) क्यों जीजा जी, आपका कोई आपत्ति है?

वकील साहब : (अंजली की ओर देख कर और खंखार कर) मुझे.....ए.....ए

श्रीपत : और अओ तुम्हें.....

अनिमा : (अंजली की ओर देख कर झिझकते हुए) मैं....
...ऐं....ऐं.....

श्रीपत : तो लाइए, चाय पी जाय। मुझे, आप सब की कसम, सचमुच बड़े जोरों की भूख लगी है। (तोस और बिस्कुट उठा कर खाते हुए) और नहाने में मुझे कम से कम एक घंटा लग जायगा। मेरी आदत है कि या तो मैं नहाता ही नहीं और नहाता हूँ तो महीनों की कसर एक ही दिन में निकाल देता हूँ। आप सब लांग बैठे रहेंगे मेरे लिए।

अंजो दीदी

वकील साहब : (राधू से, जो इस सम्भाषण में चुपके से आकर हाथ बाँधे आदेश की प्रतीक्षा में खड़ा है) राधू, ज़रा चाय का पानी और लाओ ! गर्म, गर्म ! यह तो ठंडा हो गया ।

श्रीपत : और फिर मैं सोचता हूँ, गर्म चाय पीने से जितना पसीना निकलना है, निकल जाय । इसके बाद स्नान करूँ । इसलिए मैं सदा नहाने से पहले नाश्ता किया करता हूँ । (टिकोड़ी उठा कर चायदानी को छूता है) चाय तो खूब गर्म है जीजा जी । राधू दूसरा पानी अलग टी-पॉट में लाओ । (राधू जाता है, श्रीपत वकील साहब के प्याले में चाय ढालता है) आप दूध तो ज्यादा नहीं लेते ? (दूध ढालता है) और चोनी ?.....

अंजली : (आगे बढ़ कर क्रोध से) श्रीपत, तुम्हें टेबल-मैनेज का भी ज्ञान नहीं । हटो, मैं बनाती हूँ चाय ।

श्रीपत : ना दीदी, चाय तो मैं अपनी सदा आप बनाता हूँ । तुम्हारी कसम, दूसरा कोई काम खुद नहीं करता, पर चाय—मैंने प्रण कर रखा है कि या मेरी पत्नी आकर बनायगी, या फिर मैं ही.....

अंजली : (भाभी के आने की सम्भवना ही से जो प्रसन्न हो जाती है) तुम करो भी शादी, लड़कियाँ तो हज़ारों.....

श्रीपत : (चाय की चुस्की लेकर) अरे दीदी ! शादी की कल्पना मैं जो आनन्द है, वह शादी में कहाँ ? (सहसा वकील साहब की ओर मूढ़ कर) जीज

जी से पूछ लो ।

अंजली : क्यों इन्हें क्या.....

वकील साहब : नहीं भाई मैं तो.....

श्रीपत : वाह जीजा जी ! आपको अपनी कसम, भगवान को साक्षी जान कर कहिए, शादी की कल्पना में ज्यादा आनन्द है या खुद शादी में ? याद है न, मैं अंजो दीदी की सगाई के सिलसिले में आप से मिलने आया था । कितना हँसते थे आप, कितने ठहाके लगाते थे, कितनी बेपरवाही थी आपके स्वभाव में ! जो जी चाहे खाते थे; जो जी चाहे करते थे; जहाँ जी चाहे जाते थे । (हँसता हं) और अब.....इतनी देर से बैठे हैं और एक ठहाका भी तो आपने नहीं लगाया । आपकी कसम, आप तो हार्डकोर्ट के जज दिखायी देते हैं (हँसता और चाय की चुस्की लेता है) हालांकि अभी आप एडवोकेट भी नहीं बने.....जब एक वकील ज नज़र आने लगे तो समझिए कि वह बुढ़ा हो गया । वकील तो जवानी का प्रतीक है (हँसता है) और जज बुढ़ापे का । कसम आपकी जीजा जी, शादी ने आपको बुढ़ा बना दिया है (स्वयं ही जोर से ठहाका लगाता है और चाय पीता है) और क्यों जीजा जी, अपना वचन तो आप नहीं भूले । पिछली बार जब हम मिले थे तो आपने कहा कि एक बार फिर 'दिलकुशा होटल' में.....

अंजो दीदी

वकील साहब : (इस बात से घबरा कर कि श्रीपत अपनी भोंक में कुछ और न बक दे, प्याला हाथ ही में लिये हुए उठ खड़े होते हैं) लो भई, मुझे तो देर हो रही है। एक मामला है जरूरी। मैं लंच पर आने की कोशिश करूँगा उसे निबटा कर। मेरी प्रतीक्षा करना।

[हाथ के प्याले को एक ही घूँट में समाप्त करके मेज़ पर रखते हुए चले जाते हैं]

अजली : हैट तो अपना लेते जाइए।

[उनके पीछे पीछे जाती है। श्रीपत चाय का दूसरा प्याला बनाता हुआ गुनगुनाना आरम्भ कर देता है।]

भरी बज्रम में राज की बात कह दी
बड़ा बेअदब हूँ, सज़ा चाहता हूँ।

[श्रीपत गुनगुना रहा है जब राधू दूसरा टी-पॉट लाता है। उसे मेज़ पर रख कर चला जाता है। अनिमा उसमें से अपना प्याला बनाती है।]

अनिमा : (अपने प्याले में चाय ढालते हुए) मैं पूछती हूँ, क्या आप किसी तरह के शिष्टाचार में विश्वास नहीं रखते ?

श्रीपत : (हँस कर) किसी तरह के भी नहीं। शिष्टाचार ब्याह का, यों कह लो, कि बंधन का प्रतीक है। उधर आपका ब्याह हुआ और इधर आपके गले में शिष्टाचार का जुआ पड़ा। ये आपकी सास हैं—इनके सामने सिर नीचा किये

आदि मार्ग

शिष्टता से, यों मुस्कराओ मानों आपके सब दाँत झड़ गये हैं । ये आपकी सलहज हैं—इनके सामने विनम्रता से ऐसे हँसो मानो आपकी बतीसी मोतियों की है । ये आपकी पत्नी हैं—आचार-व्यवहार, सदाचार और शिष्टता को मौसी ! (खूब जोर से ठहाका मारता है) मेरे विचार में आचार-व्यवहार के सभी नियम-उपनियम विवाहित लोगों के अघेड़ दिमागों की उपज हैं । इसीलिए मैं केवल व्याह की कल्पना ही करता हूँ, उसके बंधन में नहीं फँसता । (सहसा अनिमा की ओर मुड़ कर) क्यों अन्नो, क्या तुम भी शादी-वादी करना चाहती हो, या तुम्हें भी मेरी तरह व्याह के सपने देखना ही पसन्द है ?

अंजली : (वापस आते हुए तनिक क्रोध से) चलो अनिमा, चल कर डाइंग-रूम में बैठें । चाय पी ली न तुमने ?

[अनिमा प्याले को एक ही घूँट में समाप्त कर देती है ।]

— : (नौकर को आवाज़ देकर) राधू ! राधू !

राधू : (आँगन से) जी आया ! (अन्दर आकर) जी !

अंजली : राधू, यह सब उठा कर ले जा.....और मैं कहती हूँ, मेज़ को अच्छी तरह साफ़ कर दे ।

[नीचे के सम्वाद में राधू चुपचाप मालकिन के आदेश को पूरा करता है]

अंजो दीदी

— : सारी चादर खराब कर दी तुमने श्रीपत । तुम तो बच्चों से भी गये गुज़रे हो गये । नीरज अपनी मेज़ पर खाना खाता है, लेकिन मजाल है जो कभी मेज़-पोश खराब हुआ हो और तुम ऐसे हो कि.....

श्रीपत : (अपना प्याला लिये हुए कुर्सी सरका लेता है कि राधू को काम करने में सुविधा हो ।) मैं कहता हूँ दीदी, तुम जरूर सेना में भरती हो जाओ । गृहस्थी ने तुम्हारे सारे गुणों को मटियामेट कर दिया है ।

अंजली : हटो, और यह प्याला अब ख़तम करो । इस गरीब को दूसरे भी काम देखने हैं । देखो घड़ी में क्या वक़्त होने को आया है । चलो आओ उधर ड्राइंग-रूम में चल कर बैठें । यहाँ राधू सफ़ाई करेगा ।

(अनिमा उठती है)

श्रीपत : तुम चलो । मैं ज़रा यहीं आराम करूँगा । गम-गर्म चाय पीने से पसीना आ रहा है और पंखे की हवा बदन में ठंडी-ठंडी सरसराहट पैदा कर रही है.....तुम्हारी कसम, मैं तो यहाँ से उठ कर ज़न्नत में भी न जाऊँ ।

अंजली : पंखा तो उधर भी है ।

श्रीपत : पर मुझ में उठने की सकत नहीं ।

अंजली : हम तो जाते हैं, तुम बैठो यहाँ जितनी देर तुम्हारी मरजी ।

आदि मार्ग

[राधू सामान उठा कर चला जाता है ।
श्रीपत कुर्ते की जेब से सिगरेट निकाल कर
मुँह में रखता है । लेकिन दिया सिलाई शायद
उसके पास नहीं । पुनः जेबें टटोलता है । फिर
राधू का आवाज देने वाला होता है कि नीरज
अपने कमरे के दरवाजे से प्रवेश करता है ।]

नीरज दस ग्यारह वर्ष का बच्चा है ।
नीली बुशर्ट और सफ़ेद नेकर पहने, सुन्दर,
सुकुमार और सुसंस्कृत ! लेकिन चेहरा उसका
गम्भीर है । बाल-सुलभ-चंचलता का वहाँ
सर्वथा अभाव है । उसकी चाल उस बछड़े
की-सी है जिसने लगाम के साथ सभमौता कर
लिया हो ।]

नीरज : मामा जी नमस्ते ।

श्रीपत : आख.....हा ! भानजे साहब हैं । नमस्ते,
नमस्ते । कहाँ नीरू बेटे.....नीरज ही हो न
तुम ?

नीरज : जी मामा जी ?

श्रीपत : (उसे बाहों में उठा कर) अपने मामा जी के
लिए दियासलाई की डिबिया तो लाओ बेटा !

नीरज : अभी लाया मामा जी ।

[श्रीपत उसे उतार देता है । वह
दियासलाई की डिबिया लेने पर्दे के पीछे
किचन को भाग जाता है । श्रीपत फिर कुर्सी
पर बैठ कर टाँगे मेज पर रख लेता है, जिसे

अंजो दीदी

अभी राधू साफ़ करके गया है, और कुर्सी पर
झूलता हुआ गुनगुनाता है]

लट उलझी सुलझा जा रे बालम !

माथे की बिंदिया बिसर गयी है मोरी,
अपने हाथ लगा जारे बालम !

लट उलझी सुलझा जा रे बालम !!

[नीरज दियासलाई की डिविया लेकर
आता है। कुछ क्षण खड़ा गाना सुनता है।

फिर आगे बढ़ता है।]

: लीजिए मामा जी !

श्रीपत : लाओ बेटे !

[नीरज दियासलाई देकर आदर से
एक ओर खड़ा हो जाता है। श्रीपत वैसे ही
टाँगें मेज़ पर रखे दियासलाई जला कर
सिगरेट सुलगाता है और बड़े आराम से कश
खींचता है।]

नरिज : (पूर्ववत् आदर से) मामा जी, मेज़ पर टाँगें
नहीं रखा करते।

[सहसा श्रीपत की टाँगें नीचे आ जाती
हैं, फिर वह तनिक चौंक कर नीरज की ओर
देखता है और अनायास ठहाका मारता है।]

श्रीपत : (फिर टाँगें उसी प्रकार मेज़ पर रखते हुए) किसने
कहा तुम से ?

नरिज : ममी कहा करती हैं मामा जी।

आदि मार्ग

श्रीपत : वे तुम्हारे लिए कहती होंगी। तुम अभी बच्चे हो ना, जब तुम बड़े हो कर किसी के मामा बनोगे तो तुम्हें भी मेज़ पर टाँगे रख कर बैठने की आज्ञा मिल जायगी। (फिर हँसता है) कहो किस क्लास में पढ़ते हो ?

नीरज : पाँचवी में मामा जी !

श्रीपत : पढ़ लिख कर क्या बनना चाहते हो ?

नीरज : डिप्टी कमिशनर मामा जी !

श्रीपत : डिप्टी कमिशनर बनने की बात तुम्हें किसने सुझाई ?

नीरज : ममी ने मामा जी !

श्रीपत : तुम स्वयं क्या बनना चाहते हो ?

नीरज : मैं.....मैं.....मैं तो मामा जी.....

श्रीपत : यह तुम्हें हर बात के साथ 'मामा जी', 'मामा जी' कहना किमने सिखाया ?

नीरज : ममी ने कहा है कि बड़ों से बात करते समय आदर से.....

श्रीपत : तो हो चुके तुम डिप्टी कमिशनर। इतने आदर से बात करोगे तो सरकार तुम्हें पटवारी बना देगी अकड़ कर चला करो, रौब से बात किया करो और.....

नीरज : मैं तो कप्तान बनना चाहता हूँ मामा जी, पर.....

श्रीपत : कप्तान !

नीरज : क्रिकेट का कप्तान।

अंजो दीदी

श्रीपत : क्रिकेट खेलते हो ?

नीरज : जी ममी कहती हैं, बड़ा निकम्मा खेल है, चांद लग जाती है।

श्रीपत : तो फिर तुम बन चुके क्रिकेट के कप्तान। कितने घंटे खेलते हो ?

नीरज : दो घंटे !

श्रीपत : और कितना पढ़ते हो ?

नीरज : छः घंटे !

श्रीपत : छः घंटे खेला करो और दो घंटे पढ़ा करो !

नीरज : जी मैं पास कैसे हूँगा ?

श्रीपत : पास होने के लिए रोज़ बाक़ायदा दो घंटे पढ़ लेना काफ़ी है और फिर तुम पास होते रहना चाहते हो या क्रिकेट का कप्तान बनना ?

नीरज : कप्तान बनना !

श्रीपत : तो जाओ, रोज़ दो घंटे जम कर पढ़ा करो और छः घंटे डट कर खेला करो ! तुम्हारे मामा दुआ करते हैं कि भगवान् ने चाहा तो बड़े होकर तुम अवश्य क्रिकेट के कप्तान बनोगे और भारत तो क्या, संसार में नाम पाओगे।

नीरज : (गद्गद् होकर) मामा जी.....

(बढ़ कर श्रीपत से लिपट जाता है)

अंजली : (दूसरे कमरे से) नीरज !

नीरज : जी ममी !

अंजली : (कमरे में प्रवेश करते हुए) यहाँ क्या कर रहे हो ? उधर चलो अपने कमरे में। पढ़ने का समय हो

आदि मार्ग

गया है। अभी तुम्हारे मास्टर साहब आने वाले होंगे.....काम कर लिया कल का तुमने ?

नीरज : ममी, मैं तो खेलूँगा।

अंजली : (क्रोध से) क्या—आ—आ ? (उसके कन्धे को थपथपाते हुए नमी से) चलो नीरू बेटे !

नीरज : छः घंटे खेलूँगा और दो घंटे पढ़ूँगा।

अनिमा : (क्रोध से) क्या कहते हो ! (नमी से) चलो बेटा, तुम्हारे मास्टर साहब आने वाले हैं।

नीरज : मैं क्रिकेट का कप्तान बनना चाहता हूँ।

अंजली : (क्रोध को बरबस रोक कर नमी के साथ) पागल ! सिर पैर तुड़वायगा क्रिकेट का कप्तान बन कर ! तुम्हें तो डिप्टी कमिश्नर बनना है।

नीजर : मुझे डिप्टी कमिश्नर नहीं बनना। मैं तो क्रिकेट का कप्तान बनूँगा।

अंजली : (क्रोध को रोक सकने में असफल होकर) चल चल, बन लिया क्रिकेट का कप्तान, अब चल कर पढ़ ! मास्टर साहब के आने का समय हो गया है।

(उसे कान से खींचता हुई ले जाना चाहती है)

: अरे दीदी ! तुम तो नीरू बेटे का कान उखेड़ दोगी।

: (जाते जाते मुड़ कर क्रोध से) चुप रहो श्रीपत ! तुम चाहते हो, मेरा बेटा भी तुम्हारी तरह आवारा हो जाय। (फुंकारती हुई) न काम के न काज के, अढ़ाई सेर अनाज के।

[बिफरी हुई चली जाती है और जाते जाते मेज़ पर से दियासलाई की डिबिया

अंजो दीदी

उठा ले जाती है ।]

श्रीपत : अरे दीदी ! तुम तो फ़ज़ूल हो गृहस्थी की चक्की में अपनी जान खपा रही हो । तुम्हें तो कहीं सेना में छोटी-मोटी जूनियर या सीनियर कमांडर हो जाना चाहिए ।

[हँसता हुआ फिर कुर्सी पर आ बै ठत है । पहला सिगरेट निकालता है, लेकिन डिब्बिया तो अंजली जाते जाते साथ ले गयी है । इस लिए यों ही जेबें टटोल कर रह जाता है ।]

— : (अपने आप से) पनाह है दीदी से भी । दिया-सिलाई की डिब्बिया ही जाते जाते उठा कर ले गयी ।

[टाँगें मेज़ पर रख लेता है और नौकर को आवाज़ देता है ।]

— : राधू, राधू !

राधू : (दूर से) जी आया ! (क्षण भर बाद आता है) जी साहब !

श्रीपत : दियासलाई की डिब्बिया लाओ !

राधू : बहुत अच्छा साहब !

(चला जाता है । श्रीपत गुनगुनाता है)

यह दस्तूरे-ज़बाँ-बन्दी है कैसा तेरी महफ़ल में यहाँ तो बात करने को तरसती है ज़बाँ मेरी !

[श्रीपत के गाने के मध्य पर्दा गिर जाता है । क्षण भर तक गाने की ध्वनि आती रहती है, इसके बाद निस्तब्धता छा जाती है ।]

(कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है)

[श्रीपत डाइनिंग टेबल पर जूतों समेत सोया हुआ है। मेज़ की चादर गोला सा बनी उसके सिर का तकिया बनी हुई है। मेज़ क्योंकि इतनी लम्बी नहीं कि वह टाँगें पसार कर लेट सके, इसलिए उसकी एक टाँग दूसरी के घुटने पर है, लेकिन दोनों टाँगें एक ओर को झुकी हुई हैं और अलग-अलग हुआ चाहती हैं।

मेज़ के पास फ़र्श पर एक आधा ज़ता सिगरेट पड़ा है। घड़ी में बारह बज रहे हैं]

(पर्दा फिर गिर जाता है)

आदि मार्ग

[कुछ क्षण बाद पर्दा उठता है । क्लाक में तीन बज चुके हैं । डाइनिंग रूम में श्रीपत पूर्ववत् मेज़ पर सोया हुआ है, लेकिन उसके सिर के नीचे की चादर फ़र्श पर पड़ी है और पाँव भी मेज़ के नीचे लटक रहे हैं । डाइनिंग रूम में अंजली और वकील साहब बातें करते हुए प्रवेश करते हैं ।]

अंजली : आइए, अब दिखाऊँ श्रीपत को ! डाइनिंग टेबल पर सोया हुआ है ।

वकील साहब : डाइनिंग टेबल पर ! तुम क्या कह रही हो ?

अंजली : हाँ, हाँ, डाइनिंग टेबल पर ! मैंने आपको इसलिए नहीं बताया कि सुबह उसके कारण नाश्ते को नौ बज गये थे । अब बहाना न बनाती तो लंच को चार बज जाते ।

(उन्हें खाने के कमरे की ओर ले जाती हैं)

वकील साहब : अरे भई तो उसे जगाया नहीं तुमने ?

अंजली : जगाया, ऊँह ! (बेज़ारी से सिर हिलाती है) मैंने तीन बार जगाने की कोशिश की । एक बार 'ऊँ', 'ऊँ' करके सो गया । दूसरी बार सिर्फ़ करवट बदली । तीसरी बार कंधों को झुकाया तो बोला, "दीदी सो लेने दो । रात भर का जगा हुआ हूँ । थर्ड क्लास में, सकर किया है । पल भर को भी आँख नहीं लगी ।"

वकील साहब : थर्ड-क्लास में !

अंजो दीदी

- अंजली : और हमारे नौकर तक इंटर-क्लास में जाते हैं ।
- वकील साहब : सेकिंड या इंटर में शायद जगह न मिली हो ।
(पर्दे के इधर से खाने के कमरे में दाखिल होते और श्रीपत को सोये देख कर) देखो तो कैसे सो रहा है । कोई तकिया ही रख दिया होता इसके सिरहाने ।
- अंजली : बिस्तर खाला था कि बिछाऊँ, देखती हूँ कि न चादर है न तकिया और वह अचकन और पायजामा, जिसका जिक्र बड़े तमतराक से हो रहा था, गायब हैं ।
- वकील साहब : (लेटे हुए श्रीपत की ओर स्नेह तथा दया-भरी दृष्टि से देखते हुए) पर अपने तकिये तो थे ।
- अंजली : रखती कैसे, मेज़ की चादर रखी हुई थी तकिया बना कर सिरहाने । शायद करवट लेते समय गिर गयी । यह देखिए पड़ी है ।
- वकील साहब : (मेज़ के पास जाकर श्रीपत को जगाते हुए) श्रीपत, श्रीपत उठो भई.....

[श्रीपत पहले करवट बदलता है, फिर एक लम्बी 'ऊँ—ऊँह !' करता है, फिर जँभाई लेकर उठ बैठता है]

- श्रीपत : (उलटे हाथ से आँखें मलते हुए) अछाह ! जीजा जी हैं । कहिए आ गये आप ? मेरा ख्याल है मैं कुछ पल के लिए सो गया था ।
- अंजली : (मुँह बनाते हुए) कुछ पल के लिए, मालूम भी है क्या टाइम हो गया है ? तीन बज चुके हैं !

आदि मार्ग

अन्ना के कमरे में खाना खाया तुम्हारे कारण ।
यहाँ मेज़ पर तो तुम सोये हुए थे ।

श्रीपत : सोचता था, नाश्ता करके ज़रा आराम के साथ दो
एक सिगरेट “सुलगाऊँगा” लेकिन ज्यों ही मेज़ पर
टाँगे पसार कर सिगरेट पीने के मूढ़ में बैठा कि
नींद आ गयी । आप की कसम जीजा जी, यहीं
कुर्सी पर नींद आ गयी और सिगरेट
(अपने आस पास देखता है) सिगरेट वह
देखिए पड़ा है ज़रा उठाना दीदी !
(अंजली एक बार सिगरेट की ओर देख 31 फिर
क्रोध से श्रीपत की ओर देखती है) अरे दीदी !
यह कोई साँप तो नहीं जो तुम्हें काट खायगा ।
(अंजली नहीं हिलती । श्रीपत नौकर को आवाज़
देता है)

— : राधू, राधू !

राधू : (अन्दर से) जी आया—या !

श्रीपत : (वहीं से चिल्ला कर) ज़रा दियासलाई की
डिबिया लाना ।

(वकील साहब सिगरेट उठा कर श्रीपत को देते हैं)

— : असल में जीजा जी रात क्षण भर के लिए भी
आँख नहीं लगी । कुर्सी पर बैठा कि ऊँच गया ।

वकील साहब : लेकिन तुम तो मेज़ पर.....

श्रीपत : ये कमबख्त डाइनिंग टेबल की कुर्सियाँ..... ज़रा
ऊँच में एक ओर को झुका कि लुढ़क गया ।

वकील साहब : लेकिन भई बिस्तर बिछवा लेते । नहीं उधर

अंजो दादा

ड्राइंग रूम में तरुत या कोच पर सो जाते ।

(राधू प्रवेश करता है)

राधू : यह लीजिए दियासलाई की डिबिया साहब ।

श्रीपत : (वहीं बैठे बैठे सिगरेट सुलगा कर उसका कश लगाते हुए) लेकिन मैं इस मेज पर कैसे सो गया, यह मुझे स्वयं मालूम नहीं. शायद कुर्सी से गिरने पर नींद की भोंक में... ..

अंजली : (कटुता से) अच्छी जगह निकाली है तुमने सोने के लिए ।

श्रीपत : मैं अमल में कभी कभी सो जाया करता हूँ मेज पर । मैं कहता हूँ दीदी ! तुम्हें याद है ना , नाना जी की मृत्यु के बाद मैंने एक दैनिक निकालने की मूर्खता का थी । पत्र का मैनेजिंग डायरेक्टर और सम्पादक भी मैं ही था । कई बार जब रात को लीडर लिखते-लिखाते देर हो जाती, कसम तुम्हारी दीदी, पंखे के नीचे वहीं मेज पर सो जाता था । दूसरे दिन जब आँख खुलती तो बारह बजे की शिफ्ट काम पर आ चुकी होती (हँसता है) मैंने आदेश दे रखा था चपड़ासियों को कि मुझे सोते में हरगिज न जगाया जाय ।

(स्वयं ही जोर से टहाका मारता है)

अंजली : तुम्हें नींद कैसे आ जाती है सरुत खुरी मेज पर ?

श्रीपत : (हँसते हुए) तुम खूब जानती हो दीदी, तुम्हें मखमल के गदेलों पर नींद न आती थी और

आदि मार्ग

हम खुरीं चारपाई पर सो जाया करते थे । तुम्हारे कमरे के पास से भी कोई गुजरे तो तुम्हारी नींद उचट जाती थी और हमारे कानों के पास यदि ढोल भी बजते तो हमें खबर न होती थी । तुम्हारी कसम, मैं तो थर्ड में भी सो जाता, पर भीड़ कम्बख्त इतनी थी कि एक बार जा कर बैठा तो उठ कर कमर तक सीधी न कर सका ।

जंअली : लेकिन ऐसी भी क्या मुसीबत पड़ गयी कि सेकिंड छोड़ थर्ड में सफर करने लगे ? नाना जी का दिया क्या.....

श्रीपत : अब क्या बताऊँ दीदी, चला तो सेकिंड ही में था, पर मेरे डिब्बे में तो घोर सन्नाटा था । साथी मुसाफिर थे, पर मेरे लिए उनका अस्तित्व नहीं के बराबर था (हँसता है) दोनों योरोपियन, शायद अंग्रेज ! मुझ से तो क्या बोलते, बारह घंटे की यात्रा में कम्बख्तों ने आपस में भी नज़र तक न मिलायी । मैं तो ऊब गया वहाँ बैठे बैठे । तभी एक स्टेशन पर.....न जाने वह कौन सा स्टेशन था.....छोटा सा...किसी क्लब का स्टेशन !.....अब क्या कहूँ दीदी, कैसी छवि दिखायी दी ! कसम आपकी जीजा जी, बला की सुन्दर थी वह लड़की । नगरों का सौन्दर्य भी देखा है आपने (शरारत से हँसता है) पीला और बीमार ! जिसे खाने के वक़्त

अंजो दीदी

का इतना ख्याल रहता है कि खाना ही नहीं पचता.....और एक वह लड़की थी..... कुन्दन की तरह दमकता हुआ रंग और यौवन का उभार.....कसम आप की जीजा जी, पूर पर आयी हुई नदी का ज्वार

(जाश में मेज़ से नीचे उतर जाता है ।)

अंजली : ' इस अश्लील बातचीत में अपने पति की दिलचस्पी देख कर जिसके तेवर चढ़ जाते हैं—क्रोध से) मैं पूछती हूँ, आप श्रीपत की गन्दी बातें ही सुनते रहेंगे या आराम भी करेंगे । खाना खाया है, अब आराम कीजिए । फिर आपको जाना होगा ।

वकील साहब : (घबरा कर) चलो, चलो !

श्रीपत : (ठहाका लगाता है) वाह, जीजा जी ! आप पर भी अंजो दीदी का जादू चल गया । अजी साहब, यदि आपका जी बातें सुनने को चाहता है तो बातें सुनिए, सोने को चाहता है तो सोइए ।

अंजली : चलिए ! मैं कहती हूँ, इसकी बातें कभी खतम न होंगी । हमारे नाना जी कहा करते थे कि आराम की बेला.....

श्रीपत : आराम करना चाहिए ! अरे दीदी, कभी समय नियत करके भी आराम किया जा सकता है । आराम किया जाता है जब आराम को जी चाहे । जीजा जी के सोने का वक्त है और मैं

आदि मार्ग

सोकर उठा हूँ, सुला कर देख लो हमें साथ
साथ, कौन अधिक सोता है ।

(जोर से ठहाका मारता है ।)

अंजली : अच्छा हम चलते हैं । तुम उठो और नहा कर
खाना खा लो । आगम का समय है, नौकर
भी कुछ आराम कर लें । (पति से) चलिए ।

वकील साहब : तुम बिस्तर बिछवा दो अंजो, मैं आता हूँ ।

अंजली : बिस्तर तैयार है ।

वकील साहब : (वकील हैं न आगिर) तो ज़रा दफ़्तर में पंखा
रखवा दो ! छत का पंखा तो खराब है और मैं आज
वहीं सोऊँगा, सोऊँगा क्या, लेटे-लेटे आराम भी
करूँगा और एक केम के बारे में रूलिंग भी
देख लूँगा । राधू से कह दो कि खस की टट्टी पर
ज़रा पानी छिड़क दे । कमरा ठंडा न हुआ तो
मुझे नौद न आयगी ।

अंजली : (जाने हुए) जल्दी आ जाइएगा । फिर आपको
जाना होगा न चार बजे ।

(चली जाती है)

श्रीपति : (बढ़ कर वकील साहब के कंधे को थपथपाते हुए)
मैं कहता हूँ, क्या हो गया जीजा जी आपको ?
कसम आपकी, आप तो बिलकुल बदल गये ।
क्या तिलांजली दे दी जीवन के रस-रंग को
आपने ?

वकील साहब : (दीर्घ-निश्वास भरते हुए, कंधे झटका कर) अरे
भई, समझौता करना ही पड़ता है जीवन में.....!

अंजो दीदी

श्रीपत : समझौता ही किया है न आप ने ? (शरारत से आँख दबाते हुए हँसता है) समझौता ज़रूर करना चाहिए । तो फिर 'दिलकुशा' के वचन का क्या रहा ? एक शाम तो गुज़ारी जाय वहाँ । आज मेरे कुछ मित्र आ रहे हैं वहाँ शाम को ।

वकील साहब : नहीं भाई मैंने तो.....

श्रीपत : अरे जीजा जी ! अब मुझ से न उड़िए । फौजदारी के वकील और पारसाई ? (हँसता है) मुझ से समझौता नहीं हो सकता । इतने बरसों के बाद मुलाक़ात हुई है आप से ।

वकील साहब : लेकिन भई अंजो.....

श्रीपत : उसे आप समझाइए, निकालिए कोई तरकीब ।

वकील साहब : (कुछ और समीप होकर भेद-भरे स्वर में) लेकिन भई उस लड़की का क्या हुआ ?

श्रीपत : किस लड़की का ?

वकील साहब : अ-भई, वही जो तुम्हें किसी स्टेशन पर मिली थी और जिस के लिए तुम थर्ड के डिब्बे में.....

श्रीपत : (हँस कर) अरे जीजा जी ! बस तो जब मैंने उसे देखा, अपना डिब्बा छोड़ कर उसके डिब्बे में जा सवार हुआ

[अंजली हाथ में एक श्वेत चादर लिये आती है]

अंजली : (चादर मेज़ पर बिछाते हुए) आप अभी तक यहीं बातें कर रहे हैं । मैं कहती हूँ, चल कर कुछ

आदि मार्ग

आराम कर लीजिए। फिर आप को जाना होगा। और.....

वकील साहब : (घबरा कर) अरे भाई चलो.....चलो, (उसके पीछे चलते हुए) चलो !

(दोनों चले जाते हैं ।)

श्रीपत : (अपने आप हँसता है) इस घर के लोग भी पुर्जे हैं, मशीन के पुर्जे !

[कुर्सी घसोट कर बैठ जाता है और टाँगें मेज़ पर रख लेता है। मुन्नी प्रवेश करती है।]

मुन्नी : जी आप ग्याना खा लीजिए। कब से पड़ा ठंडा हो रहा है।

श्रीपत : आप.....आप.....मेरा मतलब है कि आप से मेरा परिचय नहीं। आइए बैठिए कुर्सी पर.....

मुन्नी : जी मैं यहाँ नौकरानी हूँ।

श्रीपत : खूब ! (ठहाका मारता है) और मैं समझा तुम अंजो दीदी की कोई ननद-वनद हो। क्या नाम है तुम्हारा ?

मुन्नी : जी मुझे मुन्नी कह कर पुकारते हैं।

श्रीपत : अरे मुन्नी तो नन्हीं-मुन्नी सी लड़की को कहते हैं और तुम तो कसम तुम्हारी, अब नन्हीं-मुन्नी नहीं रही हो। आओ ज़रा बैठो।

अंजो दीदी

[टाँगें मेज़ के नीचे कर लेता है। मेज़ पर कुहनियाँ टिकाकर टोड़ी हथेलियों पर रख लेता है।]

मुन्नी : जी आप खाना खा लीजिए !

श्रीपत : अजी खाने का क्या है, खाये लेते हैं। तुम ज़रा बैठो.....

मुन्नी : आप खाना खा लीजिए, हम लोगों के आराम का समय है।

श्रीपत : आराम का समय !.....आराम का समय..... कसम तुम्हारी, मैं तो पागल हो जाऊँगा। इस घर में जिसको दखो, उसके आराम का समय है। किसी नपे-तुले वक्त में आराम भी किया जा सकता है कभी ?....मुझ से अगर कहा जाय कि अब एक बज गया है, तुम्हारे सोने का वक्त है, सो जाओ ताकि दो बजे उठ सकां, तो कसम तुम्हागी, मेरी पलकें भी भारी न हों। मेरे कानों में एक ही बजे दो बजने लगें। नींद आती है जब आती है। चाहने पर कभी नहीं आती। क्यों मुन्नी, तुम्हें बँधे वक्त का यह आराम पसन्द है ?

मुन्नी : जी मैं

श्रीपत : और हमारे घर में किसी तरह का बन्धन नहीं। बात असल में यह है कि स्वर्गीय नाना जी ने अंजो दीदी के मस्तिष्क को जकड़ रखा है। वे थे भी डिक्टेटर। सदा अपनी राय दूसरों पर

आदि मार्ग

लादा करते थे.....हमारे घर में ऐसा करना महापाप समझा जाता है। कसम तुम्हारी मुन्नी, तुम चार दिन हमारे घर में रह कर तो देखो। कितनी आज़ादी है वहाँ। दिन के हर वक्त तुम्हें वहाँ कोई न कोई नौकर सोता हुआ मिलेगा। (हँसता है) जब मालिक सोते हैं तो नौकर क्यों न सोयें।

मुन्नी : जी आप खाना खा लीजिए !

श्रीपति : मैं कहता हूँ कसम तुम्हारी, मर्मा तुम्हें बड़ा पसन्द करूँगी। मैं अंजो दीदी से तुम्हें माँग लूँगा।

मुन्नी : (लटकते हुए से कृतज्ञता भरे स्वर में) जी आप की कृपा है। आप खाना.....

अंजली : (डाइंग रूम से) मुन्नी ! तुम क्या कर रही हो यहाँ (प्रवेश करते हुए) चलो जाकर आराम करो। फिर तुम्हें माँझ के नाश्ते का प्रबन्ध करना होगा। आज लंच ही को इतनी देर हो गयी।

मुन्नी : मेम साब, मैं साब को खाना.....

अंजली : तुम जाओ, मैं खाना देती हूँ इनको।

मुन्नी : आप आराम कीजिए मेम साब.....

अंजली : मैं जो कहती हूँ, तुम जाओ आराम करो। मैं देती हूँ खाना।

मुन्नी : बहुत अच्छा मेम साब.....

(विवश चली जाती है।)

अंजो दीदी

अंजली : सदाचार तो तुम्हें छू भी नहीं गया श्रीपत ।
मेरी नौकरानी पर ही डोरे डालने लगे ।

श्रीपत : अरे दीदी ! नौकरानी तो तुम्हारी बस गजब
की है । मेरी कसम दीदी, इसे भेज दो
मेरे साथ ।

अंजली : शर्म तो नहीं आती श्रीपत । न बहन का ख्याल
न बहनोई का, न सदाचार का न शिष्टता का ।
यही सिखाया है तुम्हें ममी और पापा ने । मैं
तो भगवान को धन्यवाद देती हूँ कि नाना जी
ने मुझे गोद ले लिया नहीं.....

श्रीपत : तुम्हें नाना जी की कसम दीदी, इस नौकरानी
को मेरे साथ भेज दो ।

अंजली : (चिढ़ कर) उठो श्रीपत, अभी जी नहीं भरा
तुम्हारा इतना समय गँवाकर.....? चलो उठो,
नहा लो । नहीं नहाते तो हाथ-मुँह धो लो ।

श्रीपत : न मानो दीदी । ऐसी बनी-सँवरी नौकरानी
रखोगी तो जीजा जी कभी दिल दे बैठेंगे ।
आदमी हैं न आखिर बेचारे ।

अंजली : अच्छा उठो यहाँ से, मेज़ की चादर बदल दूँ ।
अभी बदल कर गयी थी कि तुमने फिर जूते
टिका दिये इस पर ! मैं पूछती हूँ, तुम ने अभी
तक यह भी नहीं सीखा कि डाइनिंग टेबल की
चादर पर जूते नहीं रखे जाते.....और चादर
मेज़ पर बिछाने के काम आती है, तकिया
बनाने के नहीं (बड़ी नमी से) उठो, मैं लाती

आदि मार्ग

हूँ नयी चादर । तुम इतने में तैयार हो जाओ ।

[चादर उठाकर चली जाती है । श्रीपत फिर मेज़ पर टाँगें रख लेता है और गुनगनाता है :—]

उम्मीद तो बँध जाती, तस्क्रीन तो हो जाती,
वादा न वफ़ा करते, वादा तो किया होता ।

[अपने मामा को गाते सुन कर नीरज अपने कमरे से दबे पाँव आता है]

नीरज : (सरगोशी में) मामा जी !

श्रीपत : आओ बेटे । क्या वक्त पर आये हो । सुनो हम गा रहे हैं ।

(गाता है ।)

नाकामे-तमन्ना दिल इम सोच में रहता है ।

याँ होता तो क्या होता, याँ होता तो क्या होता !

— : क्यों बेटे, पसन्द आया हमारा गाना ?

नीरज : आप बहुत अच्छा गाते हैं मामा जी । और सुनाइए ।

श्रीपत : बस बेटे । नहीं तुम चाहोगे कि क्रिकेट के कप्तान बनने के बदले गवैये बना ।

(दोनों हँसते हैं ।)

नीरज : मामा जी आप सोये नहीं ?

श्रीपत : अभी सोकर उठा हूँ ।

नीरज : मैं सोया था, पर नींद नहीं आयी । मामा जी, आप ज़रा ममी से कहिए, मुझे क्रिकेट खेलने की आज्ञा दे दें ।

अंजो दीदी

श्रीपत : (उसे गोद में उठाते हुए) मैं जरूर कहूँगा । तुम्हारी कसम बेटे मैं यहाँ से जाते ही क्रिकेट का सारा सामान तुम्हें भेजूँगा—बैट, विकिटें, बॉल—सब ! तुम हर रोज़ खेलना और अपने इन मामा जी के हक में दुआ करना । क्यों नीरज, याद रखोगे न अपने मामा जी को ?

नीरज : (श्रीपत के गले से लिपट जाता है) मामा जी !

अंजली : (दूसरे कमरे से) नीरज क्या कर रहे हो तुम यहाँ ? (चादर लिये हुए प्रवेश करती है) तुम्हारे तो सोने का समय है । सोये नहीं तुम क्या ?

नीरज : नींद नहीं आती ममी !

अंजली : (मेज़ पर चादर बिछाते हुए) चल कर लेटो, आ जायगी । हमारे नाना जी कहा करते थे कि नींद न आये तो भी खाना खाने के बाद कुछ देर लेटना चाहिए । चलो, अपने कमरे में चल कर आराम करो और श्रीपत, तुम अभी तक यहीं बैठे हो, जाओ बाथ-रूम में सब कुछ रखा हुआ है । नहा लो अगर नहाना है, नहीं तो मुँह-हाथ धो डालो । मैं खाना लाती हूँ ।

श्रीपत : मुझे खाने की बिल्कुल इच्छा नहीं दीदी !

अंजली : तो फिर क्या खाओगे ?

(बाहर खोंचे वाला आवाज़ देता है)

खोंचेवाला : चाट चट-पटी मसालेदार ! पानी के बताशे, दही-बड़े !

श्रीपत : मैं तो, कसम तुम्हारी, दही-बड़े खाऊँगा ।

आदि मार्ग

खोंचेवाला : (बाहर) दही के बड़े !

श्रीपत : क्यों नीरज खाओगे दही-बड़े ?

नीरज : (चुप)

श्रीपत : आओ, तुम्हें दही-बड़े खिलायें ।

[भाग कर डाइंग-रूम के बाहर वाले दरवाजे में जाकर आवाज़ देता है ।]

— : ओं चाट वाले, ला इधर दही-बड़े और चाट !

[अंजली उसे !! कने के लिए उसके पीछे पीछे डाइंग रूम में आती है । नीरज उसका दामन पकड़े उसके पीछे है ।]

नीरज : (अपने मामा और चाट वाले की ओर लक्ष्य करके अनुनय के स्वर में) ममी !

[अंजली उसका हाथ भटक देती है और क्रोध भरी दृष्टि से उसे देखती है]

श्रीपत : (मुड़कर) अरे दीदी ! इस कोप-दृष्टि से बच्चे की ओर क्यों देख रही हो । मैं कहता हूँ, सब खायेंगे दही-बड़े (फिर मुड़कर जोर से आवाज़ देता है) ओ दही-बड़े वाले ! इधर ला दही-बड़े और पानी के बताशे !!

अंजली : श्रीपत रहने दो, इसका पेट खराब हो जायगा ।

श्रीपत : अगर तुम ने बचपन ही मैं इसका पेट ऐसा कमजोर बना दिया तो कसम तुम्हारी दीदी, बड़े होते न होने जरूर खराब होकर रहेगा ।

अंजली : मैं पूछती हूँ, दही-बड़े भी कोई खाने की चीज़ है ?

अंजो दीदी

श्रीपत : उसके पास पानी के बताशे और मूँगी के लड्डू भी हैं। चपटटे और मसालेदार ! (नौकर को आवाज देता है) राधू.....राधू.....!

राधू : (किचन से) जी साब ! (अन्दर आकर) जी ।

श्रीपत : खोंचेमाला बैठा है बाहर । उससे पानी के बताशे और दही-बड़े लाओ ! (अंजली से) आओ दीदी, उड़ायें दो-दो ! (राधू से, जो जाने को मुड़ता है) और सुना ! मूँगी के लड्डू भी ले आना अंजो दीदी के लिए ।

(राधू चला जाता है ।)

अंजली : मुझे नहीं खाने मूँगी के लड्डू और पानी के बताशे । हमारे नाना जी कहा करते थे कि चाट.....

श्रीपत : मख्त बुरी चीज है ! लेकिन दीदी कभी-कभी बुरी बात भी कर देखनी चाहिए । बहुत भलाई को भगवान पसन्द नहीं करता (हँसता है) जिस तरह सुन्दर बच्चों को कुदृष्टि से बचाने के लिए उनके माथे पर काला टीका लगा दिया जाता है, उसी तरह मित्र-शत्रुओं की बुरी नज़र से अपनी भलाई की रक्षा को मैं भी कभी-कभार ऐसी वैसी बुरी बात कर लिया करता हूँ । तभी तो आज दिन मेरी भलाई.....

अंजली : (व्यंग्य से) भलाई ! (तित्त मुस्कान उसके ओंठों पर फैल जाती है) क्या बात है तुम्हारी भलाई की ? तुन्हीं का मुबारक हो यह भलाई !

आदि मार्ग

वकील साहब : (दफ्तर के दरवाजे पर आकर भाँकते हैं) भई क्या बात है ? (पास आकर) भगड़ क्या रहे हा ? (श्रीपत की ओर देख कर शगरत से आँख दबाते हैं) मैं तो सो ही गया था अंजा । तुम्हारे जोर जोर से बोलने की आवाज सुनी तो चला आया ।

अंजली : श्रीपत नीरज को दही-बड़े खिला रहा है ।

श्रीपत : आरए जीजा जी, दही-बड़े बि. ने आये हैं, पानी के बताशे हैं और चाट । आइए कुछ.....

वकील साहब : भई मैंने तो छः वर्ष से कभी चाट को मुँह नहीं लगाया.....

अनिमा : (हँसती हुई प्रवेश करती है) केवल दोने देखे हैं !

श्रीपत : भई क्या खूब अवसर पर आयी हो अन्नो । तुम्हारी कसम, दही-बड़े आये हैं—फर्स्ट क्लास ! जीजा जी ने भी छः बरस से चख कर नहीं देखे और मुझे भी, भगवान भूठ न बुलवाये, सदायों गुजर गयी हैं उनकी सूरत देखे..... आओ बैठो (राधू को आवाज देता है) राधू, अब ले भी आ दही-बड़े ।

अनिमा : मैं नहीं खाती दही-बड़े ।

(बाहर से कुलफी वाले का स्वर आता है ।)

कुलफी वाला : कुलफी मलाय का बर्फ !

श्रीपत : लो कुलफा खाओ ! तुम्हारी कसम, कुलफी हो, फिर ऊपर से मलाई वाली हो तो और क्या चाहिए । (जोर से राधू को आवाज देता है) राधू

अंजो दीदी

बैठाइयो कुनकी वाले को ! किसी ने कहा है—
 भिन्नता जीवन का रस है—तो आये ! जो चाहे
 कुनकी खाय, जो चाहे दही-बड़े और जो चाहे पानी
 के बताशे और चाट ! (सहसा वकील साहब की
 ओर मुड़ कर) कहिए जोजा जी, क्या खायेंगे...
 ...?.....रुकिए नहीं.....हाँ.....हाँ.....कद
 दीजिए.....कह दीजिए..... !

[राधू एक बड़े थाल में सभी चीजों
 की प्लेटें रख कर ले आता है । श्रीपत उसमें
 लेकर तिपाई पर रखता है ।]

वकील साहब : (प्रकट उदासीनता से) मैं पानी के बताशे ही
 ले लूँगा ।

श्रीपत : तुम नीरज ?

नीरज : मैं कुनको लूँगा ।

अंजली : फिर पड़े रहोगे बीमार पोचिश से कई दिन ।

श्रीपत : (अंजो की बात को सुनी-अनसुनी करके) तुम
 अन्ना ?

अनिमा : मैं मूंगी के लड्डू लूँगी ।

श्रीपत : अरे, मुर्मा और दूसरे नौकरों को भी बुलवा
 लो । इस घर में तो उन्हें भी युग बीत गये
 होंगे इन चीजों की शक्ल देखे । (सहसा अंजो
 की ओर मुड़कर) कहां दीदी, तुम कुनकी लोगी,
 दही-बड़े खाओगी, मूंगी के लड्डू, चाट या
 सभी चीजें ?

आदि मार्ग

अंजली : (जल्नकर लगभग चीखते हुए) हमारे नाना जी कहा करते थे—दुनिया में तीन तरह के आदमी होते हैं। एक वे जो आप भी चलते हैं और दूसरों को भी चलाते हैं—इंजन की तरह; दूसरे वे, जो आप नहीं चलते, पर चलाओं तो चले जाते हैं—गाड़ी के डिब्बों की तरह ! और तीसरे वे, जो न आप चलते हैं, न दूसरों को चलने देने हैं—ब्रेक की तरह ! हमारे नाना जी कहा करते थे—श्रीपत ब्रेक है, ब्रेक !!

श्रीपत : (गगन-भेदी ठहाका लगाता है) बाह् दीदी ! लाख रुपए की बात कही है । (थाल से कुलफी की प्लेट उठाता है) लो इसी बात पर कुलफी खाओ !

अंजली : मैं नहीं खाती कुलफी ।

श्रीपत : लो नीरज, तुम लो कुलफी । द दी पानी के बताशे लेंगी । (ट्रे से पानी के बताशों की तश्तरी लेकर) लो दीदी पानी के बताशे !

अंजली : मुझे नहीं चाहिए पानी के बताशे ।

श्रीपत : लाजिए जीजा जी, आप पानी के बताशे । दीदी मूँगी के लड्डू लेंगी । (ट्रे से मूँगी के लड्डू उठाकर) लो दीदी मूँगी के लड्डू !

अंजली : रखो ये मूँगी के लड्डू अपने ही पास । मैं इनके बिना भली ।

श्रीपत : (अंजली की चिढ़चिढ़ाहट की ओर ध्यान দিয়ে बिना) लो अम्मा, तुम लो यह मूँगी के लड्डू । दीदी का [जी असल में दही-बंद खाने को हों

अंजो दीदी

रहा है, (दही के बड़े उठाता है) लो दीदी, दही-बड़े । मसाना भी देखो कैसा चटपटा है ।

अंजली : (क्रांथ से चिल्ला कर) श्रीपत तुम्हें शर्म नहीं आती.....

श्रीपत : तुम्हारी इच्छा दीदी । दही-बड़े फिर हमी खायें लेंगे है ।

(दही-बड़ा मुँह में रख लेता है ।)

अंजली : (अपने पति से) मैं कहती हूँ, आप मस्त होकर पानी के बतारो उड़ा रहे हैं, कुछ खयाल भी है अब वज्रत क्या हो रहा है—चार बजने का है !

श्रीपत : (चौंकि कर) क्या बहा ? चार बजने का है (दही-बड़े की तरतरी खट से रख देता है) मेरा.....मेरा कुर्ता कहाँ है ?

[जल्दी-जल्दी डाइनिंग रूम में जा कर कुर्सी से कुर्ता उठा कर उसे बाहों में उड़सता हुआ वापस आता है ।]

वकील साहब : क्यों, क्या बात है ?

श्रीपत : मुझे चार बजे 'दिलकुशा' पहुँचना है । मेरे मित्र चार बजे वहाँ पहुँच रहे हैं । राधू ! मेरा बिस्तर उठाओ । तौंगा रास्ते ही में पकड़ लेंगे ।

[दूसरा दही-बड़ा उठा कर मुँह में रख लेता है, राधू चला जाता है ।]

अंजली : पर बिस्तर क्या करोगे ?

श्रीपत : उधर ही से स्टेशन पर चला जाऊँगा । सात बजे की गाड़ी से जाना है मुझे ।

आदि मार्ग

अंजली : बिस्तर तो मैंने खोल दिया ।

श्रीपत : अच्छा तो राधू के हाथ भिजवा देना 'दिलकुशा होटल' में ।

अंजली : गन्दा था, पानी के टब में पड़ा है ।

श्रीपत : (ठहाका लगाता है) अरे द दी ! खैर, जब धुल जाय जब भिजवा देना । अब तो मैं चन्ता हूँ ।

अंजली : मुझे क्या मालूम था कि तुम भन्का की तरह आओगे और तूफान की तरह चले जाओगे ।

श्रीपत : (हँसता है) भगवान ने चाहा तो मैं फिर आऊँगा अंजो दीदी ! और धून की तरह टिक कर बैठूँगा । अच्छा तो नमस्ते !

(हँसता हुआ दोनों हाथ मस्तक तक ले जाया है ।)

अंजली : अरे तो राधू कहाँ है । उससे कहो ताँगा लाय ।

[आँगन के दरवाजे से निकल जाती है ।

वकील साहब श्रीपत को एक ओर ले जाते हैं ।

वकील साहब : (उसके कंधे को एक हाथ से थपथपाते हुए, सरगोशी में) क्यों भई, सचमुच जा रहं हो ?

श्रीपत : (सरगोशी में) अरे जीजा जी, आज कौन जाता है । रात तो 'दिलकुशा' में कुछ दिलकशी रहेगा । कहिए चलिएगा ।

वकील साहब : अच्छा भई बड़े गुरु निकले ! और दही-बड़े की प्लेट यों खट से रख दी मेज़ पर जैसे बड़े लाट

अंजो दीदी

साहब से मिलने जा रहें हों (और भी धीरे से)
कहां कुछ यह भी.....

श्रीपत : और अंजो दीदी समझती हैं बड़े बरखुरदार
किस्म के साथी हैं आप.....

बकील साहब : अरे भई समझौता करना ही पड़ता है। तुम आ
गये हो नहीं। (दीर्घ निश्वास लेकर) हम और
आर्जुन-विसाले-पी रुखौं.....

(अंजली प्रवेश करती है ।)

अंजली : (आते आते) लीजिए आ गया तौंगा। खाली
जा रहा था, आवाज दे कर बुला लिया।

बकील साहब : ऐ दुम ! अंजो, मैं ज़रा श्रीपत को स्टेशन तक
पहुँचा आऊँ ?

अंजली : हाँ, तो देर कर के न आइएगा।

नीरज : मामा जी !

श्रीपत : हम नीरज बेटे के लिए क्रिकेट का सामान
भेजेंगे। दीदी, इसे क्रिकेट खेलने की आज्ञा दे
दो ! बड़ा होकर निश्चय क्रिकेट का कप्तान
बनेगा (अनिमा की ओर मुड़ कर) अन्नो, मुहत्त
के बाद मिले थे लेकिन.....(हँसता है).....
अब के फिर मिले तो आशा है तुम भी अंजो
दीदी की तरह हमारे एक नयं जीजा जी को
बाँधे हुए होंगो (स्वयं टट्टाका मारता है) और
अंजो दीदी नमस्ते। दुआ है कि हमारे नाना
जी का जादू तुम्हारे सिर से उतरे और तुम भी

आदि मार्ग

देखो कि चाट आखिर कोई ऐसी बुरी चीज नहीं (टहाका मारता है) चलिए जीजा जी !

नीरज : मामा जी नमस्ते !

[लेकिन नीरज का स्वर राधू, मुन्नी और अन्नो के 'नमस्ते' 'नमस्ते' में डूब जाता है।
श्रीपत वकील साहब के साथ सब के नमस्ते का उत्तर देना हुआ निकल जाता है।]

नीरज : (प्रसन्नता से उछल कर) मामा जी हमारे लिए क्रिकेट का सामान भेजेंगे ?

अंजली : (क्रोध से मुड़ कर) चल हाथ धो और कितानें लेकर बैठ ! भेजेंगे तुम्हारे लिए क्रिकेट का सामान मामा जी। गणित के मास्टर साहब आने वाले होंगे।

नीरज : ममी !

अंजली : मैं कहती हूँ चल। लेके बैठ गया कुलर्का खाने। जैसे कभी मिली ही न हो कोई चीज खाने की। अन्ना, तुम जग इसके हाथ धुलाना और बैठाना इसे पढ़ने की मेज पर। कमरे में चारों ओर दृष्टि-निपात करती है) क्या हाल हो गया चन्द घंटों में कमरे का ? (नौकर को आवाज़ देती है) राधू राधू (लिफ्ट के एक दुब्ड़े को, जो क्रश पर पड़ा सुलग रहा है जाकर पाँव से मसल कर बुझाती है) चन्द दिन और रह जाता तो मैं सचमुच जा कर सेना में भरती हो जाती—अभी चादर बदली

अंजो दीदी

थी और अभी गंदी कर दी। (फिर चीख कर नौ बर को आवाज़ देती है) राधू !

राधू : (आते हुए) जी मेम साब !

अंजली : उठा ये सब चाट, दही-बड़े और मूँगी के लड्डू, तुम और मुन्नी खा लेना ! और यह मेज़ साफ़ कर, चादर लाकर बदलूँ, चाय का समय हो गया ।

[राधू चुपचाप सामान उठाने लगता है, अंजली की नज़र घड़ी पर चली जाती है ।]

— : (चौंक कर) अरे, यह घड़ी रुक गयी । राम राम राम मैं भी चाभी देना भूल गयी । दस बरस बाकायदा इसे चाभी देती आ रही हूँ । हमारे नाना जी कहा करते थे—श्रीपत ब्रेक है ब्रेक ।

[मेज़ को दीवार के साथ करके उस पर चढ़ कर घड़ी को चाभी देती है ।]

— : मेरे घर में ब्रेक का क्या काम ? मेरा घर इसी घड़ी की तरह चलेगा । लगातार, सॉफ़ सवेरे !.....(घड़ी टिक टिक करने लगती है) टिक.....टिक, टिक.....टिक ! और कोई चीज़ इस नियम को तोड़ न सकेगी । (सहसा घड़ी की टिक टिक बन्द हो जाती है) अरे, यह फिर खड़ी हो गयी ! राधू.....राधू !

[राधू जो सामान समेट कर जाने को होता है, अपनी माँ किन वी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से तकता है ।]

आदि मार्ग

अंजली : घड़ी टूट गयी राधू। शायद मैंने इसे ज्यादा चाभी दे दी !

[अंजली दोनों हाथ उठावे परेशान
सी मेज़ पर खड़ी है जब पर्दा गिर जाता
है।]

भैवर

पात्र

प्रतिभा	जगन
प्रतिमा	ज्ञान
प्रमिला	हरदत्त
नीलिमा	दीनू
नीहारिका	दर्जी
मन्दा	निर्मल

[पर्दा प्रतिभा के अपने कमरे में उठता है। यह कमरा ड्राइंग-रूम भी है और स्टडी-रूम भी और बाहर जाते जाते मेक-अप पर एक दृष्टि डालने के हेतु इस में एक सिंगार मेज भी रखी है।

बैठने के लिए काँच का मूल्यवान सेट और पढ़ने के लिए एक सुन्दर मेज-कुर्सी सजी है। मेज पर एक ओर टैलीफोन रखा है और दूसरी ओर कुछ पुस्तकें रैक में बड़े सुरुचि-पूर्ण ढंग से चुनी हुई हैं। सिंगार-मेज का दर्पण आदमी के कद का है और लकड़ी चमकमाते टीक की। छत पर बिजली का पंखा मन्थर गति से चल रहा है।

आदि मार्ग

कमरे में तीन दरवाज़े और एक खिड़की है। दो दरवाज़े दायीं दीवार में हैं। इधर का (दर्शकों की ओर का) बाहर बरामदे में और कोने का प्रतिभा के शयन-कक्ष में खुलता है। सामने की दीवार के बायें कोने में एक दरवाज़ा है। जो आँगन को जाता है। बायीं दीवार में एक बड़ी खिड़की है जिससे पट बाहर को खुलते हैं।

सामने दीवार में अंगीठी है जिस पर दो फूलदान और कुछ फ़ोटो सजे हैं। दरवाज़ों पर भारी पर्दे लटक रहे हैं जिनका रंग मेज़पोशों, अंगीठी के कपड़े, टेबल-लैम्प के कवर और कौंचों तथा दीवारों के रंग से मिलता है।

प्रतिभा २४, २५ वर्ष की सुन्दर युवती है। न बहुत लम्बा न छोटा कद, सुगठित देह, गौर-वर्ण और कुछ विचित्र आकर्षण वाली सालस, लालस आँखें! एम० ए० में पढ़ती थी तो उसे अपने दर्शन-अध्यापक प्रो० नीलाभ से प्यार हो गया था। किन्तु प्रेम की वह सुलगती चिंगारी कभी ज्वाला न बनी, क्योंकि अध्यापक नीलाभ प्रेम के सम्बन्ध में बहुत पहले विरक्त हो चुके थे। अपने अध्यापन-जीवन के आरम्भ में उन्होंने अपनी एक छात्रा से विवाह कर लिया था। अनुभव इतने कटु थे कि उस बंधन से मुक्ति पाने के पश्चात् विवाह तो दूर, वे एक

भँवर

प्रकार से नारी मात्र से विरक्त हो गये थे, यद्यपि उनकी यही विरक्ति उनका आकर्षण बन गयी थी।

उस ओर मार्ग न पाकर प्रतिभा के प्रेम की धारा पलटी तो अपने ही सङ्पाठी सुरेश की ओर बह चली। सुरेश बहुत देर से उसके प्रेम का याचक था। टैनिस का माना हुआ खिलाड़ी, समरत्न और सुन्दर ! पहले प्रतिभा उसे प्रश्रय न देती थी, अब अपनी असफलता में वह मुड़ी तो द्विगुण वेग से उसकी ओर बढ़ी और उसने तत्काल उससे सिविल मैरज कर ली, परन्तु शीघ्र ही पता चल गया कि उससे भारी गलती हो गयी है। छः महीने की तनातनी के बाद उसने विवाह के बंधन से मुक्ति पा ली।

इस बात को एक वर्ष बीत गया है। सुरेश ने अपनी एक दूसरी सङ्पाठिनो शकुन्तला से विवाह कर लिया है, पर प्रतिभा अभी तक अकेली बनी हुई है। इन कटु-अनुभवों ने जहाँ उसके चंचल-सौन्दर्य को सौम्यता प्रदान कर दी है, वहाँ उसकी आँखों को ऐसी गहराई बरूनी है जिसके लिए बहुत-सी चीजें पारदर्शी हो गयी हैं। उसके आकर्षण का केन्द्र उसकी यही आँखें और उसका वह सूक्ष्म चांचल्य है, जो यद्यपि

आदि मार्ग

उसके कटु अनुभवों के कारण सौम्यता की चट्टान के बहुत नीचे दब गया है, पर कभी कभी जोर मार कर चट्टान को ढिला देता है।

वह पहले भी कम सुन्दर न थी, परन्तु इन सब घटनाओं, अनुभवों और विरिक्त-मय अशक्ति ने उसके आकर्षण को दुर्निवार बना दिया है। रहा उसका प्रेम, तो वह अब उस नदी का सा है जो एक ओर मार्ग न पाकर दूसरी ओर और दूसरी ओर रुकावट मिलने पर तीसरी ओर बढ़ता है और गति के अवस्था होने पर जब पलटती है तो अपने ही किनारों को तोड़ती हुई चली जाती है।

पर्दा उठने पर प्रतिभा एक कौच पर बड़ी अन्यमनस्कता से लेटी दिखायी देती है। उसका सिर कौच के बाजू पर टिका हुआ है, एक पाँव कौच पर है और दूसरा कर्श के कालीन पर ! कुछ क्षण इसी प्रकार लेटे-लेटे छत की ओर देखती रहती है फिर थकी सी अंगड़ाई लेती है ।]

प्रतिभा : (अंगड़ाई लेते हुए) ओह.....ओ ! कितना बड़ा शून्य है यह जीवन !! कहीं भी तो कोई ऐसी चीज़ नहीं जो ठोस हो; जिसका सहारा लिया जा सके ! (बाहों को झीला छोड़ देती है और बे धप से उसकी गोद में आ गिरती है—नौकारानी को आवाज़ देती है) मन्दा.....मन्दा !

भँवर

मन्दा : (आँगन से) जी आयी ! (कुछ क्षण बाद प्रवेश करती है) जी !

प्रतिभा : यह खिड़की खोल दे !

(मन्दा खिड़की खोलती है ।)

प्रतिभा : (उठकर खिड़की के निकट जाती है) ओह, बाहर तो घटा उमड़ी आ रही है और (तनिक मुड़ कर कमरे पर एक नज़र डालते हुए कंधे झटका देती है) यहाँ आकाश एकदम सूना है । बादल का एक टुकड़ा तक भी नहीं ।

मन्दा : कुछ मुझ से कहा बड़ी दी ?

प्रतिभा : कुछ नहीं । नीम्बू के शरबत का एक गिलास बना ला !

मन्दा : अभी तो खाना खाकर आप..... !

प्रतिभा : बहस न कर, जो कहा है ला !

मन्दा : जी अच्छा !

[चली जाती है—वैक-ग्राउंड में प्रतिभा

के पिता श्री रामनारायण मल्लिक की आवाज़ आती है ।]

श्री मल्लिक : दीनू, साफ़ कर दिया साइकिल ? मुझे दफ़्तर समय पर पहुँचना है । टैकनिकल यूनिट का मीटिंग होने वाली है पूरे सवा दो बजे । और वे मेरे फाइल उठा कर कैरियर के साथ बाँध दे !

[आँगन के दरवाजे से आकर बदनबदाते हुए बरामदे की ओर जाते जाते]

आदि मार्ग

— : नाक में दम आ गया इस लड़ाई के मारे !
पेट्रोल ही नहीं मिलता और साइकिल पर रोज
देर हो जाती है । और फिर धूल.....एकदम
वाह्यात मौसम है :—इस तपती दुपहर और
उड़ती धूल में साइकिल पर दफ़तर जाना—एक
मुसीबत है ।

[बेज़ारी से सिर हिलाते हुए बरामद के
दरवाज़े से निकल जाते हैं ।]

प्रतिभा : (वापस मुड़ते हुए) दफ़तर और फाइल ! इन दो
चीज़ों के सिवा पापा को दुनिया की और
किसी बात से सरोकार नहीं ।

[सिंगार-मेज़ के सामने जा खड़ी होती
है और यों ही दर्पण में देखते हुए बालों पर
हाथ फेरती है । आँगन से प्रतिभा की माँ का
स्वर सुनायी देता है ।]

माँ : मैं पूछती हूँ वह मन्दा कम्बख़त किधर गयी ?
डिनर पर आज क्या पकेगा, कुछ इसकी भी ख़बर
है । कसटर्ड तो कल पका था, आज क्या होगा ?

प्रतिभा : (वापस आकर कौच में धँसते हुए, घुटे घुटे स्वर में)
लंच और डिनर ! ममी को इस के सिवा कुछ
नहीं सूझता । अभी लंच से निपटे नहीं कि डिनर
की रट लगा दी । कोई वक्त हाँ, सैर का या
आराम का, पापा दफ़तर की गाथा ले बैठेंगे
और ममी लंच या डिनर की । रह गयी तीमा
और मीला तो वे.....

भँवर

[प्रतिभा (तीमा) विद्युत वेग से प्रवेश करती है—सत्रह अठारह वर्ष की युवती, एफ० ए० में पढ़ती है। सुन्दर है, चंचल है, जलने और जलाने में ज्वाला के सभी गुणों से विभूषित है।]

प्रतिभा : दीदी, दीदी, ज़रा देखना—मैं ठीक भी लायी हूँ ये चीज़ें ? फूली न समाती थी मीला अपने टॉयलेट-बक्स पर। फर्स्ट क्लाम लायी हूँ मैं भी। देखा यह लिपस्टिक, यह पाऊडर, यह फाऊंडेशन लोशन !—सब आर्डाना के हैं। और यह हूबीगाँट का रूज और मस्कारा और आई-ब्रो पेंसिल (हँसती है—आत्म-नुष्टि की हँसी) क्यों हैं न फर्स्ट रेट ! जल जायगी मीला।

(जैसे आयी थी वैसे ही विद्युत-वेग से भाग जाती है।)

प्रतिभा : कोई हद भी है ! टॉयलेट के सिवा इन लड़कियों को और कुछ आता ही नहीं।

[बैक-ग्राऊंड में हारमोनियम के साथ धीरे धीरे गाने का स्वर उठता है।]

यह सावन का घन आया !

क्या नया संदेश लाया !

— : (उठ कर व्यग्रता से कमरे में घूमती है) नीहार साँझ की पार्टी के लिए अभ्यास कर रही है शायद। वही भावुक, घटिया, फ़िल्मी गाने ! न

आदि मार्ग

जाने ये लोग ऐसे थर्ड-रेट गीत सुनने और गाने को इतना वक़्त कैसे निकाल लेते हैं ?

(गाना बराबर चलता है :—)

रिमक्तिम रिमक्तिम बून्दियों बरसें,

नयन दरस को तेरे तरसें,

साजन,

ओ साजन !

उरा परदेस लगाया !

— : बेहद छोटा और संकरा है घेरा इनके जीवन का—बस उसी में घूमे जाते हैं—दिन रात उसी में घूमे जाते हैं—बाहर निकलने की ज़रा भी कोशिश नहीं करते। कोई कुलाँच नहीं; कोई उड़ान नहीं; उच्च, उत्ताल, उदाम जिन्दगी के लिए कोई इच्छा; संघर्ष नहीं !

(गाना बराबर चलता है :—)

जीवन में जवानी आयी,

मस्ती मस्तानी छायी,

साजन,

ओ साजन !

दिल बैठ बैठ घबराया !

— : आज फिर मन-मस्तक को यह सावन.....बरबस यह सब सुनना पड़ेगा। पापा फ़्लैट भी तो नहीं बदलते (स्वयं ही व्यंग्य से हँसती है) बदल भी लें तो क्या हो ? पापा, ममी, तीमा, मीला और और उनकी यह दिन रात की बेकार पें

भँवर

पै—कहीं मुक्ति नहीं—इस भूँटे, निकम्मे, खोखले
जीवन से कहीं मुक्ति नहीं !

(गाना बराबर चलता है)

यह सावन का घन आया ।

क्या नया सन्देश लाया !

[बैक-ग्राउंड में गाने का स्वर बराबर आता
रहता है । प्रतिभा बेचैनी से खदबदाती सी
कमरे में घूमती है, फिर जाकर बरामदे का
दरवाज़ा बन्द कर देती है । गाने की आवाज़
अन्यधिक धीमी पड़ जाती है । प्रतिभा नौकरानी
को आवाज़ देती है और खिड़की में जा खड़ी
होती है ।]

प्रतिभा : मन्दा ।

(कोई उत्तर नहीं आता)

— : (क्षण भर बाद फिर आवाज़ देती है) मन्दा !

मन्दा : (आँगन से) जी लायी !

[फिर खिड़की में बाहर देखने लगती
है । नीलिमा प्रवेश करती है ।]

नीलिमा : तीभा !

[प्रतिभा अपने ध्यान में मग्न बाहर
खिड़की में उमड़ते-धुमड़ते बादलों को देख
रही है ।]

— : (पास आकर) तीभा.....प्रतिभा !

प्रतिभा : (मुड़ कर) आओ नीली ! कहो सिखा आये
गाना नीहार को ?

आदि मार्ग

नीलिमा : गाना ?

प्रतिभा : हाँ, साँझ की पार्टी के लिए !

नीलिमा : नहीं, मैं तो अभी अभी आ रही हूँ बाज़ार से।
प्यास लग रही थी, साँचा पानी पीकर ही
ऊपर जाऊँ !

प्रतिभा : आओ बैठो। (नौकारानी को आवाज़ देती है)
मन्दा मन्दा !

मन्दा : (आँगन से) लायी दीदी !

प्रतिभा : ((चिल्ला कर) क्या हां गया तुम्हे ? इतनी देर
हो गयी और एक गिलास शरबत.....

नीलिमा : अरे, तो दो मँगाओ।

प्रतिभा : नहीं, मैंने तो यों ही मँगाया था। जी कुछ थुट-
सा रहा था। प्यास नहीं है मुझे। (नौकारानी
को आवाज़ देती है) मन्दा !

(बढ़ कर आँगन की ओर जाने लगती है ।)

नीलिमा : (उसे बैठते हुए स्वयं भी बैठती है) बैठो आ
जायगी मन्दा। (स्त्री को धीमा करके) मुझे
आज चाँदनी-चौक में मुरेश जी मिल गये।

प्रतिभा : (चुप रहती है)

नीलिमा : उनके साथ शकुन्तला भी थी।

प्रतिभा : (चुप रहती है)

नीलिमा : (अरमान भरे स्वर में) जोड़ी बुरी तो न थी
तुम्हारी तीभा। कलचिड़ी-सी लगती है कुन्ती
मुरेश के साथ। पर तुम.....तुम्हारी जोड़ी

सुन्दर थी। (लम्बी साँस भरते, हुण) क्यों न चल सके तुम दोनों ?

प्रतिभा : (जैसे इस जिक्र ही से उसे कष्ट होता है) कई बार तो बता चुकी हूँ, किसी तरह की बौद्धिक समता न थी हम दोनों में।

नीलिमा : तुम ने कांशिश ही नहीं की।

प्रतिभा : बेकार थी।

नीलिमा : फिर व्याह ही क्यों किया था ? (प्रतिभा कोई उत्तर नहीं देती) तुम्हें पहले से सन्देह होगा, जभी तो सिविल मैरेज पर जोर देती थीं तुम।

प्रतिभा : हटाओ इस किस्से को। मैं सुरेश के टेनिस पर मरती थी, पर उसके जीवन का घेरा इतना सीमित है, इसका मुझे सपने में भी ख्याल न था। जीवन भर उसी परिधि में बँधे रहने की कल्पना भी कष्टदायक थी। शकुन्तला खुश रहेगी वहाँ। मैं तो इसी तरह अच्छी हूँ। बाहर की दुनिया से जितना चाहती हूँ, रस ले लेती हूँ नहीं घोंघे की तरह अपने आप में मस्त पड़ी रहती हूँ। बहुत ऊब जाती हूँ तो प्रोफसर नीलाभ के पास चली जाती हूँ।

नीलिमा : नीलाभ !

प्रतिभा : उनके पास कुछ पल बिताने से मुझे शान्ति मिल जाती है। एक तरह से एकाकी-सा जीवन बिता रहे हैं वे।

नीलिमा : लेकिन उमर तो उनकी कुछ इतनी ज्यादा नहीं।

आदि मार्ग

प्रतिभा : उमर का सवाल नहीं। उन्होंने ने इतना काम किया है और इस निष्ठा से किया है कि वे थक-से गये हैं। और इस सारे कोलाहल से दूर, आराम से पड़े लिखने-पढ़ने में लगे रहते हैं। उनकी अनुभूतियाँ इतनी गहरी और विशाल हैं और ज्ञान की इतनी बड़ी निधि उनके पास है कि उनके निकट कुच्छेक पल बिताने से मन हल्का-सा हो जाता है। मैं तो जब इस वातावरण से ऊब उठती हूँ, उनके पास चली जाती हूँ।

नीलिमा : तुम दोबारा शादी क्यों नहीं कर लेतीं ?

प्रतिभा : शादी ?

नीलिमा : हाँ, प्रदीप.....नारायण.....विश्वा.....नगेन्द्र और अब ज्ञान साहब—इस फ्रस्ट्रेशन (Frustration*) से लाभ !

प्रतिभा :—मैंने पहली बार ही शादी करके गलती की। असल में मेरी प्रकृति शादी के अनुकूल ही नहीं। मेरे दिमाग के किसी कोने में आजाद और क्लचर्ड जिन्दगी का कुछ ऐसा सुन्दर सजीव और पवित्र चित्र अंकित है कि मैं अब फिर व्याह करके उसे भ्रष्ट नहीं करना चाहती। यही कारण है कि सुरेश से मेरी चार दिन भी न बन सकी। मेरा बस चले तो मैं कहीं एक किनारे बैठ कर अपनी उसी सुन्दर और पवित्र दुनिया के सुख सपने

*Frustration = कष्ट !

मैं अपना सारा जीवन बिता दूँ, पर इस समाज में ऐसा सम्भव नहीं, सो मैं सब से मिलता हूँ, लेकिन कमल के पत्ते की तरह—पानी में रह कर भी उससे ऊपर !

[उठ कर खिड़की में जा खड़ी होती है । चुपचाप बाहर की ओर देखने लगती है ।
तभी मन्दा शरबत का गिलास लेकर आती है ।]

मन्दा : बड़ी दीदी शरबत !

प्रतिभा : (मुड. कर) इनको दे ।

नीलिमा : (शरबत का गिलास लेते हुए) तुम हमारे लिए सदा एक पहेली बनी रहती थी। (शरबत का घूँट भरते हुए) कहो, तुम्हारा ब्लाऊज़ सिल गया ?

प्रतिभा : नहीं अभी नहीं सिला ।

नीलिमा : मेरा तो सिल गया । स्लीव-लेम* ही सिलवाया मैंने । तुम ने जो कहा था कि स्लीव लेस.....

प्रतिभा : मैंने तो फुल स्लीवज का बनवाया है ।

नीलिमा : फुल स्लीवज का ! किस तरह की हैं बाहें ?

प्रतिभा : आधुनिक-तम रूमी ढंग की (हँसती है) एकदम बेपर्दा खूबसूरती से अधखुली-अधछिपी, भीनी-भीनी सुन्दरता कहीं ज्यादा मन-मोहक लगती है ।

* Sleeveless - बिन आस्तीन का ।

आदि मार्ग

नीलिमा : तब तो साड़ी भी बॉटल-ग्रीन रंग की होगी ।

प्रतिभा : हाँ, क्यों ?

(प्रतिभा फिर खिड़की में देखती है ।)

नीलिमा : उस दिन जब मैंने यही दोनों चीज़ें पसन्द की थीं तो तुम हँस दी थीं और अब.....यह खिड़की में बार-बार किसको देख रही हो ?

प्रतिभा : खिड़की में !.....किसी को भी नहीं.....यों ही उमड़ते हुए बादलों को देख रही थी ।

नीलिमा : (अपनी बात का तार पकड़ते हुए) और उस समय जिन चीज़ों पर तुम ने नाक भौ चढ़ायी थी, वही तुमने अब खुद सिलवा लीं ।

(मन्दा दरवाज़े से भाँकती है ।)

मन्दा : बड़ी दीदी, दर्जी आया है ।

प्रतिभा : बुला ला ।

नीलिमा : तुम ने कहा था, स्लीवज़ नारी की दासता का चिन्ह हैं जब उसे सात पदों के अन्दर रखा जाता था । अब जिन्दगी आज़ादी चाहती है । बरसात की ठंडी सरसराती हवा में स्लीव-लेस ब्लाऊज़ का आनन्द तो.....

(दर्जी प्रवेश करता है ।)

दर्जी : सलाम हुआ !

प्रतिभा : क्यों मियाँ साहब, बहुत दिनों में आये । कहो कर लाये ठीक ? अब तो कहीं से तंग नहीं ?

दर्जी : पहन कर देख लीजिए सरकार । हाँ, हाँ, इसी ब्लाऊज़ पर पहन लीजिए । कुछ टाइट फिट सिया था, नहीं कट (cut) तो इननी अच्छी है सरकार कि इसी को देख कर मिसेज़ जमील अपना ब्लाऊज़ सीने दे गयीं ।

प्रतिभा : (ब्लाऊज़ पहनते हुए) हाँ, इस बार तो ठीक लगता है । क्यों नीली !

नीलिमा : तुमने खूब उल्लू बनाया मुझे तीभा । कितना फबता है तुम्हारे अंगों पर ! मैं तो इसी समय बाज़ार जाऊँगी और खड़े-खड़े इसी स्टाइल का ब्लाऊज़ सिलवा कर लाऊँगी ।

दर्जी : सारे का सारा हाथ का मिला है हुज़ूर । दो दिन लग गये सिर्फ इसकी चुन्नटें डालने ।

प्रतिभा : (ब्लाऊज़ उतार कर देते हुए) और साड़ी ?

दर्जी : यह रही सरकार !

प्रतिभा : इधर मेज़ पर रख दो और देखा मियाँ साहब, दूसरे कपड़े भी जल्दी सियो ।

दर्जी : साड़ी को मेज़ पर रखते हुए) बस परसों ले लीजिए हुज़ूर ।

[ब्लाऊज़ को तह लगा कर साड़ी के ऊपर रखता है और—‘सलाम हुज़ूर’ कह कर चला जाता है ।]

नीलिमा : हमारा दर्जी ब्लाऊज़ सीकर लाया तो जगन भी बैठा था । बोला यह कैसा सन्यासियों का-सा रंग चुना है आपने ?

आदि मार्ग

- प्रतिभा : जगन, कौन जगन ?
- नीलिमा : अरे जगन.....इंडीपेंडेंट क्रिकेट टीम का कप्तान
- प्रतिभा : ओह ! शायद अब क्रिकेट खेलने-खेलते उसका ।
मन ऊब गया है । अब वह स्वयं गेंद बनना
चाहता है ! (हँसती है) देखना बेचारे को ग्राऊंड
के पार ही न फेंक देना ।
- नीलिमा : तुम सब को अपने ही जैसा समझती हो । वह
तो प्रतिभा के कारण.....
- प्रतिभा : (उसकी बात सुनी-अनसुनी करके हँसते हुए)
ठोकर मारो, लेकिन ऐसी भी नहीं कि फिर
पाना चाहो तो पा ही न सको ।
- नीलिमा : तुम्हारे उन दार्शनिक महाशय का क्या हाल
है—ग्राऊंड के उधर ही पड़े हैं या इधर आ
गये हैं
- प्रतिभा : दार्शनिक महाशय ?
- नीलिमा : प्रो० ज्ञानचन्द्र.....
- प्रतिभा : हमारे मध्य बड़ी अन्तर है—न कम, न ज्यादा
अन्तर को एक जैसा रखना मुझे खूब आता
है । हमारी मैत्री बौद्धिक है । मैं सदा उन लोगों
को पसन्द करती हूँ.....
- नीलिमा : जो तुम से बौद्धिक मैत्री रख सकें ! (व्यंग्य से)
यह बौद्धिक मैत्री खूब ढांग है तुम्हारा । जब से
ज्ञान साहब यूनिवर्सिटी में आये हैं अथवा यों
कह लो कि पड़ोस में आये हैं । तुम तो बस घर
ही की हो कर रह गयी हो । न सिनेमा.....

प्रतिभा : मस्तक जिनका खाली है, उन्हीं को भाता है
सिनेमा ।

नीलिमा : न पिकनिक.....न सैर तमाशे.....

प्रतिभा : बेकार लोगों के शगल हैं । मैं जब भी कभी
सिनेमा जाने को मजबूर हुई हूँ, मन को हमेशा
बड़ी यातना सहनी पड़ी है । ऐसे निकम्मे
और भोंड चित्र बनाती हैं हमारी फ़िल्म
कम्पनियाँ कि मैं पागल हो उठती हूँ । जी चाहा
करता है—जाकर सिनेमा के पर्दे को फाड़ दूँ
और जोर जोर से चीख उठूँ ।

नीलिमा : तुम भी खूब बनता हो तीभा । हरदत्त साहब के
साथ तो.....

प्रतिभा : मैं कई बार सिनेमा देखने गयी हूँ, यही कहना
चाहती हो न तुम । पर सुरेश के साथ सम्बन्ध
तोड़ने के बाद मैं अपने को कुछ इतनी अकेली-
अकेली, ऊबी-ऊबी, थकी-थकी पाती थी, हरदत्त
कुछ इतना अनुरोध करते थे कि मजबूर होकर
चली जाती थी ।

नीलिमा : हरदत्त सिनेमा के बड़े रसिया हैं ।

प्रतिभा : वे हमेशा एक इन्टलेक्चुअल* का ख़ौल चढ़ाये
रहते हैं, पर जब वे सिनेमा-हाल में बैठे-बैठे
अपने उस ख़ौल को भूल कर, थर्ड-रेट गानों पर
सिर धुनने लगते हैं तो मैं हँस दिया करती हूँ और
कई बार जब फ़िल्म बेहद घटिया होता है, मेरा

* इन्टलेक्चुअल = Intellectual = बुद्धिवादी ।

आदि मार्ग

जी चाहा करता है कि अपना और उनका गला घोट दूँ।

नीलिमा : प्रोफेसर ज्ञान सिनेमा पसन्द नहीं करते ?

प्रतिभा : वे सचमुच इन्टलेक्चुअल हैं। उनके निकट सिनेमा देखना समय नष्ट करने के बराबर है।

नीलिमा : तुम भी तो इन्टलेक्चुअल हो।

प्रतिभा : यही तो मुसीबत है। कभी जब मैं बाहर जाना चाहती हूँ तो वे नहीं चाहते और कभी जब उनका जी होता है तो मेरा मूड नहीं होता।

नीलिमा : न जाने तुम दोनों घंटों बैठे क्या मिसकॉट करते हो। मैं तो उब जाऊँ ऐसी बौद्धिक-मैत्री से। खाली बैठे बैठे उकता जाय मेरा तो मन !

प्रतिभा : ज्ञान साहब के साथ कभी ऐसा नहीं लगा कि हम खाली हैं अथवा यों ही वक्त गँवा रहे हैं। उनके दृष्टि-कोण, उनके दृष्टि-मूल्य—सब दूसरों से भिन्न हैं। उन्होंने स्वयं प्रो० नीलाभ से शिक्षा पायी है और मैं सच कहती हूँ नीली, कभी कभी मुझे ऐसे लगता है कि अन्त को जैसे मैं.....मैं.....

नीलिमा : तुम उपयुक्त साथी पा गयी हो। मेरी बधाई लो ! पर देखा, तुम और कहीं जाओ या न जाओ पर अपने इस बौद्धिक संगी को लेकर मेरे यहाँ संध्या को जरूर पहुँच जाना। मन्दा और दीनू की मुझे जरूरत होगी। तुम जानती हो नौकर हमारा बीमार है, सिर्फ एक दो घंटे

की बात है, अपनी ममी से कह देना ।

(मन्दा आती है ।)

मन्दा : बड़ी दीदी, एक साहब मिलने आये हैं । यह रुक्का दिया है ।

प्रतिभा : (रुक्का देखते हुए) जगन्नाथ !

नीलिमा : अरे जगन है । लो वह यहाँ आ पहुँचा । पार्टी का सब प्रबन्ध तो असल में वही कर रहा है !

प्रतिभा : बुलाओ तो देखें ज़रा तुम्हारे उस क्रिकेटर को । इसी तरह हमारा भी क्रिकेट से थोड़ा बहुत परिचय हो जायगा ।

नीलिमा : नहीं भई, अब जाने दो । साँझ को आना ज्ञान साहब के साथ । परिचय छोड़ क्रिकेट की सारा टेकनिक सीख लेना (उठते हुए लम्बी साँस लेकर) कितना अच्छा लगता है यह ब्लाऊज़ !

प्रतिभा : तुम्हें इतना पसन्द है तो ले जाओ । एक ही तो साइज़ है हम दोनों का, मैं तुम्हारे वाला पहन लूँगी ।

नीलिमा : ले जाऊँ, सच !

प्रतिभा : ले जाओ, पहन कर देख लो ।

नीलिमा : (साड़ी और ब्लाऊज़ की ओर अरमान भरी आँखों से देखकर) नहीं भई, तुम्हीं पहनो ।

प्रतिभा : न जाने किस क्षणिक भावना के बस मैंने इसे सिलव । लिया । अब पहनते हुए संकोच होता है । न जाने कभी कभी मन कैसा हो जाता है । चाहती हूँ अपनी इस सारी बौद्धिकता को उठा कर एक ओर रख दूँ और साधारण लोगों की

आदि मार्ग

तरह हँस-खेल सकूँ। पर दूसरे ही क्षण प्रति-
क्रिया आरम्भ हो जाती है। तुम यह ले जाओ
नीली। मैं तुम्हारे वाला पहन लूँगी।

नीलिमा : (उदास हँसी के साथ) तुम जो भी पहनोगी,
सब उसी की तारीफ़ करोगे। अभी रखो। ज़रूरत
हुई तो मँगा लूँगी।

(बैक ग्राउंड से फिर गाने की आवाज़ आती है।)

यह सावन का घन आया

क्या नया सँदेसा लाया !

—: यह नीहार तो पड़ी है बाजे के पीछे। दो दिन
हुए पंडित अमरनाथ सिखा गये थे यह धुन।
बस जब देखो सावन का घन चला आ रहा है।
कान पक गये सुनते सुनते। लो अब प हुँच जान
ज्ञान साहब को लेकर। मैंने उन्हें निमन्त्रण
भिजवा दिया है, फिर याद दिलाने का प्रयास
करूँगी। पर यदि उन्हें निमन्त्रण-पत्र न मिला
या मैं याद न दिला सकी तो तुम लेती आना
अपने साथ। बाई.....बाई !

[चली जाती है बैक-ग्राउंड में गाना
और भी साफ़ सुनायी देता है।]

सब सखियाँ नाचें गायें,

मिल-जुल सावनी मनायें,

साजन;

ओ साजन !

क्या नव-जीवन है छाया।

भँवर

यह सावन का घन आया

क्या नया सँदेसा लाया ।

प्रतिभा : (जल कर अपने आप से) नया सँदेसा और नया जीवन ! (एक कटु व्यंग-भरयी हँसी के साथ) फिल्मा गाने, फिल्मी फैशन और फिल्मी जीवन ऊँह !

[चिरकि से सिर हिलाती है, टेलीफोन की घंटी बज उठती है ।]

—: (चोंगा उठा कर) हैलो हैलो.....कौन, हरदत्त साहब.....नमस्ते नमस्ते...धन्यवाद । पर आज तो क्षमा कीजिए.....(हँसती है) नहीं नहीं, यह बात नहीं । आज नीहार की वरस गाँठ है । अभी अभी नीलिमा बुना गयी है । न गयी तो जिन्दगी भर माफ न करेगी.....अजी छोंड़िए, न नयी न पुरानी, फिल्मों की तो एक ही दुयिना है—बटिया, भाबुक और रोमानी हाँ जरूर आइए, पर सिनेमा मैं न जाऊँगी । नमस्कार !

[चोंगा रख देती है । मन्दा दरवाज़े से भाँकती है ।]

मन्दा : प्रोफेसर ज्ञान आये हैं बड़ी दीदी ।

प्रतिभा : ले आ ।

मन्दा : (बैरु प्राऊंड में आवाज़ देती है) चले आइए साब !

(प्रोफेसर ज्ञान प्रवेश करते हैं)

१६६

आदि मार्ग

ज्ञान : (आते हुए) नमस्ते !

प्रतिभा : (मुख पर मुस्कान झलक उठती है, लेकिन मस्तक की रेखाएँ नहीं मिटतीं) नमस्ते ! आइए बैठिए ।

ज्ञान : कहिए कुशल तो है । ये लकीरें सी कैसी हैं माथे पर ?

प्रतिभा : मेरी छोड़िए, अपनी कहिए । इतने दिनों से दिखायी नहीं दिये आप ?

ज्ञान : एक नाटक लिखने का प्रयास कर रहा था ।

प्रतिभा : (हँस कर) नाटक ! नाटक आप कब से लिखने लगे ?..... दिग्याइए !

ज्ञान : (आराम-कुर्सी पर बैठते हुए) लिख नहीं सका । जो कुछ लिखा था, उसे फाड़ कर आप की ओर चला आया हूँ । (हँसते हैं) इतना कुछ पढ़ने के बाद अब लिखना शायद मुश्किल है ।

प्रतिभा : यही हाल मेरा है । कई बार जी चाहता है कि अपनी सब उदासी, सब घुटन, सारी बेचैनी कागज़ पर उतार दूँ । बहुत सोचती हूँ, खाके बनाती हूँ, पर जब लिखने बैठती हूँ तो दो सतरें भी नहीं लिख पाती ।

ज्ञान : मेरा ख्याल है, आपको फिर शादी कर लेनी चाहिए । आप की सब उदासी, घुटन, बेचैनी ख़तम हो जायगी ।

प्रतिभा : शादी !

(हँसती है ।)

ज्ञान : फ़ायड का कहना है.....

भँवर

प्रतिभा : मैंने फ़ायड पढ़ा है, पर शायद मैं उन लोगों में से हूँ जो शादी के लिए नहीं बने। आप नाटक किस विषय पर लिख रहे थे।

ज्ञान : फ़ायड कहता है—पवित्र प्रेम महज़ कपोल-कल्पना है। हर प्रेमी अपने हृदय की किसी गहन गुफा में यौन-भावना को छिपाये होता है—लेकिन मेरा खयाल है कि स्थायी प्रेम उतना शारीरिक नहीं होता जितना आध्यत्मिक।

प्रतिभा : स्थायी प्रेम अतृप्ति का दूसरा नाम है।

ज्ञान : आप ठीक कहते हैं। कई बार स्थायी प्रेम अतृप्ति के सिवा और कुछ नहीं होता। आदमी अपने प्रेमी के साथ अपना यौन-भावना को तृप्त नहीं कर पाता और जिन्दगी भर उस अतृप्ति की आग में जलता रहता है। समझता है कि उसे अपने प्रिय से अमर, अनन्त, कभी न कम होने वाला, न मरनेवाला पवित्र प्रेम है।

प्रतिभा : हालांकि उसके अन्तर में लगातार सुलगने वाली चीज़ प्रेम नहीं, बल्कि सेक्स की वह सुलगती चिगारी होती है जो कभी धधक कर ज्वाला न बनी।

ज्ञान : आप ठीक कहते हैं। दूसरा प्रेम वह होता है जो केवल वामना की तृप्ति ही को अपना ध्येय समझता है। प्रायः लोग अपनी सुन्दर, सुशील, पतिव्रता स्त्रियों को छोड़ कर बाज़ार की किसी अनुभवी वेश्या की चौखट पर माथा रगड़ते हैं।

आदि मार्ग

और समझते हैं कि उन्हें उस वेश्या से अथाह, अपार, अनन्त प्रेम है। हालांकि उनका प्रेम उस शारीरिक आनन्द से ज्यादा कुछ नहीं होता जो उन्हें घर का शरमीली, लजीली पत्नी के सन्निध्य में प्राप्त नहीं होता।

प्रतिभा : जी !

ज्ञान : लेकिन कई बार ऐसा भी होता है कि पुरुष उस नारी से ब्याह करने को मजबूर होता है जो न सिर्फ उसके लिए कोई खास आकर्षण नहीं रखती, बल्कि जिसके शरीर से वह नफरत भी करता है, लेकिन धीरे धीरे वह नारी अपनी सरलता, शालीनता और बुद्धिमत्ता से उसके मन-मस्तक पर ऐसे छा जाती है कि वह उससे उपेक्षा के बदले प्रेम करने लगता है और उसके सीधे-साधे रूप में भी सुन्दरता ढूँढ लेता है। उसके उस प्रेम में शारीरिक प्रेम के टाइकाइड का-मा भभका नहीं होता। बल्कि यक्षमा का हल्की-हल्की सी उष्णता होती है, जो कि उस धीमी-धीमी उष्णता से उसे जीवन भर मुक्ति नहीं मिलती।

प्रतिभा : आपको शादी कर लेनी चाहिए।

ज्ञान : (आशा भरे स्वर में) शादी !

प्रतिभा : (हँस कर) किसी ऐसी ही कुरूप पर बुद्धिमती, सुशील, सरल लड़की से।

(हँस देती है ।)

ज्ञान : हम बुद्धिवादी प्रेम के सन्निपात की जंजीरों से

भँवर

कब के निकल आये हैं। हमारे यहाँ प्रेम की चिनगारी सुलग तो सकती है, ज्वाला नहीं बन सकती। यह ब्लाऊज और साड़ी किस की है ? प्रतिमा की ?

प्रतिभा : नहीं मेरी है।

ज्ञान : आप की ?

प्रतिभा : (हँसते हुए) सुलगती हुई चिनगारी को ज्वाला बनाने की काशिश कर रही हूँ।

ज्ञान : यह तो बड़ा भड़कोली है। बिलकुल बच्चों की-सी। आप तो इतनी सौम्य हैं.....

प्रतिभा : आदर्शों ज्यों ज्यों बड़ा होता है, उसके अरमान पाँछों की आर भागते हैं। मैं एक बार फिर बच्ची बन जाना चाहती हूँ।.....आज साँझ नीली के यहाँ पार्टी है।

ज्ञान : ओह —!

प्रतिभा : आप भी तो निमन्त्रित हैं।

ज्ञान : हूँ तो, पर मेरा वहाँ जाने का ज़रा भी विचार नहीं। आप जा रही हैं ?

प्रतिभा : बैठे बैठे उकता गयी थी। सोचा कि हाँ आऊँ। एक साढ़ा हाँ तो है। न गयी तो नीली रूठ जायगी। नीहार की बरस गाँठ है।

ज्ञान : बरस गाँठ (हँसते हैं) ये लोग पार्टियों के नित्य नये बहाने गढ़ लेते हैं।

प्रतिभा : आप Sceptic हैं।

Sceptic - सन्देह-शील,

आदि मार्ग

ज्ञान : जो हो, पर मैं तो इन पार्टियों में जा कर ऊब उठता हूँ। आरतें इस बात की कोशिश करती हैं कि वे अपनी कुरूपता को ज्यादा-से-ज्यादा छिपा सकें और मर्द इस बात की कि वे अधिक से अधिक Chivalrous दिखायी दें!—वही खामखिल शिष्टाचार, वही भोंडे मजाक, वही भड़े फ्रैशन।—इन पार्टियों से ज्यादा बेरस और कोई चीज नहीं। इस से तो अच्छा है कि चलिए कनाट प्लेम चलें, ज़रा काफ़ी ही पियें।

प्रतिभा : नहीं पार्टी में तो जाना ही पड़ेगा। रही साड़ी, यह अब न पहनूँगी। नीली को दे दूँगी। उसे बहुत पसन्द है।

ज्ञान : हाँ, यह उसे दे दीजिए।

प्रतिभा : एक बार पहन कर नो देखूँ, कैसी लगती है।

[साड़ी बजाऊज़ लेकर अन्दर कमरे की ओर जाने लगती है, प्रा० ज्ञान जाने को उठते हैं।]

प्रतिभा : अरे चल्त दिये। बैटिए ना।

ज्ञान : नहीं मैं अब चलता हूँ।

प्रतिभा : बैटिए भी। पानी बरमा चाहता है। भीग जायेंगे आप। मैं साड़ी बदल कर आयी। ज़रा देखिए तो कैसी लगता है मुझे।

(अन्दर चली जाती है, मन्दा आती है।)

मन्दा : (दरवाज़े से) दीदी.....(अन्दर आकर) बड़ी दीदी किधर गयी ?

भँवर

- ज्ञान : अन्दर कपड़े बदल रही हैं ।
मन्दा : एक साब आये हैं । यह कार्ड दिया है
प्रतिभा : (अन्दर कमरे से) कौन हैं ।
ज्ञान : (कार्ड पढ़ कर) जगन्नाथ !
प्रतिभा : (अन्दर से) क्रिकेट टीम के कप्तान ?
ज्ञान : कह नहीं सकता, यहाँ तो केवल जगन्नाथ लिखा हुआ है ।
प्रतिभा : (अन्दर से) वही हैं, वही हैं । मन्दा ले आ उन्हें, ज्ञान साहब ज़रा बैठाइएगा । नीली के मित्र हैं ।
मन्दा : (बैक ग्राउंड में) आ जाइए !

(जगन आता है । उसके एक हाथ में पैकेट है ।)

- जगन : (जोश से) Good Afternoon !
ज्ञान : (बेदिली से) Good Afternoon ! आइए, पधारिए ।
जगन : मिस नारायण कहाँ हैं ?
ज्ञान : साथ के कमरे में हैं । अभी आती हैं । कहिए कुछ पीजिएगा ?
जगन : धन्यवाद । मैं तो यहीं ऊपर के फ्लैट से आ रहा हूँ ।
ज्ञान : ऊपर के फ्लैट से ?
जगन : मिस नीलिमा के यहाँ से ।
ज्ञान : ओह—!

[कमरे में सीटी बजाता हुआ घूमता है;

आदि मार्ग

फिर बैठ जाता है। प्रतिभा नयी साड़ी और
ब्लाऊज पहन कर आती है।]

जगन : (उठ कर) नमस्ते जी !

प्रतिभा : नमस्ते ! कहिए आप ही मिस्टर जगन्नाथ हैं—
इंडीपेंडेंट क्रिकेट टीम के कप्तान ?

जगन : (रंग लाल हो जाता है) जी !

प्रतिभा : ये हैं प्रोफेसर ज्ञानचन्द्र, यूनीवर्सिटी में दर्शन
के अध्यापक हैं।

जगन : (उठ कर बड़े तपाक से मिलाने को हाथ बढ़ाते हुए)
हाउ डू यू डू !

ज्ञान : (यह देख कर कि जगन ने हाथ बढ़ा दिया है अतीव
अन्यमनस्कता से हाथ बढ़ाते हुए—) हाउ डू यू
डू !

प्रतिभा : कहिए कैसे पधारे ?

जगन : नीलिमा जी ने यह रुक्का दिया है और यह
पैकेट !

प्रतिभा : (रुक्का पढ़ कर) मैं यों ही पहन कर देख रही
थी। अभी बदल कर ला देती हूँ।

जगन : यही साड़ी नीलिमा जी ने माँगी है।

प्रतिभा : जी !

जगन : यह तो बड़ी सुन्दर लगती है आपको। आपके
सुनहले बालों के साथ इस का बॉटल ग्रीन
रंग.....वाह !

प्रतिभा : (मानो प्रशंसा को न सुनते हुए) नीलिमा को यह
बड़ी पसन्द है।

- जगन : पर वे.....वे तो कुछ.....
- प्रतिभा : मैं इतने शोख रंग पसन्द नहीं करती ।
- जगन : (अनिमेष दृष्टि से प्रतिभा को देखते हुए) यह तो लगता है जैसे आप ही के लिए बनी है । नोलिमा जी तो इसमें बिलकुल गुड़िया सी दिखायी देंगी ।
- प्रतिभा : (उल्लास को छिपा कर विनम्रता से) मुझे सूझियाना रंग पसन्द हैं । लाइए दीजिए मुझे, मैं बदल लूँ ।
- जगन : फिर बदल लीजिएगा, कनाट पलेस से आकर ।
(साड़ी को मेज़ पर रख देता है ।)
- प्रतिभा : पर मैं तो अभी नहीं जा सकती ।
- जगन : नोलिमा जी ने लिखा नहीं ।
- प्रतिभा : उसने लिखा है, पर मेरा मन कुछ ठीक नहीं ।
- जगन : कुछ शॉपिंग (Shopping) करनी है और मुझे यह सब नहीं आता ।
- तिभा : नोलिमा क्यों नहीं जाती आपके साथ ?
- जगन : वे तो फर्नीचर सजाने में लगी हुई हैं । चलिए वहाँ काफी हाऊस में एक-एक कप काफी पियेंगे और.....
- प्रतिभा : (जैसे उसकी अन्यमनस्कता और उदासी सहसा दूर हो जाती है !) काफी ! (.....ताली बजाती है).....That is excellent ! चलिए ज्ञान साहब आप भी चलिए ।
- ज्ञान : लेकिन पानी गिरने वाला है और मेरी सेहत

आदि मार्ग

आप जानती हैं.....

जगन : मेरी कार जो है । हम सब कार में चलेंगे ।

प्रतिभा : उठिए ! कैसी घटा घर के आयी है । चलिए,
चलिए ।

(तीनों चलते हैं ।)

(पर्दा ।)

दूसरा दृश्य

[पर्दा दो अढ़ाई घंटे बाद उसी कमरे में उठता है । प्रतिभा ड्रेसिंग-टेबल के सामने खड़ी, अपने बालों में अंगुलियों से कंधी कर रहा है । प्रमिला प्रवेश करती है—बारह-तेरह बरस की सुन्दर, अबोध, चंचल लड़की—प्रतिभा की सब से छोटी बहन है !]

प्रमिला : मुझे बुलाया छांटी दीदी ?

प्रतिभा : मीली, जा तो ज़रा मेरा टॉयलेट-बक्स उठा ला ! दीदी के कमरे का आईना बड़ा है । मैं यहीं तैयार हूँगी । अपने उस ज़रा से शीशे के आगे तो मुझ से कुछ होता ही नहीं ।

प्रमिला : मैं तो नीचे जा रही हूँ । तुम आप जाकर ले

आदि मार्ग

आओ ।

प्रतिमा : बड़ी अच्छा है मेरी मीली बहन, (जाकर उसकी पीठ थपथपाती है) जा तो ज़रा भाग कर !

प्रमिला : मैं तुम्हारा आड़ीना का पाऊंडर लूँगी फिर ।

प्रतिमा : तुम्हारा जो है ।

प्रमिला : मैं तुम्हारा लूँगी ।

प्रतिमा : अच्छा ले लेना । अब जाकर ले आ जल्दी । दादा आ जायँगी तो फिर भागना पड़ेगा यहाँ से ।

[प्रमिला जाती है । प्रतिमा प्रतिभा की कंधी उठा कर केश सँवारती और गाती है :—]

दुल्हनियाँ छुमा छुमा छुमा छुमा चली
तन पर हैंसता इक इक गहना
भावना भादो जैसे नयना
आज जवानी का फुलवारी
फूली और फली !

प्रमिला : (आते आते दरवाज़े से) किस की दुल्हनियाँ ?
(शरारत से मुस्कराती है) जगन भय्या की ?

प्रतिमा : हश्त ! ला इधर !

(बरामदे में प्रतिभा और जगन बातें करते हुए आते हैं ।)

जगन : यह सामान आप नीलिमा जी के यहाँ भिजवा दें । मैं इतने में आप का ब्लाऊज़ और साड़ी ले आता हूँ ।

प्रतिभा : अभी दीनू को आवाज़ देती हूँ। दीनू.....
दीनू!

प्रतिभा : ऊई ! लो यह बक्स और भागो ।

[दोनों आँगन के दरवाज़े से भाग जाते हैं । प्रतिभा प्रवेश करती है, जगन भी साथ है । वह दरवाज़े के पास ही रुक जाता है ।]

जगन : मैं अभी जाता हूँ। सिर पर सवार न हूँगा तों वे कभी समय पर न देंगे ब्लाऊज़ ।

प्रतिभा : (दरवाज़े के समीप ही) मैं बड़ी आभारी हूँ । आपसे मिल कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । इतना समय बीत गया और पता भी नहीं चला । यह साड़ी ब्लाऊज़ लाने का कष्ट मैंने आपको यों ही दिया ।

जगन : कष्ट कैसा, मेरी तो बड़ी देर से इच्छा थी आप से मिलने की । कई बार माँका ढूँढने की कोशिश की पर मिल ही न सका ।

प्रतिभा : आप अच्छे समय पर आये, मैं स्वयं कुछ ऊँची-ऊँची महसूस कर रही थी ।

जगन : (एक हाथ से दीवार का सहारा ले, जम कर बात करते हुए) आप कुछ एकसरसाइज़ किया करें ।

प्रतिभा : (कलाई की घड़ी को देख कर) एकसरसाइज़ !

जगन : (बिना इस बात की ओर ध्यान दिये कि प्रतिभा बड़ी में समय देख रही है) शरीर के लिए कसरत उतनी ही ज़रूरी है, जितनी साफ़ हवा ।
पिंग-पांग, बेडमिंटन, टेबल-टेनिस—क्या

आदि मार्ग

आपको किसी में भी दिलचस्पी नहीं ?

प्रतिभा : (हँस कर) आज तक तो मेरी एकसरसाइज मानसिक ही रही है। अब सांचती हूँ, कोई आऊट-डोर (Out-door) खेल ज़रूर खेला करूँगा। अब आप से परिचय हुआ है तो.....

[बात समाप्त करना चाहती है, 'नमस्ते' के लिए दोनों हाथ भी ज़रा बढ़ाती हैं पर जगन नहीं देखता, अपनी बात जारी रखता है।]

जगन : आप ज़रूर ही किसी क्लब की मेम्बर बन जाइए। इंडीपेन्डेंट-क्रिकेट-क्लब की मेम्बरशिप बड़ी सीमित है, पर आप चाहें तो बड़ी आसानी से प्रबन्ध हो जायगा। मैंने प्रतिभा जी से भी कहा था। बड़ा अच्छा हो यदि आप दोनों.....

प्रतिभा : प्रतिभा से.....!

जगन : उन्हें भी किसी न किसी खेल में ज़रूर भाग लेना चाहिए (हँसता है) नहीं वे मांटी हो जायँगी। हमारे देश की सब से बड़ी ट्रेजेडी ही यह है कि स्त्रियाँ व्यायाम में दिलचस्पी नहीं लेतीं।

प्रतिभा : मैं स्पोर्ट्स को बहुत पसन्द करती हूँ, पर मेरा ज्यादा वक्त पढ़ने-लिखने में गुज़रा है। और जिन लोगों से मेरी संगति है, वे सब के सब इन्टलेक्चुअल हैं।

(फिर घड़ी देखती है।)

जगन : (बिना संकेत समझे) आप मेरे साथ चलिए ।
इंडीपेन्डेंट-क्रिकेट-क्लब स्पोर्ट्स के विचार से
सब से अच्छा क्लब है । आप किसी खेल में
भाग तो लें । आप की सब थकन, सब उकताहट
जाती रहेगी ।

प्रतिभा : (ऊब कर विषय को बदलते हुए) यह दीनू नहीं
आया । (आवाज़ देती है) दीनू.....दीनू ।

दीनू : (आँगन से) जी आया ।

('जी'.....'जी' कहता हुआ भागा आता है ।)

प्रतिभा : मोटर में कुछ सामान पड़ा है, वह सब ऊपर
पहुँचा दे ।

दीनू : जी !

(सिर झुका कर चला जाता है ।)

जगन : (जिसे यह दखन-ग्रन्दाजी नहीं भायी, कुछ और
जोश से अपनी बात जारी करते हुए) मैं आप से
सच कहता हूँ, मैं बीमार रहा करता था, मेरा
रंग पीला-पीला और स्वभाव बेहद चिड़चिड़ा
था; लेकिन कालेज में दाखिल होते ही मैंने निय-
मित रूप से कसरत करनी शुरू कर दी । मैं
बड़ नहीं हँकना—हज़ार-हज़ार डंड तो मैं
एक ही हल्ले में पेल जाया करता था ।

(प्रतिभा एक थकी सी हँसी हँसती है ।)

जगन : और बी० ए० तक जाते जाते मैं अपने कालेज
की क्रिकेट-टीम का कप्तान हो गया । क्रिकेट ही
नहीं, फुटबाल में भी मैं कालेज की इलैवन में

आदि मार्ग

था और फिर लाँग जम्प, हाई-जम्प, सौ गज की दौड़, यहाँ तक कि क्रास-कंटरी-रेस.....

प्रतिभा : (कलाई पर घड़ी देख कर) सवा पाँच बजने को हैं ।

जगन : लीजिए मैं चला । आप शुरू तो कीजिए किसी खेल में भाग लेना ।

प्रतिभा : आप से परिचय हो गया है तो.....

(दोनों हाथ मस्तक तक ले जाती है ।)

जगन : लीजिए अभी लेकर आया दोनों चीजें । कितनी सुलभी हुई रुचि है आपकी । यह नया डिज़ाइन भी कितना अच्छा चुना है आप ने !

प्रतिभा : वक्त पर पहुँच जाइएगा, नहीं मैं जा न सकूंगी पार्टी में ।

जगन : जी मैं अभी आया ।

(चला जाता है ।)

प्रतिभा : (कौच में थँस कर एक थकी सी अंगड़ाई लेती है) उफ़ ! कितना सीमित है इस व्यक्ति का घेरा ! कितनी बातें करता है और फिर कितनी बेकार और बेमतलब ! यह भी नहीं देखता कि दूसरा सुनते सुनते ऊब गया है । (बाजू कौच पर पीछे फेंक कर टाँग पसार लेती है) भगवान ने क्यों किसी को सम्पूर्ण नहीं बनाया ! कितना सुन्दर और सुडौल है यह जगन, लेकिन दिमाग से कितना कोरा ! और ज्ञान कितने योग्य पर कितने दुबले-पतले ! (सिर कौच के बाजू पर टिका

कर लेट जाती है) प्रोफेसर नीलाभ.....प्रोफेसर नीलाभ.....कितने सुन्दर और फिर कितने योग्य.....!!

(नीलिमा घबरायी हुई प्रवेश करती है ।)

नीलिमा : मुझे क्षमा करना तीभा, लेकिन जगन अभी तक आया नहीं और मैं अपनी ओर से सारा प्रबन्ध कर चुकी हूँ ।

प्रतिभा : हम काफ़ी पीने चले गये—प्रो० ज्ञान, मैं और जगन । वहीं पर हरदत्त साहब भी मिल गये ।

नीलिमा : लेकिन प्रतिभा.....

प्रतिभा : रास्ते में मुझे एक रेडो-मेड ब्लाऊज और साड़ी पसन्द आ गयी । ब्लाऊज की फिटिंग ठीक न थी, इसलिए दर्जी ही को दे आयी । जगन उसे लेने गया है । ठीक कर दिया होगा अब तक दर्जी ने । बड़ा ही सादा डिज़ाइन है ब्लाऊज का । स्लीव-लेस.....

नीलिमा : पर तीभा, यह क्या अनर्थ कर दिया तुमने ? नोहार रो रो कर प्राण दे देगी । निर्मल और उसके मित्र आ रहे हैं और घर में कोई चीज़ नहीं कि उनकी कुछ आवभगत ही हो सके ।

प्रतिभा : कोई चीज़ नहीं ! अभी तो दीनू के हाथ सब कुछ भेजा है ।

नीलिमा : दीनू के हाथ, कहीं भी तो नहीं ।

प्रतिभा : (नौकर को आवाज़ देती है) दीनू.....दीनू !

दीनू : (आँगन से) जी दीदी !

आदि मार्ग

('जी' 'जी' करता हुआ भागा आता है ।)

प्रतिभा : सामान नहीं पहुँचाया इनका ?

दीनू : (आश्चर्य से) इनका, मैं तो साथ के फ्लैट में रख आया हूँ ।

प्रतिभा : मैंने तुम से कहा था, ऊपर पहुँचा दो !

दीनू : ऊपर ! मैंने समझा आपने कहा 'उधर' ! मैंने साथ के बरामदे में रख दिया ।

प्रतिभा : बात तो ठीक से सुनते नहीं हो और जो जी में आता है कर देते हो । जाओ, तुरन्त सब सामान ऊपर पहुँचा कर आओ इनके यहाँ ।

दीनू : जी, बहुत अच्छा ।

नीलिमा : जगन को तुम्हारे साथ ही घूमना था तीभा, तो उसने मुझे बता क्यों न दिया । और वहाँ प्रतिभा और नीहार.....

प्रतिभा : यह साड़ी ब्लाऊज़ तुम ने माँग भेजे थे और इसका रंग तुमने कहा था सन्यासियों जैसा है और मैंने सोचा कि सादा ब्लाऊज़.....

नीलिमा : (क्रोध से) मैं वहीं पहन लेती लेकिन तुम.....

प्रतिभा : (बड़े धैर्य से) चीख क्यों रही हो, सब सामान तो तुम्हें पहुँच ही गया है । रहा जगन, तो उसे भी पहुँचा दूँगी ।

नीलिमा : मुझे क्या, मैंने तो प्रतिभा के लिए यह सब किया है ।

(तेज़ तेज़ चली जाती है ।)

प्रतिभा : (उसके पोछे जाते हुए) अरे जा क्यों रही हो,

यह साड़ी तो लेती जाओ ।

नीलिमा : नहीं, मैं अपने वाली ही पहन लूँगी ।

[मुड़ती है और मेज़ पर से अपनी साड़ी और ब्लाऊज़ वाला पैकेट लेकर चली जाती है ।]

प्रतिभा : (वापस आते हुए) ये लोग कितनी जल्दी गलत अन्दाज़े लगा लेते हैं !

(प्रतिभा आती है ।)

प्रतिभा : दीदी, निगोड़ी इस आई-ब्रा-पेंसिल का उपयोग ही करना मुझे नहीं आता । ठीक तो कर दो मेरी भवें ।

प्रतिभा : अरे तोमा.....वाह ! तुम तो ऐसे बन-सँवर रही हो जैसे नीहार की नहीं, तुम्हारी बरस-गाँठ है ।

प्रतिभा : तुम भवें ठीक कर दो दीदी ।

प्रतिभा : लाओ ।

[प्रतिभा को शीशे के सामने ले जाकर उसकी भवें ठीक करती है ।]

प्रतिभा : यह तुम्हारा ध्यान किधर है दीदी, सँवार रही हो या बिगाड़ ?

प्रतिभा : मैं सोचती हूँ कि जगन और तुम्हारी जोड़ी कैसी अच्छी रहे ।

प्रतिभा : दीदी.....जाओ हम आप ही ठीक कर लेंगे सब !

(तिनतिनाती हुई चली जाती है ।)

आदि मार्ग

प्रतिभा : दोनों सुन्दर और स्वस्थ हैं, लेकिन दोनों दिमाग से कोरे !

हरदत्त : (दरवाजे पर दस्तक देते हुए) भई मैं आ सकता हूँ ?

प्रतिभा : आ जाइए !

हरदत्त : तीभा, तुम इतनी जल्दी ज्ञान से उकता जाओगी, मुझे इस की आशा न थी ।

प्रतिभा : मैं ज्ञान साहब से उकता नहीं गयी ।

हरदत्त : उकता नहीं गयीं । (हँसता है—हेट खूँटी पर टँगता है और कौच में धँस जाता है) तुम अपने आप का भारी धोखा दे रही हो तीभा । मैं तो भला तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ, लेकिन कोई अपर्याप्तता भी तुम तीनों को देखता तो एक नज़र में भाँप लेता कि तुम ज्ञान से कितनी ऊँची हुई हो ।

प्रतिभा : आप मुझे अच्छी तरह जानते हैं हरदत्त साहब ?

हरदत्त : तुम्हें (तिपाई पर टँगें पसागते हुए हँसता है) मैं तुम्हारे स्वभाव के हर उतार चढ़ाव से वाकिफ हूँ । जगन से बातें करने में तुम इतनी लीन थीं कि ज्ञान बेचारे का मुँह ज़रा सा निकल आया । तुम्हें अगर जगन ही के साथ बातें करना थी तो ज्ञान का साथ क्यों ले गयी थी ?

प्रतिभा : जगन ने किसी दूसरे से बात करने का मौका भी दिया ! और फिर मैं तो ज्यादा बक्त आप ही के साथ रही ।

हरदत्त : यह कोई नया अस्त्र नहीं तुम्हारा, तुम एक तीर

से तीन शिकार करना चाहती हो ।

प्रतिभा : तीन !

हरदत्त : (हँस कर) दो सही, क्योंकि मैं तो न तुम्हारे कृपा-कटाक्ष से जीता हूँ न उपेक्षा-दृष्टि से मरता हूँ ।

प्रतिभा : जनाब तो.....

हरदत्त : और जैसा मैंने तुम से कई बार कहा है—असल में मैं ही पूरे तौर पर तुम्हारे सहचर्य के योग्य हूँ । लेकिन प्रतिभा, तुम घोर आत्म वचना का शिकार हो । तुम क्या, आत्म-वचना स्त्री के स्वभाव का एक आम गुण है ।

प्रतिभा : आपकी दोनों बीबियाँ शायद मरते दम तक आत्म वचना का शिकार रहीं ।

हरदत्त : मेरी बीबियाँ ?

प्रतिभा : या यों कह लीजिए कि आप ने उन्हें घोर आत्म-वचना में फँसाये रखा । वे समझती रहीं कि उनका पति उनसे प्रेम करता है, उनका भक्त है और शायद मुझे भी आप इसी आत्म-वचना में फँसाये रखना चाहते हैं । आप कहते हैं कि आपको मुझ से प्रेम है ।

हरदत्त : प्रेम (बेपरवाही से हँसता है ।) शायद नहीं, लेकिन मैं समझता हूँ—मैं ही पूरे तौर पर तुम्हारा जीवन-साथी होने के योग्य हूँ ।

प्रतिभा : हालाँकि आप की उमर.....

हरदत्त : तुम से केवल दस वर्ष बड़ा हूँ ।

आदि मार्ग

प्रतिभा : या केवल पन्द्रह !

हरदत्त : पन्द्रह ही सही, लेकिन जीवन में दो शादियों के बाद मैं जहाँ पहुँचा हूँ, तुम एक ही के बाद वहाँ पहुँच गयी हो ।

प्रतिभा : याने.....?

हरदत्त : उकताहट, घुटन और शून्य हम दोनों जीवन में एक सा अनुभव करते हैं ।

प्रतिभा : आप तो नहीं करते । सिनेमा और पिकनिकें...

हरदत्त : शून्य को भरने का असफल-सा प्रयास है । जिन्दगी से समझौता समझ लो । बेचैनी नहीं होती ।

प्रतिभा : बेचैनी !

हरदत्त : या यों कह लो, बेचैनी कम होती है । तीभा, हम दोनों उस उमर को पार कर चुके हैं जब मन रोमान चाहता है । यही तो मुसीबत है । तुम इस यथार्थ को नहीं समझती । मेरा सिनेमा और पिकनिकों में मन लगाना और तुम्हारा एक के बाद दूसरे व्यक्ति को अपने साथी के रूप में परखना बेकार है—एक दम बेकार ! मैं सोच रहा हूँ, मुझे फिर शादी कर लेनी चाहिए । (कुछ क्षण दोनों मौन रहते हैं) और मैं तुम्हें भी यही परामर्श देना चाहता हूँ । तुम्हें भी अब कहीं टिक कर बैठ जाना चाहिए—किसी ऐसे स्थान पर जहाँ तुम्हारी थकी हुई आत्मा को शान्ति मिल सके ।

- प्रतिभा : (हँस कर) और वह स्थान आपके सिवा और कहीं नहीं !
- हरदत्त : मैं दो ब्याह कर चुका हूँ और मेरे दोनों ब्याह सफल थे.....
- प्रतिभा : खेद है कि इस बात की साक्षी देने वालियाँ अब इस संसार में नहीं ।
- हरदत्त : तुम मेरी बात चाहे हँसी में उड़ा दो, लेकिन तीभा, ब्याह असल में एक कला है और जो लोग इस कला को जाने बिना ब्याह कर लेते हैं, वे उसे निभा नहीं पाते । जब वे उसे समझने लगते हैं तो जीवन के मधु में विष मिल चुका होता है, जिस से छुटकारा पाना उनके बस में नहीं होता । मैंने काफ़ी मूल्य चुका कर ब्याह की कला सीखी है । मेरे साथ रह कर तुम्हें पूरी शान्ति मिलेगी । जगन और ज्ञान तो अभी बच्चे हैं ।

(मन्दा दरवाज़े से भाँकती है ।)

- मन्दा : बड़ी दीदी, जगन बाबू आये हैं ।
- प्रतिभा : आइए !
- जगन : (आते हुए) वही बात हुई न प्रतिभा देवी । दर्जी ने बड़े आराम से एक ओर रख दिया था । मैं जाकर उसके सिर पर सवार न होता तो ब्लाऊज़ कभी समय पर न मिलता ।
- प्रतिभा : मैं किस तरह आपको धन्यवाद दूँ ? ठीक

आदि मार्ग

समय पर ले आये आप । लोग तो आने लगे होंगे । मैं ज़रा कपड़े बदल लूँ ।

हरदत्त : यह तुम ने अच्छी भली तो पहन रखी है साड़ी ।

जगन : मैंने तो कहा था—आपके सुनहले बालों के साथ इसका बॉटल ग्रीन रंग बड़ा ही सुन्दर लगता है ।

प्रतिभा : (बेपरवाही से) मैं तड़क-भड़क पसन्द नहीं करती ।

जगन : तो फिर आपने क्या फ़ैसला किया ? बात यह है कि रास्ते में मुझे कुमार मिल गया, कुमार—इंडीपेंडेंट क्लब का मंत्री ! मैंने उससे आप की बात कही । वह बड़ा प्रसन्न हुआ । मैं सच कहता हूँ, आप फ़ैसला तो करें क्लब ज्वाइन (Join) करने का । बैडमिन्टन आपको बेहद सूट (Suit) करेगी । एक बार आप खेलना तो शुरू करें, फिर आप छोड़ न पायेंगी, इसका मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, इसी स्पोर्ट्स की कृपा से मैं.....

प्रतिभा : (उसकी बात काट कर मुस्कराते हुए) नीलिमा आपको बुला गयी है । आप चलिए उससे कहिएगा हम अभी आ रहे हैं । मैं ज़रा कपड़े बदल आऊँ ।

हरदत्त : कपड़े क्या बदलांगी, ठीक तो हैं ये कपड़े ।

मन्दा : ज्ञान साहब आये हैं बड़ी दीदी ।

ज्ञान : (आते हुए) नमस्ते !

प्रतिभा : (ज्ञान साहब को देखकर) ज्ञान साहब ने कहा

था—इसकी तड़क-भड़क बच्चों को फबती है।

हरदत्त : ज्ञान साहब का सहारा क्यों लेती हो, अपने मन की अस्थिरता.....

जगन : (जो अभी तक वहीं है) लेकिन यह डिज़ाइन जो आपने चुना, यह भी खूब है !

ज्ञान : कोई नया डिज़ाइन चुना आपने ?

प्रतिभा : अभी यह खरीद कर लायी हूँ, आप ही ने तो कहा था।

ज्ञान : हाँ, इस में सौम्यता है !

जगन : सौम्यता भी और चांचल्य भी, विरक्ति भी और आसक्ति भी ! पहनें तो सही। देखिएगा कितना खिलता है यह आप के रंग पर ! कितना सीधा-सा^सधा और फिर कितना आकर्षक !

(स्वयं ही हँसता है ।)

प्रमिला : (दरवाजे से झाँक कर) बड़ी दी, नीली दीदी बुला रही हैं आप लोगों को।

हरदत्त : भई मैं तो सिनेमा देखने के लिए बुलाने आया था तुम्हें।

प्रतिभा : अभी सिनेमा का शो आरंभ होने में समय है। ज़रा ऊपर चलिए, कुछ देर बैठ कर चले जाइएगा।

ज्ञान : मैं तो यही कहने के लिए आया था कि मुझे तो चूमा ही कीजिएगा।

प्रतिभा : लेकिन प्रोफ़ेसर साहब !

आदि मार्ग

जगन : (अत्यन्त असंगत रूप से हँसते हुए) बैठिए, बैठिए
आप भी ! अब जब प्रतिभा देवी अनुरोध कर
रही हैं.....

प्रतिभा : आप लोग बैठिए, मैं साड़ी बदल कर अभी
आयी।

(भीतर कमरे में चली जाती है ।)

(पर्दा गिरता है ।)

तीसरा दृश्य

[पर्दा एक डेढ़ घंटे बाद उसी कमरे में उठता है। कमरे में अँधेरा है। केवल खिड़की और आँगन से मध्यम सा प्रकाश आता है।

पर्दा उठने के बाद कुछ क्षण तक कमरा खाली रहता है। फिर प्रतिमा तेज-तेज आती है और धम्म से कौच में गिर कर सिसकने लगती है। प्रमिजा उसके पीछे धीरे-धीरे आती है।]

प्रमिला : दीदी, छोटी दीदी !

(प्रतिमा सिसकती है।)

— : छोटी दीदी, बताओ तो सही क्या बात है ?

(प्रतिमा सिसके जाती है।)

आदि मार्ग

प्रमिला : दीदी, अब बता भी दा क्या हुआ ? आकर यहाँ अँधेरे में पड़ रही हो। ऊपर तो अब गाना होने वाला है। विमल बहन गायँगी ! (उत्तर सुनने के लिए चुप रहती है) किसी ने कोई तीखी बात कह दी तुम्हें ?..... दीदी !

(प्रतिमा सिसके जाती है)

— : दीदी देखो, मैं भी रोने लगूँगी ।

प्रतिमा : तंग न करो मीला । पड़ी रहने दा अकेली !

प्रमिला : यहाँ अँधेरे में, हुआ क्या आखिर ? बत्ती तो जला ला ।

प्रतिमा : (लगभग रोते हुए) मीला, मुझे तंग न करो ।

प्रमिला : मैं जाकर कहती हूँ नीला दीदी से कि छोटी दीदी आप लोगों से रूठ कर नीचे पड़ी रो रही हैं ।

(भाग जाती है ।)

प्रतिमा : (भरे हुए गले से अपने आप) नीला दी..... एक वे हैं कि अपनी सगी बहन से भी बढ़ कर समझती हैं और एक ये हैं दीदी कि.....

[फूट-फूट कर रो पड़ती है । पृष्ठ-भूमि

में नीहार की आवाज़ आती है ।]

नीहार : तीमा,

(प्रवेश करती है और बिजली का बटन दबाती है ।)

नीहार : प्रतिमा.....क्या कसूर हो गया मुझ से..... मीला कहती है, तुम मुझ से रूठ कर.....

प्रतिमा : नहीं, मुझे तुम से गुस्सा नहीं !

नीहार : नीला दीदी ने कुछ रुढ़ दिया.....;

प्रतिमा : नहीं वे क्या कहती.....

नीहार : तो फिर.....तो फिर.....जगन भय्या.....

[प्रतिमा सम्हलते सम्हलते फिर सिसकने लगती है ।]

नीहार : अरे क्या कह दिया जगन ने ?

प्रतिमा : कह दिया—उँह ! उन्हें करने की फुर्सत ही कहाँ है ?

नीहार : क्यों ?

प्रतिमा : देख ही तो रही थीं । जब से ऊपर गये हैं दादा के आगे पीछे मँडला रहे हैं । देखते तक नहीं ।

नीहार : एक जगन ही क्या, वहाँ सभी भँवरे बने हुए हैं ।

प्रतिमा : तुम्हारा निर्मल भी तो.....

नीहार : निर्मल (व्यथा से हँसती है) और नीला दा मेरी सगाई करना चाहती थीं उससे ।

प्रतिमा : तुम भी तो कम पसन्द न करती थीं निर्मल को ।

नीहार : हाँ, मैं भी मूर्ख बनी रही इतने दिन, पर जनाब कितनी बातें करते थे और क्षण भर में तीभा दी ने जादू कर दिया । एक बार जो उनके पास जाकर बैठे तो बस वहीं के हो रहे । फिर जो उन्होंने कुछ प्यास की शिकायत की तो भागे उनके लिए शरबत लेने । मैं निगोड़ी रास्ते में पड़ गयी । ऐसे देखा जैसे कभी जान पहचान तक न थी ।

प्रतिमा : मुझे दीदी पर क्रोध आता है ।

नीहार : और मुझे निर्मल पर ।

आदि मार्ग

प्रतिमा : जिस किसी से भी मिलती हैं, वही उनके गुण गाने लगता है। उसे मजबूर कर देती हैं कि वह उन्हीं के आस-पास मँडलाये और वे पागल, वे समझते हैं, वे उन्हें पसन्द करती हैं, उनसे प्रेम करती हैं, हालांकि वे उनसे खेलती हैं—जैसे बिल्ली चूहे से !

नीहार : दीदी उन सब से घृणा करती हैं, वे उन सब को अत्यन्त तुच्छ समझती हैं। कई बार उनकी मुस्कानों के भीने पर्दे में से नफरत की यह झलक साफ दिखायी दे जाती है और उनके मस्तक पर नन्हें नन्हें तेवर पड़ जाते हैं। न जाने लोग उनके मुख पर अंकित घृणा के इन भावों को क्यों नहीं देख पाते !

प्रतिमा : तुम भूलती हो। वे उनसे नफरत नहीं करती, वे उन्हें पसन्द करती हैं। यह देख कर कि अपनी एक मुस्कान या एक कटाक्ष से वे इतने लोगों को पागल बना सकती हैं, उनके अहम् को बड़ा संतोष मिलता है—किसी की प्रशंसा करके, किसी की आलोचना कर, किसी की हँसी उड़ा कर और किसी को हँसी करने का अवसर देकर वे उन सब को अपने गिर्द इकट्ठे कर लेती हैं—उन सब पतंगों में वे चंचल दीप-शिखा सी बनी रहती हैं।

नीहार : शायद तुम उनके साथ अन्याय कर रही हो। कसूर दीप शिखा का नहीं, पतंगों का है। मैंने

तीभा दीदी को अच्छी तरह देखा है। उनका अपराध यह है कि उनके पास सुन्दरता ही नहीं, बुद्धि का भी अतुल भंडार है। यही कारण है कि सुरेश के साथ उनकी न बनी, हालाँकि शकुन्तला उसे पाकर बड़ी खुश है। वे किसी को बुलाने नहीं जातीं। लोग आप-से-आप उनके पास खिंचे चले आते हैं। उनका दोष यह है कि वे उन्हें धतकार नहीं देती। मन बुझा हुआ होने पर भी मुस्कराती रहती हैं। यद्यपि धीरे-धीरे उनके मुख पर घृणा की रेखाएँ बनती-मिटती रहती हैं। निर्मल शायद समझ रहा है कि वह सौ मील की रफ़्तार से मोटर चलाने अथवा शतरंज में बड़े-बड़े खिलाड़ियों को मात देने की बड़हाँक कर उन पर बड़ा प्रभाव डाल रहा है। हालाँकि वे उसे केवल बच्चा समझती हैं और उसकी बातें सुन कर योंही शिष्टाचार-वश हँस देती हैं। मैं कहती हूँ उसे सृष्टी क्या ?

प्रतिमा : तुम मानो चाहे न मानो, लेकिन मैं दीदी को जानती हूँ। आज वे जगन को लिये हुए दिन भर घूमती रहीं और फिर आते ही ऐसी छायाँ पार्टी पर कि किसी को बात करने का अवसर ही नहीं दिया।

नीहार : और मैं इतने दिनों से अभ्यास कर रही थी गाने का। अभी पहला बन्द भी ख़तम न किया

आदि मार्ग

था कि वे ऊपर आयीं। बस फिर किसको रहती गाने की सुध—धीरे-धीरे सब उठ कर उनके पास जा बैठे। अब इसमें उनका क्या दोष ? यह तो निर्मल और जगन.....

प्रतिमा : पर तुम ने गाना बन्द क्यों कर दिया ?

नीहार : कोई सुन भी रहा था मेरा गाना ।

नीहार : (पृष्ठ-भूमि में निर्मल की आवाज़ आती है ।)

निर्मल : नीहार !.....अरं भई कहाँ हो तुम ?

प्रतिमा : (धीरे से) निर्मल है शायद, (जोर से) आ जाइए ।

निर्मल : (भीतर आकर) तुम गाना छोड़ कर नीचे क्यों आ गयीं नीहार ? भगवान कसम ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गया तुम्हें । विमल आ गयी है गाने के लिए तैयार होकर.....

नीहार : मिल गया अवकाश किसी को गाना सुनने का !

निर्मल : अरं भई वह प्रतिभा देवी के आने मे कुछ disturbance हुई थी, लेकिन मैं तो इस प्रतीक्षा में था.....

नीहार : (व्यंग मे) कि कब कुमारी नीहारिका देवी अपने कलकंठ से फिर अपना मधुर-गान आरम्भ करती हैं ।

निर्मल : मैं पूछता हूँ हां क्या गया है तुमको ?

नीहार : तीभा दी के आदेश पूरे करने से मिल गया समय यह सोचने का आपको !

निर्मल : तो यह बात है (खोखला ठहाका लगाता है) मैं कहता हूँ, तुम भी पागल हो नीहार ।

जी पागल !

(जगन शीघ्र-शीघ्र आता है ।)

जगन : (खिसियानी हँसी के साथ) भई, आप यहाँ आकर बैठ गये और वहाँ आप लोगों को ढूँढा जा रहा है । क्यों नीहार, मेहमानों का अच्छा सत्कार करती हैं आप ?

नीहार : फुर्सत मिल गयी आपको भी अपने आस पास देखने की ?

जगन : विमल की माता जी चाहती हैं कि विमल अपना गाना सुनाये । दो चार चार उन्होंने जिक्र किया कि विमल अब अच्छा गाने लगी है । इस पर दो चार ने विमल जी से गाने का अनुरोध किया । पता चला कि नीहार और प्रतिमा गायेंगी तो विमल भी गायेंगी । और यहाँ नीहार और प्रतिमा हैं कि नीचे कन्फ़रेन्स में मगन हैं ।

(स्वयं ही हँसता है ।)

निर्मल : मैं भी इन्हीं को बुलाने आया था, लेकिन ये दोनों यहाँ मुँह फुलाये बैठी हैं ।

जगन : आखिर क्यों ? कुछ बात भी हो !

प्रतिमा : (तिक मुस्कान से) कुछ नहीं । डाक्टर ने कहा है, कभी कभी मुँह फुला लिया करो, सेहत अच्छी रहती है ।

जगन : प्रतिमा !

प्रतिमा : आप जाइए न, विमल जी का गाना सुनिए । हमारा मन ठीक नहीं ।

आदि मार्ग

निर्मल : नीहार !

नीहार : तीमा दी के सामने आप लोग अपने को इतना भूल गये, आपको इस बात का ध्यान तक न रहा कि कोई और भी बैठा है वहाँ ।

निर्मल : उन्होंने खास तौर पर मुझे बुलाया था । और यह सख्त बदतमीजी होती यदि मैं किसी तरह की माफी माँगे बिना उनके पास से उठ आता ।

नीहार : जी हाँ ! आपको बुलाया था । भला कोई दूसरा था वहाँ बुलाने के लिए ।

जगन : और भाई तीमा, मैंने तुम से पहले ही कह दिया था । भई मुझे तो तुम्हारी दीदी पर अच्छा असर डालना था ।

प्रतिभा : (व्यंग्य भरी मुस्कान से) जी !

(पृष्ठ-भूमि में हारमोनियम बजता है ।)

निर्मल : हार कर विमल जी शायद स्वयं ही गाने लगी हैं ।

[बरामदे में प्रतिभा और ज्ञान के

बातें करते हुए आने की आवाज़ आती है ।]

प्रतिभा : मुझे चिढ़ है इन किल्मी गानों से—घटिया, भावुक किल्मी गाने—न जाने लोग कैसे बैठे बैठे सुना करते हैं इन्हें ?

निर्मल : (धीरे से) चलो चलो । प्रतिभा देवी को चिढ़ है किल्मी गानों से और किल्मी गीत गाने वालों से ।

जगन : (हँसते हुए धीरे से) और किल्मी गीत गाने

वालियों से । चलो चलो इस आँगन से निकल
चलो जल्दी ।

[सब आँगन के दरवाजे से निकल
जाते हैं । बरामदे की ओर से ज्ञान और
प्रतिभा बातें करते हुए आते हैं ।]

ज्ञान : आप तो किल्मी गीत गाये जाने की बात सुन
कर ही उठीं, मैं तो सब जानिए, मन से
बैठा ही न था । आपके लिए चला गया
था मैं तो, नहीं मुझे बड़ी भुँकलाहट होती
है ऐसी पार्टियों से । भला अब विमला
की माता जी इस बात पर जोर दे रही हैं कि
सब गानें छोड़ कर विमला का गाना सुना जाय,
मानो किसी थर्ड-रेट फिल्म का थर्ड-रेट गाना
थर्ड-रेट ढंग से गाकर वे सुनने वालों पर कोई
बड़ा एहसान कर देंगी ।

प्रतिभा : और भिसेज गुप्ता चाहती हैं कि उनकी लड़की
का कथाकली-डॉस देखा जाय (हँसती है)
कथाकली डॉस ! किसी गरीब क्लर्क से उसकी
शादी हो जायगी और सारे का सारा कथाकली
डॉस धरा रह जायगा ।

(पृष्ठभूमि में गाने की आवाज़ आती है ।)

ॐ मुझे तुम से महबूबत रफ़ता रफ़ता होती जाती है ।
कि ग़म बेदार होता है, मसरत सोती जाती है ॥

ॐ मुझे तुम से धीरे धीरे महबूबत होती जा रही है ।
ग़म जागने लगा है और खुशी सोती जा रही है ।

आदि मार्ग

प्रतिभा : लीजिए, यह था गाना जिसे गाने के लिए विमला बेचैन थी। माफ़ कीजिएगा ज्ञान साहब, आप ज़रा यह दरवाज़ा बन्द कर दीजिए। मेरा तो जी उलझने लगता है ऐसी घटिया गज़लों और गानों से। मैं तो सचमुच उकता गयी हूँ यह मुहब्बत के गाने और मुहब्बत की बातें सुन कर।

ज्ञान : मुहब्बत एक सुक़ोमल और पवित्र भावना है तीभा देवी, लेकिन इन फ़िल्मों ने इसे सस्ती और घटिया बना दिया है। मैं सुबह आपसे यही कह रहा था कि उच्च कोटि का प्रेम पवित्र और चिर-स्थायी होता है और पवित्र और चिर-स्थायी प्रेम इतना वासना-मय नहीं होता कि.....

प्रतिभा : (हँस कर) कुरूप सुशील लड़की से.....

ज्ञान : (ग्विमियानी हँसी के साथ) वह तो मैंने एक उदाहरण दिया था। दर असल मेरा मतलब यह था कि जिस प्रेम की नींव सहचर्य पर खड़ी हो—खूबसूरती या बदसूरती का सवाल नहीं—उसी में आध्यात्मिक प्रेम के बीज होते हैं। शायद.....जो मैं कहना चाहता हूँ, उसे ठीक व्यक्त नहीं कर पा रहा। देखिए, जैसे हम एक मुद्दत से मिलते-जुलते हैं। एक दूसरे की आदतों को जानते और पसन्द करते हैं.....

प्रतिभा : (अपने विचारों की शै में) मैं सोच रही थी कि यह घटिया फ़िल्में किस तरह हमारे जीवन को ख़ाख़ला किये दे रही हैं। बड़े से बड़ा कट्टर-पंथी

अपने लड़के-लड़कियों को ये फिल्में दिखाने ले जाना है और जब उसके बच्चे फिल्मी गाने गाते और फिल्मी प्रेम करते हैं तो सदाचार, धर्म और मान-प्रतिष्ठा की तनवारें लेकर उनके सिर पर जा सवार होता है। क्या युवा लड़कियाँ और क्या युवा लड़के—सब इसी फिल्मी-प्रेम के बहाव में बहे जा रहे हैं। अभी ऊपर पार्टी में जगन और निर्मल ने मुझ पर कुछ इसी तरह का फिल्मी-प्रेम प्रकट करने की कोशिश की।

ज्ञान : (आश्चर्य से) फिल्मी !

प्रतिभा : 'फिल्मी' शब्द को तो उन्होंने प्रयोग नहीं किया, लेकिन उनके हाव-भाव, उनका कहने का ढंग वैसा ही था।

ज्ञान : दोनों ने एक ही बार ?

प्रतिभा : नहीं, जगन ने पहल की। मैं दोपहर हा से देख रही थी कि वह मुझ से कुछ कहना चाहता है। यथा सम्भव उसे टालती रही। मौका मिलने ही उसने कह डाला.....

ज्ञान : क्या कहा उसने ?

प्रतिभा : (मुस्कराते हुए) पहले तो हकलाया। फिर जो कुछ उसने कहा, उसका मतलब यह था कि उसे बहुत देर से मुझ पर श्रद्धा है। जब से उसने प्रतिभा से मेरे बारे में सुना है, वह मन-ही-मन मुझ से प्रेम करने लगा है। उसने नीला देवी से विशप आग्रह करके मुझे बुलाया है और वह

आदि मार्ग

मुझ से मिल कर इतना प्रसन्न हुआ हूँ जितना कभी नहीं हुआ ।

ज्ञान : (हँसते हैं) वाह !

प्रतिभा : (अपनी बात को जारी रखते हुए) कि मैंने उसका काफ़ी पीने का निमन्त्रण स्वीकार करके ज़िन्दगी भर के लिए उसे अपना दास बना लिया है । इस पार्टी से नीहार को इतनी प्रसन्नता नहीं हुई जिसकी बरस-गाँठ है; निर्मल को इतनी नुशी नहीं हुई जो उसका भावी मँगेतर है; किसी को इतना उल्लास नहीं हुआ जितना उसे हुआ है ।

ज्ञान : आपने उसे क्या उत्तर दिया ?

प्रतिभा : (हँसते हुए) मैंने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा—तुम बड़े बरखुरदार हो, लेकिन मैं तुम्हारे योग्य नहीं । यह सच है कि मैं स्पोर्ट्स की खबरें पढ़ना पसन्द करती हूँ और टेस्ट-मैचों से भी मुझे दिलचस्पी है, लेकिन यह दिलचस्पी निरी बौद्धिक है । मेरे स्वभाव के उतार-चढ़ाव से तुम चार दिन में उकता जाओगे ।

ज्ञान : (तनिक और जोर से हँसते हुए) वाह—!

प्रतिभा : प्रतिभा को उससे प्रेम है और हालाँकि उसने मुझ से कहा नहीं, लेकिन मैं जानती हूँ । सो मैंने जगन से कहा कि अपनी सरगमियाँ उसे प्रतिभा तक ही सीमित रखनी चाहिएँ और सम्भव हो तो उसी को बैडमिन्टन, पिग-पॉग या टेंबल-

टैनिस की चैम्पियन बनाने की कोशिश करनी चाहिए ।

ज्ञान : (प्रसन्न होकर ठहाका मारते हुए) वाह ! और निमेल..... ?

प्रतिभा : उसका बस चलता तो वह एकदम किल्मी एक्टरों की तरह, पूरे सुर और लय में, अपना प्रेम प्रकट करता, लेकिन उसने फिल्मों से चुने हुए कुच्छेक वाक्य कहने की ही कृपा की । जब मैंने उसे बताया कि वह अभी बच्चा है और नीहार उससे रूठ कर नीचे चली गयी है तो उसका मुँह कानों तक लाल हो गया और वह भाग गया (हँसता है) अब जाकर शायद नीहार पर अपनी मुहब्बत का रौब गाँठ रहा होगा ।

ज्ञान : (दीर्घ-निश्वास लेता है) लेकिन प्रतिभा देवी, सिनेमा देखने से एक लाभ तो हो जाता है ।

प्रतिभा : क्या ?

ज्ञान : प्रेम प्रकट करना आ जाता है ।

प्रतिभा : (चुप रहती है ।)

ज्ञान : अब मैं हूँ, लाख चाहता हूँ अपने भाव व्यक्त करूँ.....

प्रतिभा : आप !

ज्ञान : हर बार सुन्दर शब्द ढूँढता हूँ, लेकिन मुझे वे बड़े घटिया लगते हैं । मैं आप से प्रेम करता हूँ—यह कहना मुझे आकाश की ऊँचाइयों में उड़ते-उड़ते अचानक धरती पर आ गिरने-सा

आदि मार्ग

लगता है। इस पर भी मैं कई बार कहना चाहता हूँ—प्रतिभा, मैं आप से प्रेम करता हूँ—असीम प्रेम करता हूँ !

प्रतिभा : यह पार्टी का असर है, तेज़ गर्म चाय का, वहाँ के वातावरण का या फिर जगन और निर्मल की मूर्खता का ?

ज्ञान : तीभा देवी ! आप नहीं जानती, मैं कब से यह कहने के लिए बेचैन हूँ, लेकिन मुझे कभी शब्द नहीं मिले, (सहसा जैसे उसे शब्द मिल रहे हों) जब मैं आपके इन सुनहले बालों को देखता हूँ, जिनमें हल्की-हल्की लहरियाँ ऊषा के प्रशस्त प्राँगन में छोटी छोटी बदलियों-सी लगती हैं, जब मैं आपके नयनों की अथाह गहराइयों में भाँकता हूँ तो मुझे लगता है.....

प्रतिभा : ज्ञान साहब !

ज्ञान : लगता है जैसे एक अजीब-सा पुलक मेरी नस-नस में दौड़ रहा है। जैसे मेरी सारी अन्यामन-स्कता धुल-निखर कर, स्वच्छ-निर्मल उल्लास से बदल गयी है।

प्रतिभा : आज ही आप ने कहा था—हम लोग प्रेम के सन्निपात से मुक्त हो गये हैं।

ज्ञान : तीभा देवी

प्रतिभा : तो क्या मैं अब तक धोखे में रही ? तो क्या जगन, निर्मल और आप में कोई फर्क नहीं ? मैं तो आप को उन सब से कहीं ऊँचा, कहीं

योग्य, कहीं समझदार समझती थी। मैं तो आपको बुद्धिवादी.....

ज्ञान : (उठते हुए) मुझे क्षमा कर दो प्रतिभा ।

प्रतिभा : मुझे क्या मालूम था कि आप भी उसी स्तर पर उतर आयेंगे ।

ज्ञान : मैं नजिजत हूँ । अपनी इस मूर्खता के लिए क्षमा चाहता हूँ ।

(शीघ्र शीघ्र चला जाता है ।)

प्रतिभा : (उसके पीछे जाते हुए) ज्ञान साहब !.....ज्ञान साहब....!!

(दरवाजे को पूर्णतयः खोल देती है ।)

— : ज्ञान साहब !

[प्रोफेसर ज्ञान नहीं आते, पर गाने की ध्वनि फिर आने लगती है । विमला पूर्ववत् गा रही है :]

यह ग़म से कुछ तअरूक़ आज-कल ही का नहीं मेरा ।
अज़ल § से ज़िन्दगानी बोझ ग़म का ढाँती जाती है ॥

— : आह ! ये लचर फिल्मी गाने !

[जोर से दरवाज़ा बन्द करके कॉच पर आकर थकी थकी-सी घँस जाती है ।]

— : कहीं मुक्ति नहीं—इस साधारण, भावुक, घटिया वातावरण से कहीं मुक्ति नहीं ।

(उठ कर कमरे में घूमती है ।)

❖ तअरूक़ = परिचय, § अज़ल से = आदिकाल से ।

आदि मार्ग

प्रतिभा : प्रोफेसर नीलाभ ! (दीर्घ-निश्वास लेती है ।)
प्रोफेसर नीलाभ ! उनके बिना मुझे कहीं शान्ति
न मिलेगी । काश वे इतने ऊँचे शिखर पर न बैठे
होंते ! काश वे इतने विरक्त न होंते !

[टेलीफोन उठती है । बाहर से हरदत्त
की आवाज़ आती है ।]

हरदत्त : (बाहर से) प्रतिभा !

प्रतिभा : (चोंगा रख देती है) आइए !

हरदत्त : ओ अभी अभी खतम हुआ । मैंने कहा जाते जाते
नीहार को बधाई देता चलूँ । पार्टी क्या हो
चुकी ?

प्रतिभा : खाना आदि तो हो चुका । अब गाना हो रहा
है । पार्टी में तो आप गये नहीं.....

हरदत्त : फ़िल्म शुरू हो जाता ।

प्रतिभा : कौन सा फ़िल्म था ?

(आकर कौच पर बैठ जाती है ।)

हरदत्त : मुहब्बत ।

(उसी कौच पर, किन्तु तनिक सट कर बैठता है ।)

प्रतिभा : तो शायद यह उसी फ़िल्म का गाना है—मुहब्बत
हमको तुमसे रफ़ता-रफ़ता होती जाती है ।

हरदत्त : क्यों ?

प्रतिभा : वही घाटिया और भावुक गाना । आप को तो :
पसन्द आया होगा ।

हरदत्त : हाँ, मुझे तो पसन्द आया । मैं कहता हूँ तीभा,
तुम इस साधारणता से नफ़रत क्यों करती

हो ? इन सीधे-साधे सामान्य भावों से दूर क्यों भागती हो ? यह जीवन और इस जीवन का सारा कोलाहल इसी साधारणता पर टिका है। तुम इससे सदा दूर भागती हो, लेकिन जीवन की गति तो इसी के दम से है। मुझे यह साधारणता पसन्द है। रोमान-पसन्द की तरह, मैं पास की चीजों से दूर नहीं भागता (हँसता है) रोमान-पसन्द हमेशा अपनी बीबी को छोड़ कर दूसरे की बीबी से मुहब्बत करेगा, वर्तमान पत्नी के बदले पहली पत्नी के गुणों का रोना रोयेगा। वह हमेशा उस चीज के पीछे भागेगा, जो उसे हासिल नहीं।

प्रतिभा : हूँ !

हरदत्त : और न ही संदेहशील बुद्धिवादी की तरह मैं हर चीज से बेज़ार हूँ (हँसता है) बुद्धिवादी हर चीज से बेज़ार रहता है, हर चीज में दोष निकालता है। रोमान-पसन्द को तो शान्ति मिल भी सकती है, बुद्धिवादी के भाग्य में शान्ति नहीं।

प्रतिभा : (मुस्करा कर) जनाब अपनी गिनती किन में करते हैं ?

हरदत्त : मैं साधारण, नार्मल आम आदमी हूँ। मैं न रोमान पसन्द हूँ, न बुद्धिवादी ! मैं तो यथार्थ-वादी हूँ।

प्रतिभा : (व्यंग से) यथार्थवादी !

आदि मार्ग

(जोर से हँस देती है ।)

हरदत्त : (कुछ उत्साह से) लेकिन तुम रोमान-पसन्द भी हो और बुद्धिवादी भी । रोमान-पसन्दों की तरह तुम जीवन से, जीवन की दैनिकता से डरती भी हो और उस बेजारी और असंतोष को भी प्रकट करती हो जो बुद्धिवादियों का खास गुण है । देखो तीभा, नन्हीं-नन्हीं खुशियों से दूर न भागो । इन्हीं में ज़िन्दगी को ढूँढो । इन्हीं में तुम्हें शान्ति मिलेगी ।

प्रतिभा : शान्ति, इस घटिया वातावरण में शान्ति ?

हरदत्त : तुम्हें किसी के प्रेम की ज़रूरत है ।

प्रतिभा : (तिक्त-मुस्कान के साथ) प्रेम की !

हरदत्त : (जग आगे बढ़ता हुआ) तुम्हें किसी के मज़बूत हाथों की ज़रूरत है जो तुम्हें, तुम्हारी सपनों की रगीन पर बेजान दुनिया से, इस बेरंग साधारण पर जीती-जागती और धड़कती दुनिया में खींच लाय । मैं अभी जो फ़िल्म देख कर आया हूँ, उस में भी तुम्हारे ही जैसी एक हाराइन का कैरेक्टर पेंट किया गया है ।

[आगे बढ़ता है । प्रतिभा तनिक पीछे खिसक जाती है ।]

प्रतिभा : मेरे ही जैसी ?

हरदत्त : बिलकुल तुम्हारे जैसी नहीं, लेकिन एक गुण तुम दोनों में समान है । वह भी तुम्हारी तरह प्रेम को नफरत की नज़र से देखती है । हालाँकि

असल बात यह है कि वह प्रेम को प्रकट करने से झिझकती है।

प्रतिभा : मैं प्रेम को प्रकट करने से झिझकती नहीं, मुझे प्रेम हो भी किसी से।

हरदत्त : कभी तुम नीलाभ को चाहती थीं।

प्रतिभा : नीलाभ को.....कभी ! (हँसती है, फिर दीर्घ-निश्वास छोड़ती है।) पर न जाने कब से दिल का बाग़ एक विशाल रेगिस्तान बन गया है। सूना और वीरान ! कहीं अगर घास के तिनके थे, तो वे भी कब के मुरझा गये हैं।

हरदत्त : (तनिक और आगे बढ़ते हुए) यह भी एक भ्रम है तुम्हारा। तुम अब भी चाहती हो कि तुम से प्रेम किया जाय। बल्कि अब तुम और भी चाहती हो कि तुम से प्रेम किया जाय। बिल्कुल उस फ़िल्म की हीरोइन की तरह ! तुम्हें भी किसी ऐसे आदमी की ज़रूरत है जो तुम्हारी इस झिझक को दूर कर दे। बरबस तुम्हें अपनी बाहों में बाँध ले।

[सहसा प्रतिभा को अपनी बाहों में भींच लेता है।]

प्रतिभा : (उस के बाहु-पाश से अपने को मुक्त करने की चेष्टा करते हुए) हरदत्त साहब !

हरदत्त : (उसे आलिंगन में भींचते हुए) मैं तुम से प्रेम करता हूँ तीभा ! मैंने कई बार अपने आप को समझाने की कोशिश की है कि मैं तुम्हें सिर्फ़

आदि मार्ग

पसन्द करता हूँ, तुम से मुहब्बत नहीं करता, लेकिन यह सोचना अपने आपको धोखा देना है। मुझे तुम से मुहब्बत है तोभी, तुम से बेहद मुहब्बत है। तुम मेरी चेतना पर, मेरे होश-हवास पर, मेरे सारे अस्तित्व पर छाया जाती हो।

प्रतिभा : (उसके बाहु-पाश से स्वतन्त्र होकर हाँपती हुई उठ खड़ी होती है ।) हरदत्त साहब !

हरदत्त : (बाहें फैलाये उस की ओर जाते हुए) मैं जानता हूँ, तुम कहोगी—ये सस्ते, भावुक, घटिया फिल्मी-वाक्य हैं, लेकिन प्रतिभा, ये अनादि हैं—चाँद-तारों की तरह अनादि—साधारण, पर सनातन ! तुम इन से भागती क्यों हो ?

प्रतिभा : (पूर्ववत् काँपते हुए) हरदत्त साहब, वहीं रहिए ! आप पागल हो रहे हैं। मेरा खयाल था आप समझदार हैं, जीवन की कठुनाओं ने आप को गम्भीर बना दिया होगा, लेकिन आप तो अभी तक बच्चे हैं।

हरदत्त : (बड़ी हुई बाहें गिर जाती हैं) हरेक आदमी अपने खोल के अन्दर महज एक बच्चा है। प्रतिभा, तुम समझती हो.....

प्रतिभा : (क्रोध के कारण रुँधे हुए गले से) चले जाइए आप यहाँ से ! चले जाइए !! आप के रहते मेरा दम घुट रहा है, मेरा सिर चकरा रहा है। चले जाइए ! आप चले जाइए !!

हरदत्त : तीभा !

भँवर

[कुछ पग बढ़ता है, लेकिन प्रतिभा के आग्नेय-नेत्र देख कर रुक जाता है ।]

प्रतिभा : (चीख कर) जाइए !

हरदत्त : मैं जाता हूँ, पर शान्त-मन से मेरी बातों पर...

प्रतिभा : (चीख कर) जाइए !

हरदत्त : तुम्हारी मर्जी लेकिन.....

(कंधे झटकता हुआ चला जाता है ।)

प्रतिभा : (थकी हुई सो कौच पर गिर जाती है ।) उफ ! कितना बचपन है इस आदमी में (दीर्घ-निश्वास लेती है ।) इतने दिन से यह आता है और मैं इसे जान तक न सकी (कुछ क्षण मौन रहती है, फिर धीरे-धीरे अपने आप बढ़बढ़ाती है)—हरक आदमी अपने खोल के अन्दर महज एक बच्चा है ! क्या अपने खोल के भीतर मैं भी सिर्फ एक बच्ची हूँ—बच्ची—जो चाँद को चाहती है और खिलौनों से जिसे संतोष नहीं मिलता ! (फिर दीर्घ-निश्वास लेती है ।) लेकिन चाँद बहुत ऊँचा है—बहुत दूर है—नीलाभ—नीलाभ—उरु !

[मुख को दोनों बाहों से छिपा कर सिसकने लगती है ।]

(पर्दा गिरता है ।)

छठा बेटा

पात्र

पंडित बसन्तलाल—रेलवे के रिटायर्ड पदाधिकारी

डाक्टर हंसराज

हरिनाथ (हरेन्द्र)

देवनारायण

कैलाशपति

गुरु नारायण

दयालचन्द

पंडित बसन्तलाल के छे लड़के

माँ

कमला

पंडित बसन्तलाल की पत्नी

पंडित जी की बहू, डाक्टर हंसराज की पत्नी

दीनदयाल

चाननराम

पंडित जी का मित्र

दूर के रिश्ते में पंडित जी का भाई

हरचरण }
मुँडू }

नौकर

स्थान

विभाजन के पहले का लाहौर—लेकिन लाहौर तो इसलिए है कि नाटक पहले वहीं लिखा गया था । कोई भी बड़ा शहर इस नाटक का स्थान हो सकता है । बल्कि यदि खेलने वाले अपने ही शहर का नाम रखें और उसके अनुसार एक दो परिवर्तन कर लें तो अच्छा होगा । नाटक के आधारभूत विचार में उससे कोई अन्तर न आयेगा ।

[डा० हंसराज का मकान (जो वास्तव में डा० हंसराज का किराये का मकान है) कुछ इतना बड़ा नहीं । पूरा मकान भी यह नहीं । एक बड़ी इमारत का केवल एक भाग है—तीन कमरे हैं (यद्यपि शब्द 'कमरे' उन १२ × ११ फुट की दो, तथा १० × ८ फुट की एक कोठरी के लिए अधिक आदरसूचक प्रतीत होता है ।) एक स्नानगृह है (जो सीढ़ियों के नीचे बच जाने वाली छोटी-सी जगह में, तख़्ता रूपी किवाड़ लगा कर बना दिया गया है और जहाँ नहाने में दृष्ट होने के लिए कुछ दिन अभ्यास करना ज़रूरी ।) इसी स्नान-गृह के साथ छोटा-सा रसोई-घर है—बस यही सादे तीन

आदि मार्ग

अथवा पीने चार कमरे डा० हंसराज के इस मकान में हैं ।

ऐसे ही चार भाग इस इमारत में और हैं । पूँजीवादी मनोवृत्ति से गरीब किसानों को बचाने के लिए, जब पंजाब सरकार ने साहूकारा बिल की कैची का आविष्कार किया और चाहे अस्थाई रूप ही से हो, किसानों के फंदे काट दिये, तो उस मनोवृत्ति ने नये फंदे ढूँढ निकाले । यद्यपि उन फंदों के शिकार अब किसान न होकर निम्न-मध्य-वर्ग के नागरिक थे । इन्हीं फंदों को मध्यवर्गीय शिक्षित समुदाय की भाषा में पोर्शन्ज़ (Portions) अर्थात् बड़ी इमारतों के किराय पर चढ़ाये जाने वाले भाग कहा जाता था । और पंजाब की राजधानी में ऐसी इमारतों की कमी न थी, जिन में ऐसे दस-दस फंदे निर्मित थे ।

पदा डा० हंसराज के मकान, अर्थात् पोर्शन के बरामदे में खुलता है । बरामदा भी इस पोर्शन के अनुरूप ही है । रसोई-घर तथा स्नान-गृह इसके दायीं ओर को हैं, सामने 12×11 फुट के दो कमरे हैं, जिन का एक-एक दरवाज़ा बरामदे में खुलता है । इन दोनों सामने के कमरों में से दायें हाथ के कमरे और स्नान-गृह के मध्य एक रास्ता है, जो इमारत के दूसरे पोर्शनों के पास से होता हुआ इमारत के बड़े दरवाज़े को जाता है । 10×2 फुट का कमरा

छठा बेटा

बरामदे के बायीं ओर को है, और आज कल वह डा० साहब के सब से छोटे भाई गुरु की अध्ययनशाला का काम दे रहा है। रसोई-घर का और इस का दरवाजा आमने सामने है।

यह बरामदा घर में एक महत्व का स्थान रखता है और प्रायः इससे खाने, बैठने और सोने के कमरों का काम लिया जाता है। बरामदा डाइनिंग रूम है—इस का प्रमाण रसोई-घर से तनिक हट कर बिछी हुई दो चटाइयाँ देती हैं, जिन पर घर के सब लोग बैठ कर अपनी बारी से खाना खाते हैं, किन्तु जिस पर इस समय (मैदान खाली देख कर) गणेशवाहन श्री मूपक जी महाराज मटरों अथवा टमाटरों पर दाँत तेज कर रहे हैं। डाइंग रूम अर्थात् बैठने के कमरे के नाते एक बेत का हल्का सा मेज और बेत ही की दो कुर्सियाँ बरामदे के मध्य पड़ी हैं। मेज पर एक कलम-दवात भी रखा है। स्लीपिंग रूम—सोने के कमरे—के नाम पर तनिक बायीं ओर को हट कर, गुरु के कमरे के समीप, एक चारपाई बिछी हुई है।

समय क्या है, इस का अनुमान ही लगाया जा सकता है। बात यह है कि अपने सारे महत्व के बावजूद इस बरामदे को अभी तक एक क्लाक भी नसीब नहीं हुआ और जो छोटा टाइमपीस

आदि मार्ग

गुरु की अध्ययनशाला में मेज़ पर टिक-टिक किया करता है, उसकी आवाज़ यहाँ सुनायी नहीं देती। इसलिए समय का पता रसोई-घर से आने वाली सुगंधि, अथवा मेज़-कुर्सियों से लेकर चारपाई तक एक बड़ी सी तिकोन बनाने वाली धूप ही से लगाया जा सकता है।

लेकिन फ़रवरी का आरम्भ है, इसलिए धूप पर विश्वास नहीं किया जा सकता। दिन बड़े हो रहे हैं, जहाँ धूप आने पर पहले दस बजते थे, अब वहाँ आठ बजे ही धूप आ जाती है, इसलिए इस ओर से निराश होकर हमें रसोई-घर की ओर नाक तनिक फुला कर सूँघने का प्रयास करना होगा। धूप की पार्श्वभूमि में पकती हुई सड़ियों की सुगंधि बता रही है कि अभी नौ, पौने नौ से अधिक समय नहीं हुआ।

बरामदे में इस समय निस्तब्धता छायी हुई है। असल में गुरु की पहली दो घंटियाँ आज खाली हैं और वह अपने कमरे में अध्ययन कर रहा है, नहीं तो इस समय तक वह आकाश-पाताल एक कर दिया करता है और बेचारे बरामदे के फ़र्श को, जो अहिंसा के मामले में सोलहों आने महात्मा गांधी का अनुयायी है, कई बार उसके पद-प्रहार, अथवा यों कहिए कि बट-प्रहार को सहन करना पड़ता है। डाक्टर साहब भी जो इस समय तक—“में

छटा बेटा

कहता हूँ, मैंने एक पेशेंट को समय दे रखा है”, या “कभी समय पर मुझे खाना मिलेगा कि नहीं” अथवा “जल्दी करो नहीं तो मैं बिना खाये-पिये चला जाऊँगा” आदि वाक्यों के गोले रसोई-घर पर बरसाते हुए बरामदे में घूमा करते हैं, इस समय इमारत के बाहर चाचा चाननराम के साथ घूम रहे हैं। चाचा डाक्टर साहब के सगे चचा तो नहीं, शरीकें में से हैं, लेकिन अपना कोई चचा न होने से डाक्टर साहब और उनके सब भाई उन्हें चचा ही-सा मानते हैं। इसीलिए उन पर अपना कुछ अधिकार समझते हुए, एक विशेष-मिशन को लेकर वे उनके पास आये हैं और उन्हीं की खातिर डाक्टर साहब ने नौकर को दुकान पर भेज दिया है कि यदि कोई रोगी आ जाय तो उन्हें तत्काल सूचित किया जाय।

बरामदे में निस्तब्धता ऐसी है कि चटाई पर ‘किट किट’ करते हुए चूहे की आवाज़ साफ़ सुनायी देती है। इस निस्तब्धता को हम उत्सुकता भरी निस्तब्धता कह सकते हैं। ऐसा मालूम होता है कि बरामदे के स्तम्भ, मेज़ कुर्मियाँ, चारपाई, यहाँ तक कि धूप भी कुछ सुनने के लिए उत्सुक है, दर्शकों की उत्सुकता भी, लगता है, क्रोध की सीमा को पहुँचा चाहती है, इसीलिए शायद डाक्टर हंसराज

आदि मार्ग

चाचा चाननराम के साथ इस निस्तब्धता और उत्सुकता को मिटाते हुए, स्नान-गृह के पास वाले दरवाजे से बातें करते दाखिल होते हैं ।

डा० हंसराज : ये कसमें (व्यंग्य से हँसते हैं ।) भूले से कही गयी बात का इनसे अधिक मोल होता है ।

चाननराम : मुझे उन्होंने वचन दिया था ।

डा० हंसराज : (व्यंग्य से) कसम भी खायी होगी ।

चाननराम : (चुप !)

(चारपाई पर जाकर बैठ जाते हैं ।)

डा० हंसराज : (दोनों हाथ कमर पर रख कर शब्दों पर ज़ोर देते हुए) यही तो मैं कहता हूँ । जब पहले के वचन और कसमें अभी तक पालन की बाट देख रही हैं तो ये कब पूरी होंगी ।

[हँसते हैं और जैसे उन्होंने इस बात से चाचा को निरुत्तर कर दिया हो, आराम से कुर्सी पर बैठ जाते हैं और टाँगें मेज़ पर रख लेते हैं ।]

चाननराम : (जो चाचा हैं, आग्निर यों हारने वाले नहीं) पर भाई, समय भी तो अब बदल गया है ।

डा० हंसराज : (बेपरवाही से सिर हिला कर, जैसे इस बात का उत्तर तो गढ़ा गढ़ाया है) लेकिन आदतें तो समय के साथ नहीं बदलती ।

[जिनकी प्रतिज्ञाओं, सौगंधों और आदतों का जिक्र हो रहा है, वे डा० हंसराज के पिता लाला बसन्तलाल के अतिरिक्त कोई

छठा बेटा

दूसरे नहीं। अभी हाल ही में वे रिटायर हुए हैं और पाँच छै सहस्र का ऋण चुका कर प्रावीडेंट-फ्रंड से जो रुपया बच गया था, वह दो-चार सप्ताह ही में उन्होंने सट्टे, जुए और शराब की भेंट कर दिया है और गुरदासपुर छोड़ कर यहाँ अपने बड़े लड़के के पास आ गये हैं। जीवन में दूरदर्शिता किस चीज़ का नाम है, यह उन्होंने कभी नहीं जाना। छै जिसके लड़के हों, उसे भविष्य की चिन्ता हो, इससे ज़्यादा अजीब बात उन्हें दूसरी नहीं लगी। बड़े गर्व-स्फीत स्वर में सीना फुला कर, वे मित्रों के सामने हमेशा कहते आये हैं कि यदि हरेक लड़का दिन भर टोकरी ढो कर भी एक रुपया सांभू को कमा लायगा तो छै रुपये हो जायँगे, फिर मैं क्यों चिन्ता करूँ? लड़कों के टोकरी ढोने की नौबत नहीं आयी, क्योंकि किसी न किसी तरह, अपने पिता की मध्यपता के चलते भी उन्होंने शिक्षा प्राप्त कर ली है। डा० हंसराज सब से बड़े हैं और डाक्टर हैं। दूसरे सुपुत्र लेखक हैं—एक छोटा-सा प्रेस तथा मासिक-पत्र चला रहे हैं; नाम हरिनाथ है, लेकिन हरेन्द्र कहाना अधिक पसन्द करते हैं। तीसरे देव नारायण, छावनी के डाकखाने में काम करते हैं। चौथे अबोहर में टिकट कलेक्टर लगे हुए हैं। नाम कैलाश-

आदि मार्ग

पति है। कैलाश के पति और इनमें इतना ही अन्तर है कि ये तीसरी आँख से नहीं देखते। पाँचवाँ गुरु है, बी० ए० में पढ़ता है, परिश्रमी है और उसके बड़ा आदमी बनने के स्वप्न सब लिया करते हैं। डा० हंसराज किसी आगामी सहायता के विचार से नहीं तो इसी ख्याल से कि वे अपने रोगियों के सामने इस बात का उल्लेख बड़े गर्व-स्फीत स्वर में कर सकेंगे कि वह जो सब-जज या मैजिस्ट्रेट या डिप्टी है, मेरा ही भाई है, मैंने ही उसे पढ़ाया है, अपने इस पोर्शन का १० × ८ फुट का वह कमरा उसे दिये हुए हैं और उसके खाने का खर्च भी सहन किये जा रहे हैं। छठा और सब से छोटा लड़का पिता के व्यवहार से तंग आकर जो भागा तो उसने चार वर्ष से काँई खोज-खबर नहीं दी। दो चार गालियों के साथ—‘वह साला मेरा लड़का ही नहीं’—इतना कह देने के सिवा, पिता ने उसका कभी जिक्र नहीं किया। भाई भी लगभग उसे भूल चुके हैं इस लिए कि यदि वह होता तो उसकी पढ़ाई आदि की व्यवस्था भी उन्हें ही करनी होती (और यदि अब वह कहीं आ जाय तो डा० साहब तो इतने प्रसन्न हों कि एक दिन उनके घर खाना न पके) हाँ, माँ कभी-कभी रो लिया

छठा बेटा

करती है। नाम भी भला-सा था—दयाल-चन्द या कृपालचन्द, लेकिन इन पाँच वर्षों में घर वालों को वह भी भूल-सा गया मालूम होता है।—इसलिए दयालचन्द को (क्योंकि उसका कुछ पता नहीं) छोड़ कर शेष सब टोकरी नहीं ढो रहे, लेकिन उनके पिता को चिन्ता अवश्य करनी पड़ रही है और चचा चाननराम उनकी ही सिफारिश करने आये हैं—रिटायर हो गये हैं, पास पैसा नहीं रहा। अब कहाँ रहें, यह समस्या है। चचा चाननराम का विचार है कि डाक्टर साहब के पास ही उनका रहना श्रेयस्कर है, क्योंकि गुरदासपुर में रहेंगे तो उनके मित्रादि आ मिलेंगे, यहाँ रहेंगे तो कुछ सुधरे रहेंगे, लेकिन डाक्टर साहब ने टाँगें हिलाते-हिलाते फ़ैसला कर लिया है और अपना वह निर्णय चचा चाननराम को सुनाने के लिए वे टाँगें नीचे करके, उठ कर बैठ गये हैं ।]

डा० हंसराज : देखिए चाचा जी, मैं डाक्टर हूँ ! मेरी पोज़ीशन है ! मेरे यहाँ बड़े-बड़े अफ़सर आते हैं। पिता जी की गुज़र यहाँ न होगी। तीन चार दिन इन्हें यहाँ आये हुए हो गये हैं और इस बीच में मेरी रात की नींद और दिन का चैन हराम हो गया है और मैं सोचने लगा हूँ कि अगर

आदि मार्ग

कुछ देर और वे मेरे पास रहें, तो मेरी सब प्रेक्टिस चौपट हो जायगी। किस्मत से आज आप आ गये हैं। देव और गुरु भी यही हैं, हरेन्द्र को मैंने बुलवा भेजा है। कैलाश किसी समय भी पहुँच सकता है। कल उसका पत्र आया था कि वह कल मुबह की गाड़ी से आयगा (कलाई पर घड़ी देखते हुए) गाड़ी कब की स्टेशन पर पहुँच चुकी होगी और.....।

चाननराम : लेकिन.....

डा० हंसराज : लेकिन नहीं चाचा जी। इस बात का फैसला आज हो ही जाना चाहिए। मैं अपनी जिम्मेदारी से कभी न काटूँगा, लेकिन मेरे यहाँ हमेशा के लिए उनका रहना नहीं हो सकता।

चाननराम : आखिर.....

डा० हंसराज : (जैसे वे डा० बिधान चन्द्र राय से क्या कुछ कम हैं) मैं डाक्टर हूँ। मेरी पोलीशन है। मेरे यहाँ बड़े-बड़े अफसर आते हैं। मैं वेटिंग रूम में तिनका तक तो रहने नहीं देता (खड़े हो जाते हैं)। और यह कीचड़ भरे जूते लिये आ जाते हैं।

[कुर्सी से चटाई तक और चटाई से कुर्सी तक दोनों हाथ पतलून की जेबों में डाले एक चक्कर लगाते हैं—फिर रुक कर :]

— : मैं नौकर तक को मैले कपड़े पहन कर दुकान में आने की आज्ञा नहीं देता और वे टखनों तक ऊँची धोती—वह भी आधी—मैली-सी खुले

छठा बेटा

गले की क़मीज़ पहने, नंगे सिर चले आते हैं और वैसे ही कौच में आकर धँस जाते हैं ।

[फिर कुर्सी से चटाई तक और चटाई से कुर्सी तक चक्कर लगाने लगते हैं ।

गुरु अपने कमरे से एक खुली पुस्तक लिये तेज़ तेज़ दाखिल होता है । दोनों टकराते टकराते बचते हैं । दोनों एक दूसरे को थामते हैं और डाक्टर साहब कुर्सी तक अपना चक्कर पूरा करने और गुरु रसोई-घर को छूने चल देता है]

गुरु : (रसोई-घर के दरवाज़े को छूकर) भाभी.....
(दरवाज़े को खोल कर सिर अन्दर करते हुए) मैं कहता हूँ, मेरे जाने में सिर्फ़ एक घंटा रह गया है ।

[कुछ क्षण उसी तरह खड़ा रहता है, फिर सिर बाहर निकाल कर और मुड़ कर—जब कि डाक्टर उसी तरह सिर नीचा किये, पतलून में हाथ डाले कुर्सी से चटाई की ओर जा रहे हैं—]

— : लीजिए पिता जी आटे की बोरी लेने गये हैं, तो आ चुका आटा ।

(बेज़ारी से सिर हिलाता है ।)

[गुरु पतला दुबला, पाँच फुट साढ़े पाँच इंच का युवक है—रंग गोहूँआ, बाल लम्बे और चमकीले, लेकिन माथा बिल्कुल छोटा—

आदि मार्ग

रूढ़े कालरों वाली कमोज़ और पतलून के बावजूद, शक्ल-सूरत से ज़रा भी मालूम नहीं होता कि डिप्टी कमिशनर, मैजिस्ट्रेट, सब-जज छोड़ मुह्तार भी बन सकेगा। लेकिन भाग्य अपनी विभूतियाँ देते समय शक्ल-सूरत कम ही देखता है। बहुत से सुन्दर मातहत इस बात को अच्छी तरह समझते हैं। और इस समय तो डाक्टर साहब भी भूल गये हैं कि उनका यह भाई कभी डिप्टी होने जा रहा है, क्योंकि वे उसकी बात का उत्तर दिये बिना कुर्सी की ओर चल देते हैं, जहाँ कि चचा ने इस बीच में उनकी आपत्ति का उत्तर सोच लिया है :]

चाननराम : कपड़ों का तो हो सकता है। उन्हें तुम लांग नये कपड़े.....

डा० हंसराज : हरगिज़ नहीं हो सकता। सफ़ाई की आदत भी दूसरी आदतों की तरह एक वक़्त चाहती है, बनते बनते बनती है। उनमें और हममें आधी सदी का अन्तर है।

गुरु : (भावी आई० सी० एस०) वे मूँछें रखते हैं, जिन पर नीम्बू टिक सके और हमारे ऐसा भी मालूम नहीं होता कि दैव ने उन्हें कभी पैदा भी किया था। वे सिर घुटा कर रखते हैं—चटियल मैदान की तरह, और हम दो-दो महीने इस मामले में नाई को कष्ट नहीं देते, वे क़मीज़ और तहमद पहने अनारकली में घूम सकते हैं

छठा बेटा

और हम सोते में सूट उतारने से हिच-किचाते हैं।

[चाननराम 'तुम अभी बच्चे हो, तुम्हारी यह चंचलता तम्य है' के से भाव में हँसते हैं।]

डा० हंसराज : (छोटे भाई की सहायता को आते हुए) हँसी की बात नहीं चाचा जी ! बचपन की आदतें एक दिन में नहीं बदल सकतीं। एक ही दिन में वे अपने पुराने संस्कारों को छोड़ कर सभ्य-समाज के तौर-तरीके नहीं सोख सकते। वे पिताओं और पतियों के डिवाइन् राइट्स याने.....मतलब यह.....कि ईश्वरीय अधिकारों में विश्वास रखते हैं। उनके ख्याल में बेटा डाक्टर छोड़ गवर्नर भी क्यों न हो जाय, पिता से मिलने पर उसे तत्काल उनके चरणों में झुक जाना चाहिए, फिर चाहे वे बाज़ार में हों या स्टेशन के प्लेट फार्म पर और चाहे बेटे के साथ मित्र हों, मेहमान या अपरिचित !

गुरु : और पिता की गाली सुनकर उसे चुप खड़े रहना चाहिए अथवा ऐसे मुस्कराना चाहिए जैसे उस पर फूल बरस रहे हों।

चाननराम : माता-पिता की गालियाँ तो घो-शम्कर सो मीठी होती हैं। जिसे ये नहीं मिलीं, वह ज़िन्दगी में एक महान विभूति से वंचित रह गया है।

(दोनों भाई जोर से ठहाका मारते हैं।)

आदि मार्ग

चाननराम : (अप्रकृतिस्थ हुए बिना) रही चरणों पर झुकने की बात तो भाई माता-पिता के चरणों में झुकना संतान की अपनी प्रतिष्ठा है। मुझे उन मित्रों की बुद्धि पर तरस आता है जो इस पर नाक-भौं चढ़ाते हैं।

गुरु : चाहे बाज़ार हों या स्टेशन का प्लेटफार्म ?

चाननराम : कहीं भी क्यों न हो, तुम तो भला उनके लड़के हो और उनके चरण ही छूने पर इतनी बातें बना रहे हो, मेरे साथ जानते हो क्या हुआ ? दीनदयाल.....

डा० हंसराज : (जब मैं कंजियों का गुच्छा निकालकर उसे अंगुलियों पर घुमाते हुए) दीनदयाल.....!

चाननराम : हाँ वही, एक दिन उसके साथ बाज़ार में पण्डित जी चले जा रहे थे। आते-आते सब्जी-मण्डी के ठेकेदार की जेबें गर्म करते आये थे। मैंने दोनों को हाथ जोड़कर 'नमस्ते' की। कहने लगे—'नहीं, झुककर प्रणाम करो !' मेरे साथ मेरे मित्र भी थे, लेकिन मैं चुपचाप उनके चरणों पर झुक गया।

गुरु : छिः।

चाननराम : फिर कहने लगे, दीनदयाल के भी पाँव छुआ !

डा० हंसराज : (गर्जकर, जैसे उनसे ही कहा गया हो) दीनदयाल के ?

चाननराम : लेकिन मैं झुक गया और वे इतने ही मैं प्रसन्न हो गये।

डा० हंसराज : (क्रोध से दाँत पीसते हुए) उस जेबकूटे के पैरों पर, जिसे अगर मेरा बस चले तो.....

[तिपाई को ठोकर मारते हैं, जैसे वही दीनदयाल है, सियाही की दवात फर्श पर गिर पड़ती है। नौकर को आवाज़ देते हैं।]

— : हरचरण ! हरचरण !

[एक छोटा-सा नौकर रसोई से प्याज छीलता-छीलता निकलता है।]

नौकर : जी, उसे ताँ आप ने दुकान पर भेजा था।

डा० हंसराज : (चपत लगा कर) तुझ से किसने कहा इस तिपाई पर दवात रखा कर ? उठा, सब फर्श खराब हो गया है।

(नौकर दवात उठाने लगता है।)

चाननराम : दवात रहने दे बेटा. पहले कपड़ा लेकर फर्श साफ़ कर डाल !

[नौकर भाग जाता है और फिर गीला कपड़ा लाकर फर्श साफ़ करता है।]

गुरु : (रसोई-घर की ओर देखकर) माँ, अभी मुझे कितनी देर और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ?

[माँ रसोई-घर से हाथ पोंछती हुई आती है—दुर्बल और कृशकाय, चेहरे पर दुखों ने गहरे चिन्ह छोड़ दिये हैं। पुराने फ़ैशन की कमीज़ और सुथनी पहने है, सिर पर चादर है—बस सब मिला कर वह ऐसी है, जैसी एक मद्यपायी की पत्नी निरन्तर उसके साथ सर्दी-

आदि मार्ग

गर्मी भेलने, उसकी और उसके बच्चों की
सेवा करने से बन जाती है ।]

माँ : हमारी तरफ से तो बेटा कोई देर नहीं।
तरकारी तो बस तैयार है । आटा खतम हो गया
था और बनिये के घर रात को तीन बच्चे एक
साथ पैदा हुए ।

गुरु : तीन.....एक साथ.....पिता, पुत्र तथा पौत्र,
तीनों के ?

माँ : नहीं, नहीं सिर्फ पिता के—दो लड़कियाँ और
एक लड़का ।

डा० हंसराज : उस काँटे से आदमी के यहाँ ? और पत्नी भी
तो उसकी तिनका सी है !

माँ : इसलिए उसकी तो दुकान बन्द थी, तब उनको
भेजा कि सब्जी-मंडी के चौक से जाकर आटा
ले आयें ।

गुरु : सब्जी-मंडी के चौक से ! तब तो मैं शौक से
होटल में खाना खा सकता हूँ ।

डा० हंसराज : मुझे डर है कि कहीं सभी को आज होटल में न
खाना पड़े । और कोई नहीं था आटा लाने
के लिए ?

माँ : मैंने तो बहुतेरा कहा कि गुरु या देव ले आयगा ।
कहने लगे—मैं यहाँ बैठा-बैठा क्या कर रहा
हूँ और कमला ने नोट उनके हाथ में दे दिया ।

डा० हंसराज : नोट ! कितने का ?

माँ : दस का !

छठा बेटा

(डाक्टर साहब कुर्सी में धँस जाते हैं ।)

६० हंसराज : (निराश-भाव से) इस कमला को तो कभी समझ न आयगी ।

कमला : (सामने के कमरे . निकलती है ।) मैंने कहाँ दिये । उन्होंने तीन बार कहा—लाओ बहू रुपये दो, लाओ बहू रुपये दो, लाओ बहू रुपये दो. गुरु को पढ़ने दो; उसकी परीक्षा निकट है: मैं बस अभी ले आऊँगा ।

(बड़े रौब से मटकती हुई चली जाती है ।)

६१ हंसराज : (अचानक उठ कर और दोनों मुद्रियाँ इकट्ठा भींच कर, महान चिटप की भाँति झूलते हुए, शब्दों पर जोर देकर) यह नहीं होगा, यह नहीं होगा । देखिए चाचा जी, कुछ रुपये महीना मैं दे सकूँगा—जो भी आप मेरे ज़िम्मे लगा दें, लेकिन रहना उनका यहाँ नहीं हो सकता !

चाननराम : लेकिन पिता.....पुत्र.....कर्तव्य.....

६२ हंसराज : (चिटप पर झंझा का दबाव और भी अधिक हो जाता है और वह और भी झूलता है) मैं पुत्र के कर्तव्य को खूब जानता हूँ, लेकिन पिता का कोई कर्तव्य ही नहीं, यह मैं नहीं मानता । सात बरसों की कड़ी मेहनत के बाद मेरी प्रेक्टिस कुछ चलने लगी है, मैं इसे यों बर्बाद नहीं कर सकता । परसों जब वे पिये हुए आये और बाज़ार ही से उन्होंने नशे में थरथराती हुई अपनी कर्कश आवाज़ में पुकारा, “हसू” ! तो मेरा दिल धक-

आदि मार्ग

धक कर उठा। बाहर आकर देखा—बूट के तस्मे खुले हैं, धोती की कोर धरती पर लटक रही है, कमीज का गिरेबान फटा हुआ है और पगड़ी बगल में है (बिठप पर तूफ़ान का जोर कम हो जाता है) किस्मत अच्छी थी कि उस समय दुकान पर कोई पेशेन्ट न था, बड़े धीरज के साथ मैं उन्हें घर ले आया।

[ऐन उस वक्त बाहर से देव आकर चुपचाप दरवाज़े की चौखट से पहलू के बल खड़ा हो जाता है। उमर अट्ठाइस बरस में अधिक नहीं, लेकिन डाकखाने की बैठक ने उसे ब्रचीस, पेंतीस का बना दिया है। चेहरे की दो-चार रेखाएँ 'डिलिवरी', 'बुकिंग', 'सार्टिंग' की विरसता का पता देती हैं, जिन विभागों में कि वह क्रम से अब तक काम करता आया है। दाढ़ी-मूँछें बढ़ी हुई हैं, इस लिए नहीं कि उसे ये पसन्द हैं, बल्कि इसलिए कि उसे हजामत बनाने का समय नहीं मिला। हँसमुख है, लेकिन अब उसकी हँसी ऐसे ही टिठुरी हुई दिखाई देती है, जैसे शिशिर के बादल-भरे आकाश में सूरज की पीली सफ़ेद मुस्कान! किसी को भी उसके आने का पता नहीं चलता, इसलिए डाक्टर साहब अपनी बात जारी रखते हैं]

— : और पुकारने का ढंग तो देखो—न हंसराज,

छटा बेटा

न हंस (नकल उतारते हुए) हंसू (जो विटप था वह पौधा-सा होकर धरती पर लेट जाता है ।)
आर मैं दो बच्चों का बाप हूँ और डाक्टर कहलाता हूँ ।

[व्यंग्यमयी वेदना के भार से हँसते हैं ।
वहीं चोखट के साथ खड़े-खड़े देव के चेहरे
पर वही शरद् का सूरज क्षण भर के लिए
मुस्कराता है ।] ...

चाननराम : (वहीं जमे हुए) माता-पिता बच्चों को उनके
बचपन के प्यारे नामों.....

डा० हंसराज : नहीं चाचा जी, यह मुझ से न होगा, आप देव
से क्यों नहीं कहते ?

[दरवाजे में सूरज का तेज क्षण भर के लिए
प्रखर हो उठता है ।]

देव : जिससे उनकी एक दिन तो दूर, एक पल के
लिए भी नहीं बन सकती ।

[सब चकित-से उसकी ओर देखते
हैं । शरद् का सूरज उनके समीप आ जाता
है ।]

डा० हंसराज : (खिन्न हुए बिना) तुम दिन भर दफ्तर में रहते
हां और दफ्तर भी तुम्हारा निकट नहीं कि
वे पहुँच जायँ, पूरे छै मील है—नहर के
पार.....

देव : लोकन रात को तो मैं घर आता हूँ और रात
ही को आम तौर पर मेरे इन बालों को देख

आदि मार्ग

कर उन्हें गुस्सा आया करता है। जब पिता जी बहराम के स्टेशन पर थे तो मेरा दुर्भाग्य कि मैं एक दिन शाम की ट्रेन से वहाँ चला गया। रेलवे गार्ड के सामने ही उन्होंने मुझे बालों से पकड़ लिया—‘ये हीजड़ों की तरह बाल क्यों बना रखे हैं तुमने.....’ और पुरुषत्व और पंस्त्व पर एक भावण झाड़ते हुए मेरी जो गत बनायो.....

चाननराम : (अपनी धुन के जो पक्के हैं, स्थिर, अचल, जहाँ बैठे हैं, वहाँ से हिले नहीं।) तब तुम बच्च थे, लेकिन.....

देव : लेकिन जिनके लिए डाक्टर साहब अभी तक ‘हंसू’ हैं, उनके लिए बेचारा देव.....

(शरद् का वही स्मृज हँसता है।)

— : और फिर रात ही को उन पर गाने की धुन सवार होती है। एक बार मुझ से कहने लगे—‘तुम गाओ’। अब मैं क्या गाता? मजबूर हो कर चिंघाड़ने लगा। आँखों में मेरी आँसू भर आये। कहने लगे—अच्छा गाते हो, प्रेक्टिस जारी रखो, तुम्हें लखनऊ के म्यूजिक कालेज में दाखिल करा देंगे।

[गुरु ठहाका मारकर हँस पड़ता है।
हंसराज डाक्टरों की तरह हँसते हैं, देव के चेहरे से बादल केवल निमिष भर को हटते हैं, चाचा चाननराम शायद इसलिए नहीं

छठा बेटा

हँसने कि बच्चों का हँसी में क्या शामिल
हों.....

हरचरण एक विस्तर और बैग उठाये
प्रवेश करता है ।]

डा० हंसराज : कैलाश आ गया ?

हरचरण : दुकान पर हैं जी, मैंने कहा—आप ज़रा बैठें
कोई रोगी ही आ जाता है, आप उसे
बैठाइएगा.....

डा० हंसराज : मैं जाता हूँ ।

माँ : (रमोई-घर का दरवाज़ा खोल कर) गुरु ज़रा
साइकिल लेकर जाना ना । वे तो आये नहीं ।
देखो तो कहाँ ठहर गये ? नहीं, जा तू ही वहाँ
से कुछ आटा ले आ, कैलाश भी तो आ गया
है ।

गुरु : हाँगे कहाँ ? सब्ज़ी मंडी में एक ही तो जगह
है उनके जाने की ।

[हरिनाथ (हरेन्द्र) प्रवेश करते हैं—
हाथ में कुछ कागज़ लिये और फर्श पर इधर-
उधर देखते और डूँडते हुए । धोती कुर्ता और
उस पर चादर पहने हैं, बाल तनिक लम्बे हैं
और पाँवों में चप्पल हैं ।]

हरिनाथ : मैं पूछता हूँ, रात को मैं इधर तो नहीं रग
गया ।

(तिपाई के नीचे-ऊपर देखते हैं ।)

चाननराम : क्या ढूँढ रहे हो ? क्या चीज़ गुम हो गयी ?

आदि मार्ग

हरिनाथ : बड़े परिश्रम से लिखी थी ।

(फिर इधर-उधर देखते हैं ।)

देव : क्या था भाई ?

हरिनाथ : एक कविता थी । देर से मैं लिख रहा था, कितनी अच्छी बन रही थी ! मुझे तो याद भी नहीं ।

चाननराम : ज़रा बैठो कविता फिर लिख लेना ।

हरिनाथ : पर मुझे तो वह भेजनी थी । कम्पोज़िटर बेकार बैठे हैं, साइकिल पर भागा आया हूँ ।

चाननराम : मैं साइकिल पर देव को भेज दूँगा । इन पन्द्रह मिनटों में कुछ बिगड़ न जायेगा । मैं तो बुलवाने ही वाला था तुम्हें । अच्छा हुआ कि तुम आ गये ।

हरिनाथ : मैं कहता हूँ, वह गुम कहाँ हो गयी—वह कविता—छे महीने हो गये मुझे उसकी 'थीम'❧ सोचते ।

गुरु : कोई महा काव्य शुरू किया था क्या ?

हरिनाथ : नहीं जी, एक फुलस्केप के दोनों ओर लिखी हुई थी ।

(हताश-सा बरामदे के मध्य खड़ा हो जाता है ।)

देव : यह आपके हाथ में क्या है ?

हरिनाथ : (चौंक कर हाथ का कागज़ देखता है फिर खिसियाने-पन से हँसते हुए) वाह ! अरे मैं इस बीच में इसे बराबर हाथ में लिये फिरा हूँ !

❧ थीम = (Theme) आधार-भूत-विचार !

छठा बेटा

देव : (कविता उसके हाथ से लेकर) आप ज़रा बैठ, चाचाजी को आप से दो बातें करनी हैं । कविता मैं अभी नौकर के हाथ भिजवा दूँगा ।

(चला जाता है, हरिनाथ कुर्सी पर बैठ जाता है ।)

चाननराम : देखो, तुम्हारे पिता अब रिटायर हो गये हैं । मैं नहीं चाहता, वे घर पर रहे । वहाँ उनके पुराने यार-दोस्त हैं, वहाँ वे न सुधरेंगे !

हरिनाथ : वहाँ वे सुधर चुके ! शादीराम, रामरत्न, बनारसी दास, बंसीलाल—सब मतवाले, लेकिन दूसरों के माल पर, हमारे पिता जी अपना घर फूँक कर तमाशा दिखाने वाले !

चाननराम : यही मैं भी कहता हूँ । उन्हें ज़रूरत है अच्छी संगति की और ऐसे व्यक्ति की जो उनकी अच्छी तरह देख-भाल कर सके । गुरु और देव तो बच्चे हैं । हंसराज का मन उनसे न मिलेगा । कैलाश के बारे में मैं कह नहीं सकता । वह अक्खड़ तबीयत का आदमी है । मैं उसे कहूँगा ज़रूर, लेकिन तुम से मुझे बड़ी आशा है । तुम समझदार हो, साहित्यिक हो, आदमी के गुण-दोष समझते हो, तुम्हारे पास.....(हरिनाथ चौंका है ।).....वे कुछ समझ सकते हैं ।

हरिनाथ : (दार्शनिक भाव से तनिक हँस कर) अब वे क्या समझेंगे !

चाननराम : तुम्हारे पास रह कर.....

हरिनाथ : मेरे पास.....लेकिन मैं तो सात्विक आदमी

आदि मार्ग

हूँ। वे ठहरे खाने-पीने वाले, चौथे रोज़ मुर्ग भूनने वाले और फिर शराब (मुँह बनाता है, जैसे नाम ही से उसका चित्त मिचलाने लगा हो) मैं तो पास भी नहीं बैठ सकता, मैं तो उस कमरे में बैठना तक बर्दाश्त नहीं कर सकता !

[जैसे शराब के नाम ही से उसका दम घुटने लगा हो, उठ कर घूमता हुआ, धोती के पल्ले से हवा करने लगता है ।

डा० हंसराज और कैलाश पति जोर जोर से बातें करते दाखिल होते हैं ।]

कैलाश : वखशो बी बिल्ली चूहा लँडूरा ही भला ! मुझसे उनकी एक दिन, एक दिन क्या, एक पल नहीं पट सकती । मैं उनकी एक गाली तक नहीं सुन सकता । गाली तो दूर, एक बार उन्होंने मुझे इडियट कहा था और मैंने तीन दिन खाना न खाया था.....

डा० हंसराज : अरे भई अब पिछली बातों को.....

कैलाश : आप भूल सकते हैं वे सब बातें, मैं नहीं भूल सकता । याद है न आपको, उस दिन उनकी कितनी ज्यादाती थी । घर में खाने को नहीं था और वे बीस रुपये (जो माँ उधार लायी थीं) किसी श्रेष्ठ-आदमी को दे आये थे (तनिक जोश से) उनके लिए हर आदमी श्रेष्ठ है, सिर्फ घर वालों को छोड़ कर । और जब मैंने आपत्ति की

⌘ Idiot = मूर्ख

छठा बेटा

थी तो तलवार लेकर मेरी आँर दौड़े थे।
(नौकर को आवाज़ देता है।) मुँह.....आँ
मुँह.....

(हरचरण रसोई-घर से प्लेट धोता-धोता आता है।)

— : साबुन और तेल बाथ रूम में रख दे। यह
लम्बा सफ़र और सम्मा सट्टा लाइन की यह
धूल ! मैं तो जंगली दिखायी दे रहा हूँगा।

[छै भाइयों में यद्यपि वह चौथा है तो
भी वह अपने उस कवि और उस क्लर्क भाई
से बड़ा लगता है। चौड़े जबड़े, टेढ़े-मेढ़े दाँत
और आँखों में हिंख ज्वाला—बिखरे हुए, धूल-
भरे वालों पर—जिनसे वह सचमुच ही बर्बर
लगता है—हाथ फेरता हुआ वह इधर-उधर
घूमता है।]

चाननराम : (उठकर, उसके पास जाकर, उसके कंधे पर हाथ
रखते हुए) लेकिन कैलाश.....

कैलाश : लेकिन नहीं चाचा जी। मैं कुछ नहीं कर सकता !
मैं पूछता हूँ—उन्होंने हमारा कितना खयाल
रखा है ? बे-बाप के बच्चे हम से अच्छी तरह
पलते होंगे और फिर उनके अत्याचार.....

चाननराम : लेकिन बेटा.....

कैलाश : (घूमते हुए दाँत पीसकर) अब आप चाहे भूल
जायँ, मैं जिन्दगी भर नहीं भूल सकता ! याद
है न आपको ? जब टाइफाइड से मैं मरने-मरने
को हो रहा था और 'मल्लू पोते' से बुआ का

आदि मार्ग

लड़का वैजनाथ आया था तो इन्होंने क्या ऊधम मचाया था ।

चाननराम : पुरानी बातों को.....

कैलाश : लेकिन मेरे लिए तो वे सब नयी हैं । इतनी-सी ही बात थी न कि वैजनाथ ने आते ही पचास रुपये माँ को दिये कि वह उन्हें अपने पास रखे, जाते-जाते वह ले जायगा । दीवाली के दिन थे, पिता जी को न जाने कैसे उनकी गंध मिल गयी । लगे रुपयों के लिए माँ को सताने । उसने कहा कि मेरे पास एक भी रुपया नहीं —आप ही कहिए, वह कैसे दूसरे के रुपये उन्हें दे देती—उठा कर जलती लालटेन इन्होंने उसके दे मारी । मैंने रोका तो तलवार उठा लाये । मेरे सिरहाने लम्बी छुरी वाला हंटर था । भाग्य से बीच-बचाव हो गया, नहीं तो किसी का खून हो जाता ।

चाननराम : (निराश होकर) लेकिन बेटा, अब तो न उनका वह स्वभाव है, न शरीर । दम-खम भी उनमें वह पुराना नहीं । अब ये सब बातें वे कहाँ कर सकते हैं.....!

डा० हंसराज : (हँसकर) पर अकड़ तो वही है ।

गुरु } : [दोनों] आवाज़ की सरुती तो वही है ।
देव } : [एक साथ] शराब से प्यार तो वही है ।

[नशे में चूर पं० वसन्तलाल प्रवेश करते हैं । पाँव लड़खड़ा रहे हैं । सिर नंगा है ।

छठा बेटा

कमीज के बटन खुले हैं। तहमद धरती पर लटक रहा है। एक पाँव से जूता गायब है। हाथ में एक पुर्जा-सा है (जो लाटरी का टिकट है) आवाज़ थरथरा रहा है.....]

वसन्तलाल : ओ हंसू.....

{ डा० हसराम आगे पट्टि से उनकी ओर देखने हैं और आग-भरे स्वर में कहते हैं :—

डा० हसराम : आप तो आटा लेने गये थे ?

वसन्तलाल : साला.....आटा क्या ?.....मैं तीन लाख रुपये का टिकट ले आया हूँ। तुम्हें बिलायत भेज दूँगा।

(कुर्मी पर बैठते-बैठते लुढ़क जाते हैं।)

डा० हसराम : (उठ कर और रसोई-घर की ओर देखते हुए चीख कर) मैं कहता न था। और सब मर गये थे क्या ? ये नौकर किस मजदूरी की दवा होते हैं साले ? भेज दिया इनको चीजें लाने के लिए। अब पड़े भूखों मरो.....

गुरु : (अपने कमरे को भागता हुआ) मेरे तो कालेज का वक्त हो गया है। अब रोटी.....

{ कमरे से गायब हो जाता है। कमला रसोई-घर से मटकती हुई निकलती है। }

कमला : नौकर को और कोई काम नहीं करना होता क्या ? आप इतने लोग क्या करते रहते हैं ? तिनका तक तो कोई तोड़ता नहीं !

आदि मार्ग

(दूसरे कमरे में चली जाती है ।)

देव : मैं भी चलूँ, मुझे कैट पहुँचना है ।

(जिधर से आया था, उधर से चला जाता है ।)

कैलाश : ओ मुंझ, साबुन, तेल रखा है बाथ रूम में या नहीं ?

माँ : (रुँआसी-सी शकल लिये रसोई-घर से झँकती है) इन्हें उठाकर चारपाई पर तो लिटा दो ! धरती पर पड़े हैं ।

बसन्तलाल : (उठने का यत्न करते हुए) कौन साला हमें उठा सकता है.....हम.....खुद उठेंगे.....!

[उठते हैं, लेकिन लड़खड़ा कर गिर पड़ते हैं । चाननराम और डा० हंसराज उन्हें उठा कर बिस्तर पर लिटा देते हैं ।

(पढ़ा गिरता है ।)

(कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है ।)

[बरामदे में निस्तब्धता है । धूप की बड़ी तिकोन अब एक छोटी-सी आयत बन गयी है । रसोई-घर से सुगंधि अभी तक उठ रही है, लेकिन सिर्फ सब्जी-तरकारी से क्योंकि भूख नहीं मिट सकती, इसलिए शायद डाक्टर साहब स्वयं आटा लेने गये हैं । गणेश-वाहन श्रीमूषक जी महाराज फिर कहीं से आ गये हैं और इस प्रकार इधर-उधर विचार रहे हैं, जैसे राजधानी से भागा हुआ अधिपति पुनः अपना राज्य पाने पर ! चटाइयाँ खाली हैं, कुर्सियाँ खाली हैं, केवल

नोट:—रोशनी इस दृश्य में पहले से कद्रे कम होनी चाहिए और वह हर आगामी दृश्य में कम होती जानी चाहिए ।

आदि मार्ग

चारपाई पर पंडित बसन्तलाल पड़े खराटे ले रहे हैं । लाटरी का टिकट उनका धरती पर गिर पड़ा है, किसी ने उसको उठाने का कष्ट नहीं किया और वे सो रहे हैं और उनके खराटे बरामदे की निस्तब्धता को और भी निस्तब्ध बना रहे हैं ।]

(पर्दा फिर गिरता है ।)

(पदा फिर उठता है ।)

[वही बरामदा और वही सामान ।
परिवर्तन केवल इतना हुआ है कि चटाइयों के
स्थान पर चरखा बिछा है, जिस पर माँ उन कात
रही है । (गर्मियों में काती जायगी, तो सर्दियों
में काम आयगी इसीलिए) साथ में एक
दूसरी पीढ़ी है । वह शायद कमला की है,
क्योंकि उस पर एक किरिशिये से बुना जाने
वाला मेज़पोश पड़ा है । चारपाई वैसे ही बिछी
है और उस पर कोई सो भी रहा है । खर्राटों
का स्वर चरखे की ' घूँ-घूँ ' में शायद सुनायी
नहीं देता । सोने वाला शायद पंडित बसन्तलाल
हैं, लेकिन शायद वे नहीं हैं, क्योंकि पदा उठने-

२४६

आदि मार्ग

के पल भर बाद ही वे पूर्ववत्, बगल में पगड़ी दवाये, खुले गले की कमोज़ और क़र्श पर घिसटती हुई आधी धोती की कोर से बेपरवाह, मूँछों पर ताव देते हुए झूमते-झामते प्रवेश करते हैं। उल्लास उनके चेहरे पर फूटा पड़ता है और पाँव उनके खुशी से धरती पर नहीं पड़ते।

आते ही पगड़ी को कुर्सी पर फेंक कर खड़े-खड़े झूमते हैं और नौकर को आवाज़ देते हैं—स्वर उनका थरथरा रहा है, जैसे कि आम तौर पर नशे में थरथराने लगता है।]

बसन्तलाल : मुँह, मुँह !

[हरचरन रसोई-घर से भागा हुआ आता है। हाथ सने हुए हैं। शायद बर्तन मलता हुआ उठकर भाग आया है।]

हरचरण : जी !

बसन्तलाल : (दस रुपये का नोट फेंकते हैं।) जा भाग कर बाज़ार से कैंची की एक डिबिया ले आ।

[नोट देख कर माँ चौंकती है, सूत का तार टूट जाता है, और वह योंही चग़खे की हथ्थी घुमाये जाती है,। नौकर नोट उठा कर जाता है। पंडित बसन्तलाल अपनी पत्नी को सम्बोधित करते हैं—वैसे ही झूमते हुए, हुल्लास के पंखों पर जैसे उड़ते हुए :—]

— : मैं कहता हूँ हंसू की माँ, माँग ला आज जो

छठा बेटा

कुछ मुझ से माँगना चाहती हो ! मैं तुम्हारी हरेक इच्छा आज पूरी कर दूँगा ।

[कुर्सी में धँस जाते हैं । टाँगें तिपाई पर रख लेते हैं—माँ चरखा कातना छोड़ देती है और अविश्वास से हँसती है ।

[पंडित बसन्तलाल टाँगें फिर नीचे करके उसकी ओर मुड़ते हैं—]

— : तुम समझती हो, मैं हँसी करता हूँ । मैं सच कहता हूँ । मुझे तुम शराबी मत समझो । माँगो !

(उठ कर खड़े हो जाते हैं; झूमते और लड़खड़ाते हैं ।)

— : माँगो मैं सब कुछ दूँगा ।

माँ : (विषाद से हँसती है) मैं क्या माँगूंगी ।

(सूत का तार जोड़ने का प्रयास करती है ।)

बसन्तलाल : गहना, कपड़ा, सुख, आराम कुछ भी माँगो, तुमने उमर भर मेरे साथ दुख पाया है, कहो, तुम्हें गहने कपड़ों से लाद दूँ ।

माँ : (स्वर आर्द्र हो जाता है) मैंने बहुतेरे गहने कपड़े पहन लिये (सजल हँसी से) अब तो यही इच्छा है कि आपके चरणों में संसार छोड़ दूँ ।

बसन्तलाल : संसार छोड़ दो.....पगलो ! (हवा को हाथ से चीरते हैं और इस प्रयास में गिरते-गिरते कुर्सी पर धँस जाते हैं ।) दुनिया के सुख आनन्द लेने का अवसर तो अभी आया है । (सहसा आँखें

आदि मार्ग

भरकर) मैंने तुम्हें बड़े दुख दिये—मारा पीटा, गहने कपड़े से तंग रखा (सिसकने लगते हैं) ।
पैसे पैसे को मोहताज रखा, बनवा कर तो क्या देता उल्टा तुम्हारा चीजें तक बेच डालता रहा (सहसा आँखें पोंछ कर जोश से) लेकिन अब मैं सब बातों की कसर निकाल दूँगा । मैं अब तुम्हें इतना सुख दूँगा (और भी जोश से) इतना सुख, कि तुम्हें ज्यादा की इच्छा न रहेंगी । गहने कपड़े, जितने चाहो पहनो ! जिस तीरथ की चाहो यात्रा करो !! और जितने ब्राह्मण ब्राह्मणियों को चाहे खाना खिलाओ !!!—कितनी देर से तुम तीरथ-यात्रा करने को तरस रही हो, देखो कोई तीरथ रह न जाय, फिर न कहना कि अमुक तीरथ को देखने की अभिलाष मन ही मैं रह गयी ।

[माँ निनिमेष लेकिन अविश्वामभरी

दृष्टि से चुपचाप उनकी ओर देखे जाती है ।]

— : हाँ कोई ऐसा तीरथ नहीं, कोई ऐसा स्थान नहीं जो मैं तुम्हें न दिखा दूँ ! तुम्हें दान-पुण्य का जितना शौक है, सब निकाल लो । जितना चाहे दान-पुण्य करो !

(फिर टाँगें तिपाई पर रख लेते हैं ।)

माँ : (अविश्वाम और व्यंग्य से) मैंने बहुतेरा दान-पुण्य कर लिया ।

बसन्तलाल : (नशे में झूमते हुए) मैं कहता हूँ, मैं एक लाख रुपये सिर्फ तुम्हारे नाम लगवाने जा रहा हूँ !

छठा घेरा

माँ : (विमूढ़ा सी) लाख !

वसन्तलाल : (अपनी रौ में) एक लाख रुपया इन साले लड़कों को दे दूँगा ।

माँ : (आँखें खुली रह जाती है) लाख !

वसन्तलाल : (अपनी रा में) और एक लाख मैं से चाननराम, गोविन्द राम, बनारसीदास.....।

माँ : (मुँह भी खुल जाता है) लाख—

[उठ खड़ी होती है । कुछ क्षण उसी तरह आँखें फाड़े मुँह बाये खड़ी रहती है ।
फिर एक पग पंडित जी की ओर उठाती है ।]

— : आप शायद.....

वसन्तलाल : (जोश से उठकर) तुम्हें विश्वास नहीं होता (जेब से तार निकालते हैं ।) तीन लाख की लाटरी मेरे नाम निकली है ।

माँ : (भौंचक्की सी) तीन लाख की !

(एक कदम और बढ़ती है ।)

— : आप शायद अधिक

वसन्तलाल : (कागज़ को उसकी आँखों के आगे फहराते हुए) यह देखा तार । मैंने दीनदयाल से दस हजार रुपया लिया है । जब तक लाटरी का रुपया वसूल नहीं होता, तब तक के लिए । पाँच हजार मैं चाननराम को दे दूँगा, उसकी लड़की का ब्याह है । मैं उसका एहसान नहीं भूल सकता (सहसा आँखें भर कर) इन साले लड़कों ने जब मेरा साथ छोड़ा तब उसने मेरी कितनी

आर्द्र मार्ग

सेवा की (आँखें पोंछ कर) पर पूत कपूत होते हैं, पिता कुपिता नहीं होते, मैं इन सालों के नाम एक लाख लगा दूँगा, लाख तुम ले लो और बाक़ी लाख से मैं जो चाहे करूँ। मैंने तुम्हें कहा था न कि लाटरी इस बार जरूर मेरे नाम आयेगी।

माँ : (मन ही मन से भगवान सत्यनारायण को प्रणाम करके) मैंने भगवान सत्यनारायण की कथा करायी थी।

वसन्तलाल : तुम अब सब नारायणों की कथा कराना।

[चलते हैं, फिर रुक कर पगड़ी उठाते हैं, उसी तरह बग़ल में दे लेते हैं, और मूँछों पर ताव देते हुए दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं।]

माँ : (साथ साथ जाती हुई) किधर चल दिये, कुछ पल तो बैठिए, आप.....

वसन्तलाल : मुझे चाननराम से मिलना है, उसकी लड़की का ब्याह है... ..

माँ : (आर्द्र-कंठ से) दयालचन्द का भी आप को खयाल आया।

वसन्तलाल : दस हजार रुपया उसको ढूँढ़ने पर खर्च कर दूँगा। वह मेरा लड़का साला इन सब से अच्छा था—आज्ञाकारी और होनहार !

माँ : सब उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते थे।

छटा बेटा

बसन्तलाल : वह पाताल में चला जाय तो भी मैं उसे ढूँढ़ लाऊँगा ।

माँ : लेकिन आप हंस को तो आ लेने दें ।

बसन्तलाल : उस साले का मैं माल पर दुकान खुलवा दूँगा ।

माँ : आप की कैंची का डिबिया.....

बसन्तलाल : नौकर को शौक है, उससे कहना पी ले.....

माँ : मुझे कुछ रुपये तो दे जाइए, भगवान को प्रसाद लगाऊँ ।

बसन्तलाल : ये लो सारे भगवानों को प्रसाद लगाओ !

[कुछ नोट जेब से निकाल कर, उसकी ओर फेंकते हुए निकल जाते हैं । माँ नोट लेकर धोती के आँचल में बाँधती है, मुड़ती है; प्रसन्नता से चेहरा दुगना हो गया है । इधर-उधर देखती है कि कहीं भगवान की मूर्ति हो तो सिर झुकाये । पर वह तो बरामदा है, वहाँ भगवान की मूर्ति कहाँ, चित्र भी नहीं । आविर आकाश की ओर देख कर नतमस्तक हो जाती है, भगवान आकाश में जो बसते हैं न, इसीलिए ।]

माँ : भगवान तेरी लीला अपरम्पार है । तूने जिस तरह मेरी सुनी इस तरह सब की सुन । मैं सब से पहले तेरा प्रसाद बाँटूँगी ।

(नौकर कैंची की डिबिया लिये प्रवेश करता है ।)

नौकर : माँ जी कैंची.....

आदि मार्ग

माँ : डिब्बिया तू ही रख ले और यह ले पाँच रुपये, इन के लड्डू चौक से ले आ। ताजे बनवा कर लाना। भगवान को प्रसाद लगाना है। मैं पाठ पर बैठी होऊँ तो मुझे न बुलाना !

[धोती की कोर से गाँठ खोल कर उसे एक पाँच का नोट देती है। नौकर उलटे पाँव वापस चला जाता है और माँ बायीं ओर के, सामने कमरे में प्रवेश करती है।

कुछ क्षण बाद डा० हंसराज घबराये हुए दाखिल होते हैं और अपनी पत्नी को आवाज़ देते हैं :]

डा० हंसराज : कमला, कमला

[कोई आवाज़ नहीं आती।

डाक्टर साहब 'कमला कमला' आवाज़ देते हुए सब कमरों में भाँकते हैं और फिर शायद पाठ करती हुई माँ से संकेत पाकर स्नानगृह के दरवाज़े पर आ खड़े होते हैं और किवाड़ पर टिकटिक करते हुए आवाज़ देते हैं।]

— : कमला कमला !

[किवाड़ खोल कर कमला अन्दर से निकलती है। खुले खुले चमकीले बाल उसके कंधों पर बिखरे हैं। चेहरा निखरा हुआ है और श्वेत साड़ी उसने पहन रखी है। कंधों पर बालों के नीचे एक तौलिया है।

पीढ़ी पर रखा हुआ किरोशिया और

छटा बेटा

आधा बुना मेज़पोश उठा लेती है और
किरोशिया चलाने लगती है ।]

डा० हंसराज : तुम्हें हो क्या गया । इतनी आवाज़ें मैंने दी.....

कमला : मैंने नल छोड़ रखा था ।

डा० हंसराज : तुम्हें पता नहीं पिता जी के नाम तीन लाख की
लाटरी निकल आयी है ।

(कमला अवाक खड़ी रह जाती है ।)

डा० हंसराज : सच तीन लाख की । तुम्हें याद है न, एक बार
तुमने आटा लाने के लिए दस रुपये उन्हें दिये
थे (कमला अवाक खड़ी है) उस दिन, जब
चचा चाननराम यहाँ आये हुए थे (कमला
अवाक खड़ी है) उस दिन जी, जब कैलाशपति
भी यहाँ था और वे आटा लाने के बदले लाटरी
का टिकट खरीद लाये थे ।

कमला : (आखिर उसका मुँह खुलता है) वे रुपये तो
हमारे थे । लाटरी का रुपया तो हमें मिलना
चाहिए ।

डा० हंसराज : (विवशता से) लेकिन डब्बी वाले तो इस बात को
नहीं जानते ।

कमला : वे लाख न जानें । लेकिन पिता जी को तो उसका
आधा हमें देना चाहिए । मैं रुपये न देती तो वे
टिकट कहाँ से खरीदते ।

डा० हंसराज : तुम तो मूर्ख हो ।

[सिर कुरेदते हुए घूमते हैं । कमला शायद
'मूर्ख' की उपाधि पाकर ही संतुष्ट हो गयी]

आदि मार्ग

है । इसलिए वह दीवार के साथ ही लगी
खड़ी चुपचाप मेज़पोश बुनती रहती है ।]

डा० हंसराज : (सारे बरामदे का एक चक्कर लगाकर, 'तुम क्यों
दुबले ? शहर के अंदेशों' के से-स्वर में) मैं कहता
हूँ, यह चाननराम पिता जी का सब रुपया हड़प
करके दम लेगा । मुझे निहालदास ने बताया—
आते आते कहीं उसकी दुकान पर गप हाँक
आये होंगे—पाँच हजार पिता जी उसे दे रहे
हैं । निहालदास कहता था कि वे अभी घर गये
हैं, आये थे पिता जी यहाँ ?

कमला : शायद आये हों, मुझे कुछ आभास तो होता है,
लेकिन मैं तो नहा रही थी, नल मैंने छोड़ रखा
था और माँ जी चरखा कात रही थीं, शायद इस
सब के शोर में मुझे सुनायी नहीं दिया ! माँ से
पूछा आपने ?

डा० हंसराज : वे पाठ पर बैठे हैं ।

[डा० हंसराज चुपचाप, कमर के पीछे
हाथ रखे, बरामदे का एक और चक्कर लगाते
हैं फिर रुककर :—]

— : तुम मानी नहीं तब, यदि उन्हें यहाँ से न जाने
दिया जाता तो कितना अच्छा होता ।

कमला : (तिनककर) मैं नहीं मानी, मैंने तो कई बार
कहा कि आखिर आप के पिता हैं, उन्होंने
पढ़ाया-लिखाया तो आप इतना कमाने योग्य
हुए—लेकिन आपने हमेशा मुझे डाँट बता दी ।

छठा बेटा

आप स्वयं न चाहते थे ।

डा० हंसराज : मैं न चाहता था । जब वे शराब पिये आते थे तो उनकी गालियाँ किस अखरती थीं ?

कमला : और जब वे कीचड़ से सने हुए जूते लिये, नंगे सिर, नंगे बदन, भूमते-भामते दुकान में आ जाते थे तो कौन तिलमिलाता था ?

डा० हंसराज : लेकिन तुम्हीं को तो उनका अचानक कई मेहमानों का लेकर आ जाना और उन सब के लिए खाना पकाने का ताना-शाही हुक्म देना खलता था ।

कमला : और आप ही को तो उनका रोगियों के सामने आधा नाम लेकर पुकारना घुरा लगता था ।

डा० हंसराज : तुम मेरे साथ अन्याय करते हो ।

कमला : आप मेरे साथ अन्याय करते हैं । यही दस रुपये—याद है न आपको—मैंने आटा लाने के लिए दिये थे और आपने दस बातें बनायी थीं ।

[मटकती हुई दायें कमरे में जाता है ।

बगूले की भाँति गुरु प्रवेश करता है ।]

गुरु : भाई साहब, सुना आपने, पिता जी के नाम तीन लाख का लाटरी निकली है (मुँह बाये और आँखें फाड़े) तीन लाख की डर्बी की लाटरी ! राज का बड़ा भाई उनसे मिलने के लिए चाननराम के घर गया था ।

डा० हंसराज : इंटरव्यू करने के लिए ?

आदि मार्ग

गुरु : जी ! दो बार तो वे बात ही नहीं कर सके, गुट पड़े थे, तीसरी बार वह गया तो अपनी अलसायी, मदमाती लाल-लाल आँखें खोल कर उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और जोर का एक चाँटा उसके मुँह पर दे मारा, जब से एक सौ का नोट निकाल कर उसके सामने फेंक दिया कि जा साले दो चार दिन मज्जे कर, क्या ज़रा ज़रा सी खबरों के लिए मारा-मारा फिरता है ।

डा० हंसराज : (चौंकर) सौ रुपया दे दिया (जिस कमरे में कमला गयी है, उधर को देख कर) मैं कहता हूँ, यह तीन लाख रुपया इसी तरह उड़ जायगा (फिर गुरु की ओर मुड़ कर) गुरु तुम जाओ, ज़रा हरिनाथ को बुला लाओ ।

[गुरु चलना चाहता है। डा० हंसराज उसे फिर आवाज़ देते हैं ।]

— : और देखो, बिन्द्रा के यहाँ स देव को टैलीफोन कर देना और यह लो दो रुपये, कैलाशपति को तार दे दो—एक्सप्रेस—कि जिस तरह भी हो सके, आज रात यहाँ पहुँच जाय ।

[रुपया निकालकर उसकी ओर फेंकते हैं, गुरु उन्हें उठाकर चला जाता है और डाक्टर साहब फिर सिर कुरेदते हुए घूमने लगते हैं और फिर आप ही आप खदबदाते हैं :]

— : किसी न किसी तरह उन्हें यहाँ ले आना चाहिए ।

छटा बेटा

(फिर घूमते हैं, फिर रुककर :)

— : पर ले कैसे आएँ ?

[कमला, पूर्ववत् किरोशिये से मेज़पोश बुनती हुई, एक कमरे से निकल कर दूसरे को जाती है, बुना हुआ मेज़पोश लटकता हुआ जा रहा है—डाक्टर साहब उसके पास जाते हैं।]

— : कमला ।

कमला : (रुककर और मुड़ कर) कहिए ।

डा० हंसराज : (और भी पास जाकर तनिक भेद भरे तथा अनुनय के स्वर में) देखो जो हुआ सो हुआ, पर बुद्धिमान वही है, जो बिगड़ी हुई बात बना ले ।

कमला : (नीची निगाह किये किरोशिया चलाती हुई) इसमें क्या शक है, बिगड़ी हुई बात बनानी ही चाहिए ।

(चलती है ।)

डा० हंसराज : (साथ साथ चलते हुए) मैं चाहता हूँ कि पिता जी को यहाँ ले आऊँ ।

कमला : तो ले आइए ।

डा० हंसराज : लेकिन ले आने से काम न चलेगा, उन्हें यहाँ रखना होगा ।

कमला : तो रखिए !

डा० हंसराज : रखने की बात नहीं, उनका मन बहलाना होगा !

कमला : तो बहलाइए !

(गुरु के कमरे में दाखिल हो जाती है ।)

डा० हंसराज : (बाहर खड़े खड़े) कमला !

आदि मार्ग

[कमला मुड़कर चौखट में खड़ी हो जाती है—चट्टान की भाँति !—दोनों एक निमिष के लिए एक दूसरे की ओर देखते हैं ।]

डा० हंसराज : (स्वर को तनिक विवश, तनिक विनम्र बनाकर) देखो मेरी बात का गुस्सा न किया करो ! मेरा दिमाग बड़ा परेशान रहता है । खर्च दिन-दिन बढ़ता जा रहा है और आय उतनी है नहीं और सरकार के बढ़ते हुए टेक्सों के कारण दुकान और मकान के मालिक किराया बढ़ाने की सोच रहे हैं और फिर यह कम्बख्त लाहौर—सदा कोई न कोई मेहमान आया रहता है और पांजीशन रखने के लिए महँगे भाव चीजें खरीदनी पड़ती हैं ।

[निमिष भर के लिए, यह देखने के हेतु कि उनकी इस विवशता का प्रभाव उनकी पत्नी पर पड़ रहा है या नहीं, उसके चेहरे की ओर देखते हैं फिर :]

— : कैसी विडम्बना है—जिनको जरूरत है, उन्हें लोहू पानी एक करने पर भी पैसा नहीं मिलता और जिन्हें जरूरत नहीं, उनके पास आप से आप चला आता है ।

(फिर पत्नी के मुख की ओर देखते हैं)

— : उनको फिजूल उड़ाने के लिए तीन लाख मिल जायँ और हमें जरूरी खर्च के लिए तीन सौ भी न मिलें !

[विवशता, लाचारी और निराशा से

छठा बेटा

सिर झुका लेते हैं। चट्टान पिघलकर अपना स्थान छोड़ देती है।]

कमला : (बाहर आकर) आप योंही जी छोटा करते हैं। दूसरे के नर्म-गर्म बिस्तर को देखकर कोई अपनी दरी दुलाई तो नहीं उठा देता।

डा० हंसराज : (लगभग गर्ज कर) दूसरे के—मैं अपने पिता की बात कर रहा हूँ। उनके धन पर क्या हमारा कोई अधिकार नहीं ? उनके सुख-दुख में क्या हमारा कोई भाग नहीं ? फिर मैं कहता हूँ कि अपने हक और अपने हिस्से की बात छोड़ो, मैं तो उनके लाभ की बात सोच रहा हूँ। अगर इस समय उन्हें न बचाया गया तो वे तबाह हो जायेंगे। भगवान ने उन्हें एक अवसर दिया तो उन्हें उसका पूरा लाभ उठाना चाहिए। उसका दुरुपयोग न करना चाहिए। और वे जिस रफ्तार से रुपया उड़ा रहे हैं, उससे तीन लाख, तीन बरस तो क्या, तीन महीने में हवा हो जायगा। तुमने सुना नहीं, उस राज के भाई को उन्होंने एक सौ रुपया केवल एक चाँटा खाने के बदले दे दिया।

(देव चुपचाप प्रवेश करता है।)

देव : केवल एक चाँटा, भगवान कसम, सौ रुपये के लिए तो आदमी सौ जूते खा सकता है।

डा० हंसराज : और भला नहीं क्या ?

(कमला हँसती है।)

आदि मार्ग

देव : उसी सर्दियों के सूर्य की-सी मुस्कान के साथ)
हंसी की बात नहीं भाभी, तुम नहीं जानती,
डिलिवरी ब्राँच* में कितना काम होता है।
नये कानून के अनुसार दफ्तर तो दूर, दुकानों
के नौकरों तक का इतवार की छुट्टी होती है,
लेकिन मुझे कई इतवार सुबह पाँच बजे से
शाम के सात बजे तक ड्यूटी देनी होती है।
साल के बारह महीने, महीने के तीस-इकतीस
दिन और एक दिन के आठ घंटे—कहने का
मतलब यह कि बरस भर में लगभग दो हज़ार
नौ सौ बीस घंटे अनथक काम करने के बाद
मिलता क्या है ? चालीस रुपया मासिक के
हिसाब से सिर्फ ४२० रुपया—फिर अगर १००
जूते खाने के बदले सौ रुपया मिल जाय तो
क्या बुरा है।

डा० हं सराज : लेकिन मैं पूछता हूँ—हरिनाथ क्यों नहीं आया।
उसे तो तुम से पहले आ जाना चाहिये था।
मैंने गुरु से कहा था कि वह उसे भेजकर तुम्हें
टेलीफोन करे। और तुम्हीं इतनी जल्दी कैसे
आ गये, क्या लारी पर आये थे ?

देव : आया तो मैं लारी पर ही हूँ, लेकिन टेलीफोन
मुझे नहीं मिला।

*डाकारवाने का एक विभाग जिसमें बाहर से आये हुए पत्र बाँटने
के लिये डाकियों को दिये जाते हैं।

डा० हंसराज : तो तुम्हें लाटरी का कैसे पता चला ?

देव : शायद पिता जी उसमें से चाचा चाननराम को पांच हजार रुपया देने वाले हैं। ईर्ष्या-वश उनके भाई ने मुझे टेलीफोन किया कि तुम लोगों ने कुछ न किया तो सारा रुपया उड़ जायगा और बाद में तुम लोग पछताओगे।

डा० हंसराज : इसमें क्या शक है. एक बोटल पिला कर, पिता जी से कोई तीन लोक का राज्य लिखवा सकता है और फिर चची.....

देव : एक ही भिस को गांठ है। ऊपर से जितनी भोली अन्दर से उतनी खोटी ! मुँह की जितनी सुन्दर, दिल की उतनी काली ! मीठी मीठी बातों से मोह लेना वह खूब जानती है। और फिर पिता जी, उनको कमजोरी तुम जानते ही हो। मीठी बातें करके चाहे कोई उन्हें लूट ले, चाहे कोई उनके कपड़े उतार ले !

डा० हंसराज : छै महीने घर रखने के बदले पांच हजार रुपया हथिया लिया, और लूटना किसे कहते हैं ?

[दोनों कमरे में घूमने लगते हैं। एक कुर्सी से रसोई घर तक और दूसरा कुर्सी से कमरे तक। फिर दोनों आमने सामने आकर खड़े हो जाते हैं।]

डा० हंसराज : (उसी कड़ुता से) देखो न, तुम उस डाकखाने के अँधेरे कमरे में दिन के वक्त भी बिजली जला कर चिट्ठियों के साथ माथा फोड़ते हो।

आदि मार्ग

अगर जिन्दगी में तुम्हें कुछ स्टार्ट मिल जाय तो तुम क्या कुछ नहीं कर सकते ! अपने ही विभाग में तुम ऊँचे से ऊँचे पद पर आसीन हो सकते हो । अगर पिता जी तुम्हें दस हज़ार.....

देव : उन्हें पहले अपने नये पुत्रों को तां स्टार्ट दे लेने दो । बनारसीदास को वे अपना सातवां पुत्र कहते हैं और अब तां चाचा चाननराम भी पुत्र बन जायेंगे और दोनदयाल भी और न जाने और कौन कौन पुत्र बन जाय.....और मैं तं केवल चौथा हूँ.....

[हरिनाथ प्रवेश करता है—बाल बिखरे, डाढ़ी बड़ी, धोती और कमीज़ क्रदरे मैली ।]

डा० हंसराज : (उसी कड़ुता से) अब हरिनाथ ही को ले लो । जिन्दगी का साथ निबाहने के लिए पत्रिका और प्रेस का रोग लगा बैठा है और सूरत तो देखो क्या बनायी है ? क्या कम्पोज़िटर्स के साथ माथापच्ची करना इसके बस की बात है ? प्रकृ पढ़ना और अनुवाद करना क्या इसका काम है ? यह ठहरा कवि ! इसे चाहिए था कि यह भ्रमण करता, श्रीनगर, पहलगवां, मसूरी, नैनीताल आदि पहाड़ों की सैर करता । सागर के तट को देखता और फिर 'शान्ति निकेतन' ऐसे स्थान में जम जाता और अमर काव्यों की सृष्टि करता ।

छठा बेटा

हरिनाथ : (मञ्जान हँसी से) अरे भाई, ऐसे भाग्य कहाँ ?

डा० हंसराज : इस में भाग्य की कौन सी बात है ? तुम्हें शायद मालूम नहीं, पिता जी को तीन लाख की लाटरी आयी है ।

हरिनाथ : (आँखें फट जाती हैं और मुँह खुल जाता है) तीन लाख की ?

डा० हंसराज : तीन लाख की ! यही तो मैं कहता हूँ (लगभग भाषण देते हुए) अगर आज वह तीन लाख रुपया गंदी नालियों में सड़ने के बदले किसी अर्थ लग जाय तो क्या नहीं हो सकता ? वह कैलाशपति क्या टिकेट-कलक्टर बनने योग्य है, उसे तो पुलिस इंस्पेक्टर होना चाहिए । कुछ रुपये खर्च करके उसे अब भी सीधा सब-इंस्पेक्टर भरती करवाया जा सकता है । गुरु को विलायत भेजा जा सकता है और अगर वह विलायत चला जाय तो अपनी प्रखर-बुद्धि के साथ क्या कुछ नहीं कर सकता, कौन उसे आई० सी० एस० बनने से रोक सकता है !

देव : विलायत भेजने से लाभ ! वहाँ तो दिन रात बमबारी होती रहती है ।

डा० हंसराज : (खीज कर) अरे विलायत न सही, हिन्दुस्तान में तो बमबारी नहीं होती ।

देव : लेकिन सरकार तो नामजदगियाँ करेगी, कम्पी-टीशन नहीं !

आदि मार्ग

डा० हंसराज : तो और भी आसान है। नामजदगियां पैसे वालों की होती हैं। मैं कहता हूँ, अगर घर में एक भो आई० सी० एस० हो जाय तो सारे का सारा खानदान तर जाय !

हरिनाथ : (जो काश्मीर तथा नैनीताल की सैर कर रहा है ।)
इसमें क्या शक है ?

डा० हंसराज : और मैं क्या माल पर दुकान नहीं ले जा सकता। ये डाक्टर माथुर, कपूर, भल्ला क्या मुझ से योग्य हैं—पैसा चाहिए पैसा ! माल पर उन जैसा सैनीटोरियम क्या मैं नहीं खोल सकता !

कमला : (जो इस समय तक चुरचुर मेज़पोश बुन रही थी)
मैं कहती हूँ, मैं चली जाऊँगी, उन्हें यहाँ ले भी आऊँगी। बाक़ी आपका काम है कि उन्हें फिर न मटकने दें।

डा० हंसराज : (उल्लास से) देट्स लाइक ए गुड गर्ल।

हरिनाथ : तुम्हारे बिना यह काम किसी से न होगा, भाभी।

[माँ पाठ करने के बाद माला हाथ में लिये हुए ही बाहर आती है।]

माँ : हरचरण आया नहीं अभी ?

[हरचरण लड्डूओं की टोकरी लिये प्रवेश करता है।]

हरचरण : मैं आ गया माँ जी।

गुरु : यह लड्डू कैसे हैं ?

छठा बेटा

माँ : भगवान का प्रसाद बाँटूंगी ।

डा० हंसराज : तो लाओ इसी बात पर मुँह तो मीठा किया जाय।

माँ : (दरवाज़े की ओर जाती हुई) न, न, पहले भगवान को भोग तो लगा लिया जाय । (नौकर से)
आ रे हरचरण मेरे साथ मन्दिर तक,
भगवान.....

हरिनाथ : (कवि) हमसे बड़ा भगवान कहाँ है ।

(सब हँसते हैं ।)

[पर्दा गिरता है]

(पर्दा कुछ क्षण बाद फिर उठता है ।)

[दृश्य वही है । लाइट कुछ और कम है ।
वही बरामदा और उसमें का वही सामान ।
चारपाई वैसे ही बिछी है और उस पर चादर
ताने वैसे ही कोई सोया हुआ भी है । खुरांटे
वह नहीं ले रहा और नींद में बेहोश पड़ा दिखायी
देता है ।

कुर्सियों में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ । वैसे
ही तिपाई के दोनों ओर पड़ी हैं । हाँ दो और
कुर्सियाँ सामने की ओर को रख दी गयी हैं,
रसोई-घर से ज़रा-ज़रा सा धुआँ भी निकल रहा
है, यद्यपि उसमें से अब सुगंधि नहीं आती,

आदि मार्ग

क्योंकि अन्दर चूल्हे में अनवरत सुलगने वाले उपलों के धुएँ ने, पंडित बसन्तलाल के निरन्तर गुड़गुड़ाने वाले हुक्के के धुएँ से मिल कर, उसे परास्त कर दिया है ।

पर्दा उठने पर, हम दायीं ओर की कुर्सी पर पंडित बसन्तलाल को नशे में मद-भक्त, हाथ में खाली हुक्के की नै लिये, टाँग पर टाँग धरे, बैठे देखते हैं । चिलम शायद भरे जाने के लिए चन्नी गयी है । उनके सामने की कुर्सी पर डा० हंसराज बैठे हैं और उनकी आकृति उस कुत्ते की सी बनी हुई है, तो मालिक को खाना खाने देख कर, दुम हिलाता और विनम्र, खुशामदी, लालसा भरी दृष्टि से तकता हुआ, घुटने टेक कर बैठ जाता है कि जरा मालिक का ध्यान हो तो दुम हिलाये । उसमें और इनमें अन्तर केवल इतना है कि इनके दुम नहीं, जिसे ये हिला सकें ।

दो बार खाली हुक्के को गुड़गुड़ा कर पंडित बसन्तलाल चीखते हैं :—]

बसन्तलाल : मर गया वहीं चिलम के साथ ?

[स्वर की तीव्रता के बावजूद उसमें वह थथलाहट है, जो नशे के आधिक्य की सूचक है ।]

❀ इस सारे दृश्य में नकी यह थथलाहट जारी रहती है, और यद्यपि ज्यों ज्यों वे अधिक पीते हैं, अधिक मुखर होते हैं, किन्तु थथलाहट भी उनकी बढ़ती जाती है ।

छठा बेटा

रसोई-घर से कैलाश की आवाज़ आती है :—]

कैलाश : आया पिता जी !

[और कुछ क्षण बाद कैलाशपति रसोई-घर से चिलम हाथ में लिये, उसमें फूँके मारता हुआ आता है ।

आश्चर्य, कि उसकी हिंस्र-दृष्टि का कहीं ढूँढ़े से भी पता नहीं चलता और बर्बर सा न दिखायी देकर वह निरीह सा दिखायी देता है, सिर पर उसके लम्बे लम्बे बाल नहीं और भवों पर वह तनाव नहीं । सिर पर मशीन फिरी है और लगता है जैसे भवों पर मशीन फिर गयी है, क्योंकि मस्तक पर एक भी तो सिलवट नहीं । चुपचाप बड़े विनम्र भाव से चिलम लाकर हुक्के पर रख देता है ।

पं० बसन्तलाल एक कश लगाते हैं और गुराते हैं—]

बसन्तलाल : ईडियट !* तुम्हें चिलम भरने की भी तमीज़ नहीं, बी० ए० पास हो गया है ।

[कैलाश आँखें उठाता है, जो शायद फ़रियाद कर रही हैं कि पिता जी, मैं बी० ए० में चिलम भरना नहीं सीखता रहा । तभी डाक्टर साहब उचक कर उठते हैं और अपने पिता के हाथ से चिलम ले लेते हैं ।]

* Idiot (मूर्ख !)

आदि मार्गें

डा० हंसराज : सोलह आने मूरख हो । भला वहीं इस तरह चिलम भरी जाती है । देखो उपलें की आग को उस तरह नहीं रखा जाता । उसके छोटे छोटे टुकड़े करके रखे जाते हैं । तुमने तमाकू भी ठीक ढंग से न भरा होगा (पिता से) मैं जाता हूँ, अभी और चिलम भर के लाता हूँ ।

[चिलम लेकर रसोई-घर में चले जाते हैं । कैलाशपति कुर्सी पर बैठने लगता है ।]

बसन्तलाल : तुम ज़रा मेरी टाँगें दबाओ ।

[टाँगें तिपाई पर रख कर पीछे को लेट जाते हैं । कैलाशपति मौन रूप से पिता की टाँगें दबाने लगता है ।

देव प्रवेश करता है—सिर थिलकुल घुटा हुआ है और छोटी खड़ी है, कैलाशपति उसकी और देखता है और हँसी को बरबस रोकता है ।]

— : वाह ! देखो, अब कितने अच्छे लगते हो ! हमेशा सिर घुटा कर रखा करो ! दिमाग ताज़ा रहता है, बुद्धि तेज़ होती है और नहाने धोने में आराम रहता है (कद्रे जोश से) और फिर यह पुरुषत्व की निशानी है । पुरुषों को पुरुष दिखायी देना चाहिए—खुल कर हँसना चाहिए, कड़क कर बोलना चाहिए और शेरों की तरह दहाड़ना चाहिए ! (हँसते हैं) दूसरे देशों में तो औरतें मर्द बनती जा रही हैं और यहाँ मर्द

छठा बेटा

औरतें बनते में फूले नहीं समाते । जानते हो
चोटी का क्या महत्व है ?

[दोनों मौन रहते हैं, केवल उनकी
प्रश्नसूचक-दृष्टि अपने पिता के चेहरे पर जम
जाती है ।] ,

बसन्तलाल : चोटी हिन्दुत्व की निशानी है, हिन्दुओं का
अपना जातीय चिन्ह है) खाली हुक्का गुड़-गुड़ाते
हैं ।) फिर मनुस्मृति में लिखा है कि चोटी
बिजली के वेग को रोकती है । चोटी वाले
आदमी पर कहीं बिजली गिर जाय तो भट
चोटी के रास्ते शरीर से होती हुई धरती में
समा जाती है और वह आदमी उसके आक्रमण
से साफ़ बच जाता है ।

देव : शायद यही कारण है कि प्राचीन समय में
ब्रह्मचारी नंगे सिर रहते थे और चोटी को गाँठ
देकर रखते थे कि वह पूरी तरह खड़ी रहे ।

कैलाशपति : बिलकुल बिजली के कंडक्टरों की भाँति जो
ऊँची ऊँची इमारतों पर लगा दिये जाते हैं—
जी वही लोहे के छोटे छोटे तीर अथवा त्रिशूल
से—ताकि अगर बिजली गिरे तो इमारत का
नुकसान न पहुँचे ।

देव : (जिसे अपनी सूझ और श्रुति पर कम गर्व नहीं)
और फिर दादा जी कहा करते थे कि प्राचीन
काल के ऋषि-मुनि इसी चोटी से रेडियो का
काम लेते थे । संजय ने हस्तिनापुर में बैठे बैठे

आदि मार्ग

महाराज धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र के युद्ध की जो खबरें सुनायीं, वे इसी चोटी के बल पर ही तो सुनायीं ।

[अपनी इस सूझ तथा रक्षुति की प्रशंसा पाने के विचार से अपने पिता की ओर देखता है, जो केवल मौन रूप से एक दो बार हुक्का गुड़गुड़ा कर दाद देते हैं । -

डा० हंसराज चिलम लिये रसोई से निकलते हैं ।]

डा० हंसराज : (कैलाशपति की ओर देखकर) देखो अब चिलम भर कर लाया हूँ—पहले तमाखू को अच्छी तरह मल कर उसकी टिकिया बनायी, फिर उसे कंकड़ पर रख कर, उस पर गुड़ के चूरे की हल्की सी तह जमायी, उस पर फिर तमाखू बखेरा, अँगूठे से उसे धीरे धीरे जमावा, नीचे से कंकड़ को ज़रा हिला दिया ताकि जम न जाय ! फिर उस पर उपलों की आग रखी—घंटे भर से पहले चिलम बुझ जाय तो हंसराज नाम नहीं ।

[प्रशंसा पाने की इच्छा से अपने पिता की ओर देखते हुए चिलम हुक्के पर रख देते हैं ।

पं० बसन्तलाल हुक्का गुड़गुड़ाते हैं,
डा० हंसराज उनके सामने की कुर्सी पर बैठ जाते हैं, और यद्यपि कैलाशपति तिपाई पर

छठा बेटा

टिकी हुई उनकी टाँगें दबा रहा है, वे पाँव दबाने लगते हैं ।

कुछ क्षण तक हुक्के की गुड़गुड़ाहट का शब्द बरामदे की निस्तब्धता को भंग करता रहता है और धुएँ के कश छत की ओर जाते हुए रसोई-घर से उठने वाले धुएँ से मिलते हुए, आकाश की ओर जाते हैं ।

डा० हंसराज चुपचाप-से खड़े देव को संकेत करते हैं कि वह पीने का सामान लाये और स्वयं अपने पिता के पाँव तनिक और निष्ठा तथा श्रद्धा से दबाते हुए मतलब की बात आरम्भ करते हैं :]

डा० हंसराज : पं० रघुनाथ कल फिर आया था ।

बसन्तलाल : (निपुणता से भरी हुई चिज़म के नशे से ऊँघती हुई आवाज़ में) कौन रघुनाथ ?

डा० हंसराज : जी वही रायसाहब चम्पाराम का पुरोहित ! देव और कैलाश के लिए पूजने आया था । दो बार आगे भी आ चुका है ।

बसन्तलाल : (तन्द्रित पलकें उठा कर) कौन चम्पाराम ?

डा० हंसराज : जी वही जो 'दादा' ही का रहने वाला है—वही जी, जिसके पास आप एक बार देव की सिफारिश लेकर गये थे, और जिसने सीधे मुँह बात भी न की थी ।

बसन्तलाल : (सहसा उठ कर) वह चम्पाराम, उस साले को एक दम 'न' कर दो !

आदि मार्ग

[देव मदिरा की बीतज और शीशे का गिलास लाता है ।]

डा० हंसराज : (गिलास में मदिरा ढाल, उनकी ओर बढ़ा कर, बोतल फिर देव को देते हुए) यह 'न' करने का वक्त नहीं पिता जी । इस समय तो बल्कि 'हाँ' करनी चाहिए । हमारे उस अपमान का, इससे बढ़कर और क्या बढ़ता होगा कि वह अपनी लड़कियों की डोलियाँ हमें दे ।

[पंडित जी गिलास कंठ में उडेल कर फिर दे देते हैं, डाक्टर साहब बोतल लेकर उसमें से तनिक और उँडेल देते हैं ।]

डा० हंसराज : (बात को जारी रखते हुए) और चम्पराम असर और रसूख वाला आदमी है, कैलाशपति को वह सीधा सब इंस्पेक्टर भरती करा सकता है । देव की उन्नति के चौंस भी इस रिश्ते से कहीं ज्यादा बढ़ सकते हैं । और फिर इस आदमी से रिश्ता करके और बीसों काम निकल सकते हैं—गुरु को कम्पीटीशन में बैठना है, और उसमें भी सिकारिश कम काम नहीं करती ।

बसन्तलाल : तो हाँ कर दो !

[फिर टाँगें तिपाई पर रख लेते हैं और पीछे को लेट जाते हैं ।]

डा० हंसराज : (उनके पाँवों को दबाते हुए) लेकिन 'हाँ' कैसे कर दें । इतने बड़े आदमी की लड़कियाँ घर में योंही तो नहीं लायी जा सकतीं ।

छठा बेटा

उनके लिए सौ सौ सामान चाहिएँ। मैंने आप से कहा था कि आप बीस बीस हजार रुपया देव और कैलाश के नाम लगा दें। फिर जब तक हम अपनी कोठी नहीं बनवाते, बाहर एक कोठी लेकर रहें। फिर तो मैं 'हाँ' करूँ भी। अब सूत न कपास कोरी से लट्टम लट्टा, यों मैं अपनी भद् नहीं कराना चाहता (गिलास उठा कर उनको देते हुए) अभी तो पंडित ही देख कर पूछ गया है, जब खूद चम्पाराम आया और उसे पता चला कि लड़कों के पत्ते तो पैसा भी नहीं तब.....

बसन्तलाल : (सहसा उठकर और टांगें नीचे करके) देव.....

देव : जी !

बसन्तलाल : जाओ मेरी चैक बुक उठा लाओ।

[देव बोतल और गिलास कैलाशपति को देकर भाग जाता है।]

— : चम्पाराम का भी पता चले कि बसन्तलाल कोई ऐसा वैसा आदमी नहीं है।

डा० हंसराज : (रद्द जमाते हुए) चाटुकारी से हासिल किये हुए धन का उसे मान है। भाइयों का गला काट कर आज वह धन्ना सेठ बन गया है।

बसन्तलाल : तो हटाओ, उस साले की लड़कियों से हम अपने बेटों का ब्याह न करेंगे।

(फिर पीछे को लेट जाते हैं और हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।)

ज० हंसराज : (चौंकर पुनः पांव दबाते हुए) विष के मारने

आदि मार्ग

के लिए बिप ही महाबली है, पिता जी ! धनी का दर्प धन ही से चूर हो सकता है ।

[देव चैक बुक ले आता है । डा० हंसराज हाथ बढ़ देते हैं ।]

डा० हंसराज : लाओ, इधर लाओ !

[देव चैक बुक डाक्टर साहब को देकर फिर बोतल और गिलास थाम लेता है और कैलाश फिर अपने कर्तव्य में रत हो जाता है*]

— : (फाउटेनपेन निकाल कर चैक बुक खोलते हुए) तो बीस हजार कैलाश के नाम लिख दूँ !

(लिखते हैं ।)

— : और देव के नाम ? देव तो बड़ा है । उसे दस हजार ज्यादा मिलना चाहिए !

वसन्तलाल : (आँखें बन्द किये, पूर्व-वत हुक्का गुड़गुड़ाते हुए)
हाँ...हाँ... उसके नाम तीस हजार लिख दो !

*यह दृश्य जब तक रहता है, पुत्र अपना कर्तव्य भलाभाँति निभाते हैं । डा० हंसराज बहुत देर तक अपने पिता को नशे के बिना नहीं रहने देते, कैलाशपति एक बार जो टांगें दबाने लगा है, तो वहीं बैठा है, जब वे टांगें तिपाईं पर रख देते हैं, वह उन्हें दबाना शुरू कर देता है, देव जो एक बार बोतल तथा गिलास लाता है तो उन्हें लिये खड़ा है । जब डा० साहब बोतल ऊससे लेकर गिलास में उँडेलते हैं तो वह फिर बोतल थाम लेता है, पंडित जी जब गिलास खाली कर देते हैं तो वह उसे थाम लेता है । दूसरों को भी जब कोई काम नहीं होता तो वे अपने पिता के कंधे अथवा बाजू आदि दबाने लगते हैं ।

छटा बेठा

[डा० हंसराज लिखते हैं । सिर घुटाये,
जाँघिए लगाये, तेल की मालिश से
शरीर चमकाये कवि हरेन्द्र और भावी आई०
सी० एस० गुरु प्रवेश करते हैं ।

पंडित बसन्तलाल फिर उठकर बैठ जाते
हैं]

बसन्तलाल : कितने डंड पेल कर आये ?

गुरु : मैंने जी पचास डंड पेल और पचास बैठकें
निकालीं ।

बसन्तलाल : और तुमने हरि ?

हरि : मैं पच्चीस से ज्यादा नहीं निकाल सका ।

बसन्तलाल : (हुक्के का कश लगाकर) बस रोज़ दो बढ़ाओ ।
धीरे धीरे तुम देखोगे कि तुम्हें कुछ भी मुश्किल
नहीं लगता । इधर आओ !

[दोनों झिझकते हुए अपने पिता के
निकट जाते हैं । पं० बसन्तलाल गुरु की गर्दन
पर अपनी कलाई से एक धौल जमाते हैं—
इतने जोर से कि गुरु बड़ी मुश्किल से
समझलता है]

— : हाँ अब तुम बलवान हो रहे हो । लाओ ज़रा
पंजा ।

[अनिच्छापूर्वक गुरु पंजा देता है । पं०
बसन्तलाल उससे पंजा लड़ाते हैं ।]

— : मरोड़ो !

आदि मार्ग

[गुरु जोर लगाता है, पर पंजा मरोड़

नहीं पाता । पं० बसन्तलाल छोड़ देते हैं ।]

बसन्तलाल : पंजा लड़ाने का अभ्यास किया करो । इससे जहाँ हाथ की अँगुलियाँ मजबूत होती हैं, वहाँ कलाई में भी जोर आता है । जब मैं पढ़ता था तो बड़े बड़ों से पंजा ले लेता था । और फिर कलाई किसी की पकड़ लेता था तो उसे छुड़ाना मुश्किल हो जाता था (हरि से) इधर आओ, देखूँ तुम्हें कुछ बल आया है या नहीं ?

हरि : (गुरु की गर्दन पर धौल पड़ते देख कर ही जिस का रंग पीला हो गया है ।) जी अभी क्या आया होगा, अभी तो मैं पच्चीस डंड ही मुश्किल से निकाल सका हूँ ।

बसन्तलाल : नहीं, इधर आओ !

[भिन्नकृता भिन्नकृता हरिनाथ पिता के

पास आता है, पं० बसन्तलाल उसकी कलाई पकड़ते हैं ।]

— : छुड़ाओ, जोर लगाओ !

[बेचारा हरिनाथ भरसक जोर लगाता

है पर छुड़ा नहीं पाता । तब, पं० बसन्तलाल झटका देकर उसकी कलाई छोड़ देते हैं ।]

— : तुम्हें क्या बल आया सा। सारा दिन कविताएँ लिखता रहता है । कविताओं से क्या होगा ? और फिर उनसे, जो तू लिखता है ! बलवान बन, बलवान ! डंड पेल, कबड्डी खेल,

छठा बेटा

दौड़ लगा, कुश्ती लड़ ! कल अगर कोई तेरी बीबी को उठाने आ जाय तो अपने इस तिनके से शरीर को लेकर तू क्या करेगा, जिस में न बल है, न साहस । कविता सुना देने भर से तो गुंडे पीछे न हटेंगे (हुक्का गुदगुदा कर और खाँस कर) दुनिया में हमेशा लाठी वाले की भैंस होती आयी है और लाठी उसके हाथ में होती है, जिसकी बाहों में बल और सीने में साहस हो ! (फिर कण जगाते, खाँसते और खँखारते हैं ।) रोज़ बाकायदा कसरत किया करो और “सौची पक्की” खेला करो ताकि सीना मजबूत हो ।

डा० हंसराज : यह ‘सौची पक्की’ क्या बला है पिता जी ?

[पं० बसन्तलाल जड़खड़ाते हुए उठते हैं और गुरु के सामने आ खड़े होते हैं और अपना बायाँ पाँव आगे बढ़ाते हैं ।]

बसन्तलाल : तुम भी अपना बायाँ पाँव आगे बढ़ाओ ।

(गुरु अपना पाँव आगे बढ़ाता है ।)

— : अब अपने दोनों हाथ सिर के पीछे से लाकर जोर से मेरे सीने पर मारो ।

[गुरु भिन्नकता हुआ अपने दोनों हाथ अपने पिता के वस्त्र पर मारता है ।]

— : अब पीछे हटो, मैं मारता हूँ । अपने सीने पर मेरे हाथ लो !

[पीछे हटकर अपने दोनों हाथ गुरु के

आदि मार्ग

सीधे पर मारते हैं—इस जोर से कि गरीब पीछे गिरता गिरता बचता है। दीनदयाल प्रवेश करता है।

दीनदयाल पं० बसन्तलाल ही की उमर का व्यक्ति है। बड़ा कीमती सूट पहने है। शक्ल उसकी ऐसी है कि उसे देखकर उसके आन्तरिक भावों को जान लेना बड़ा कठिन है—यद्यपि उमर ने उसके चेहरे पर अपनी रेखाएँ बनानी शुरू कर दी हैं तो भी वह काफ़ी भरा भरा दिखायी देता है। ओठों की सहज मुस्कान और स्वभाव की, अभ्यास से पैदा की हुई, विनम्रता ने उस पर ख़ौल सा चढ़ा रखा है—केवल उसकी आंखों में कुछ ऐसी अमानुषिक चमक है, जो उसके इस ख़ौल का भेद खोल देती है, पर उस चमक को पहली नज़र में देख लेना आम आदमी के बस की बात नहीं।]

दीनदयाल : वाह खूब अखाड़ा बना रखा है। तुम भी... बसन्तलाल...(हँसता है।) तुम्हें सभ्यता पुरा भी नहीं छू पाई।

[बसन्तलाल गुरु को उसके दौर्बल्य पर कुछ कहने ही जा रहे थे कि दीनदयाल को देखकर वापस आकर कुर्सी में धँस जाते हैं। गुरु गिरता गिरता सम्हल कर 'नमस्कार' करता है। देव के हाथ खाली नहीं, इस लिए वह

छठा बेटा

बोतल और गिलास समेत हाथों को मस्तक से लगाकर अभिवादन करता है। हरिनाथ अपने आप को इस वेश में देखकर घबरा जाता है और 'नमस्कार' करना भूल जाता है, केवल डाक्टर साहब सहज भाव से उठकर 'नमस्कार' करके कुर्सी पेश करते हैं।]

बसन्तलाल : (कुर्सी में धँसते हुए) सभ्यता.....

[देव से बोतल और गिलास लेना चाहते हैं। डा० हंसराज व्यस्त होते हुए स्वयं बोतल और गिलास ले, पैग बनाकर उन्हें देते हैं।]

— : (एक ही बार उसे कंठ में उँडेल कर, दीनदयाल का कंधा पकड़ कर झुकते हुए) आजकल की सभ्यता में है क्या ? उसमें साहस कहाँ है ? सच्चाई कहाँ है ? दयानतदारी कहाँ है ? स्वाभिमान कहाँ है ? हमदर्दी, तरस और वफा कहाँ है ? (हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) यह सभ्यता दिखावे की सभ्यता है ? छल, कपट और फरेब की सभ्यता है—यह ब्राह्मण की सभ्यता नहीं, क्षत्री की सभ्यता नहीं, यह वैश्य की सभ्यता है। (खँखरते और झूमते हैं।) रुपये के बल पर तुम पुत्र को पिता के विरुद्ध खरीद लो; भाई को भाई के विरुद्ध खरीद लो; नौकर को मालिक के विरुद्ध खरीद लो; मित्र को मित्र के विरुद्ध खरीद लो; और देश-सेवक को राष्ट्र के विरुद्ध खरीद लो (दीनदयाल

आदि मार्ग

को बाजू से पकड़ कर झुकझोरते हुए) तुम किस सभ्यता का जिक्र करते हो साले, आज पैसे के बल पर मैं सारी दुनिया और उसकी सभ्यता को खरीद सकता हूँ । (टांगें तिपाई पर रख कर पोछे को लेट जाते हैं) आज जिस पागल को कोई पूछता नहीं; जिसके दिमाग में सोलह आने भुस भरा हुआ है; कोई बड़ा आदमी तो क्या, क्लर्क तक जिस मूरख से बात करना पसन्द नहीं करता, उसके पास अगर आज कहीं से धन आ जाय तो कल बड़े से बड़ा आदमी उसे अपना दामाद बना सकता है । सभ्यता..... (हँसते हैं और नशे में कुर्मी पर ही झूलते हैं ।) मैं पूछता हूँ, इसमें हड्डी कहां है, स्थायित्व कहां है, इस लचलचाती खोखली सभ्यता की दुहाई देकर तुम मेरा मज्जाक उड़ाना चाहते हो..... साले !

(हुक्का गुड़गुड़ाते हैं ।)

दीनदयाल : (चतुर) और तुम्हें इस नंग धड़ंग सभ्यता का मान है । है न ?

बसन्तलाल : (दीनदयाल के जाल में फँस कर जोर के साथ) इसमें अपनापन तो है, निजत्व तो है, (फिर हुक्के का कश खींचते हैं ।) यह चिलम साली बुझ गयी । (चिलम को उतार कर देखते हैं ।) इन सालों को कभी चिलम तक न भरनी आयगी ।

छठा बेटा

[कैलाशपति वहीं बैठा बैठा उस व्यंगभरी मुस्कान से डाक्टर साहब की ओर देखता है, जो शायद यह कह रही है कि यदि मूर्खता का यही माप है तो इस दृष्टि से हम सभी सोलह आने मूर्ख हैं ।

लेकिन डा० हंसराज उसकी ओर नहीं देखते, चिलम अपने रिता से लेकर वे हरिनाथ की ओर बढ़ा देते हैं ।]

डा० हंसराज : भाग कर इसे भर लाओ हरि !

[और वह बढ़ी सुकोमल अभिरुचि का सात्विक, परहेजगार कवि, जिसे सिगरेट और शराब के नाम ही से घबराहट होती थी, लपक कर चिलम ले लेता है और रसोई घर की ओर जल्दी से बढ़ता है ।

बसन्तलाल : (खाली हुक्के को गुड़गुड़ाते हुए, दीनदयाल से) सुन्दर खौल में लिपटी, महज दिखावे को इस सभ्यता में वह निजत्व कहां है ? इसने तुम से तुम्हारा अपनापन छीन लिया है । तुम, तुम कहां हो ? भापा तुम अपनी नहीं बोलते । चाल तुम अपनी नहीं चलते । पहनावा तुम्हारा अपना नहीं । तुम्हाग जा कुछ है दूसरों का है । दूसरों के लिए है ।

(देव के हाथ में की बोतल की ओर देखते हैं ।)

डा० हंसराज : देव इधर लाओ ।

बसन्तलाल : नहीं रहने दो, मैं हाश खो दूंगा ।

आदि मार्ग

दीनदयाल : तुम सा पयक्कड़ एक बोतल में होश खो देगा ।
(हँसता है ।)

बसन्तलाल : (मदमत्त निगाहों से उसकी ओर देखते हुए) यह दूसरी है, सुबह से पी रहा हूँ ।.....सुन लिया अब भूल कर कभी मुझे सभ्य या असभ्य का ताना न देना.....साले !

दीनदयाल : (अपने आदमी होने पर गर्व के साथ) तुम कोई आदमी हो, शिष्टाचार तुम में नाम को नहीं ।

बसन्तलाल : (तुनक कर—उसके घुटने को झुकभोरते हुए) जिसे तुम शिष्टाचार या एटीकेट (Etiquette) कहते हो, इसके चक्कर में पड़े कि गये, फिर रुकाव नहीं । सुबह उठने के साथ ही यह एटीकेट गला दबा लेते हैं—‘यह करो, यह न करो;’ ‘यह पहना, यह न पहना;’ ‘ऐसे चलो, ऐसे न चलो;’ ‘ऐसे बोलो, ऐसे न बोलो;’ ‘ऐसे हँसो ऐसे न हँसो;’ ‘ऐसे रोओ, ऐसे न रोओ’ (हँसते हैं और खाली हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) यहाँ तक कि तुम अपनी स्वाभाविक बोली, पहनावा, चाल, हँसी, रुदन—सब कुछ भूल जाते हो ।

(खाली हुक्का गुड़गुड़ाते हैं ।)

— : मैंने एक युवक को देखा, जब उसने वकालत पास की तो अच्छा भला समझदार, मृदु-भाषी, सरल, हँसमुख आदमी था—सीधे साधे ढंग से हँसता बोलता था । फिर वह आई० सी० एस० हो गया । लगे शिष्टाचार और सभ्यता

छठा बेटा

उसका गला दवाने—एक पार्टी में मैंने उसे देखा—बस उसमें शिष्टाचार और सभ्यता ही थी और कुछ न था।—न वह भाषा न स्वर, न हँसी न बाली, न चाल न ढाल—उसका अस्तित्व तक भूठा और बनावटा दिखायी था।—मुझे उस साले पर दया हो आयी।

(झाली हुक्रे को गुड़गुड़ाते और जोर से चीखते हैं ।)

बसन्तलाल : अरे हरि मर गया चिलम के साथ वहीं (फिर दीनदयाल से) और फिर सभ्य-समाज के इन नियमों का अन्त कहाँ है ? ज्यों ज्यों सभ्य से सभ्यतर समाज में जाओ, 'ऐसे करो' 'ऐसे न करो' की बेड़ियाँ अपने पाँवों में बढ़ाते जाओ—मेरा तो ऐसा सभ्यता में दम घुट जाय ।

(हरिनाथ चुपचाप आकर चिलम रख देता है ।)

डा० हंसराज : पिता जी ने फ़ैसला किया है कि तीस हजार के खर्च से एक विशाल व्यायामशाला खोलेंगे ।

दीनदयाल : लेकिन तुम्हारे इन डंड बैठकों और 'सौँची पक्की' से होगा क्या ? लोग तोपें और तलवारें.....

(देव से लेकर थोड़ा सा और पेय कंठ में उँडेल

बसन्तलाल : कर और देसराज का हाथ थाम कर उसे सुझाते हुए) तोपें-तलवारें क्या भगाड़े चला सकेंगे ? उनके लिए भी मानसिक और शारीरिक बल की ज़रूरत है । शरीर में बल हो, मन में

आदि मार्ग

साइस हो तो लाठी की जगह तलवार, बंदूक तथा तोप ले सकती है और कुरती की जगह युद्ध !

दीनदयाल : लेकिन महात्मा गांधी तो अहिंसा का प्रचार कर रहे हैं ।

बसन्तलाल : (हाथ छोड़ कर उसका कंधा पकड़ते हुए) महात्मा गांधी की अहिंसा बलवानों की अहिंसा है, ठोस आदमियों की अहिंसा है, भगोड़ों या हीजड़ों की अहिंसा नहीं । मैं अपने बेटों के नाम बीस बीस हजार रुपया लगाने जा रहा हूँ और मैं चाहता हूँ कि उस रुपये को पाकर भी वे अपना निजत्व कायम रखें ।

[बोतल से काफी बड़ा पैग लेकर एक ही बार पी लेते हैं और कुर्सी पर पीछे को लेट जाते हैं, टांगें भी उठाकर कुर्सी पर रख लेते हैं और मौन रूप से दुक्का गुड़गुड़ाते हैं ।]

डा० हंसराज : (घूम फिर कर पुनः मतलब की बात पर आते हुए) लेकिन गुरु का भी तो बताइए, वह कम से कम एम० ए० तक पढ़ेगा और मेरी प्रबल इच्छा है कि वह आई० सी० एस० के मुकाबिले में बैठे !

बसन्तलाल : (वहीं लेटे लेटे) दस हजार उसके नाम लिख दो !

डा० हंसराज : लेकिन अभी आपने कहा था कि आप हरेक के नाम बीस हजार रुपया लगा देंगे ।

गुरु : और फिर इन सब की पढ़ाई पर तो इतना खर्च

छठा बेटा

प्राया है, मेरी.....

बसन्तलाल : अच्छा साले.....(डा० हंसराज से) इसके नाम बीस हजार लिख दो !

दीनदयाल : (सुअवसर देखकर) कहो भई हरि, तुम ने उस मशीन का फ़ैसला किया है या नहीं ।

हरिनाथ : मेरी तरफ़ से फ़ैसला ही फ़ैसला है । बाकी सब तो पिता जी पर निर्भर है ।

दीनदयाल : क्यों भई बसन्तलाल, तुम इसे बड़ी सिलेंडर मशीन क्यों नहीं लगवा देते ? क्या उस खिलौने की ठिच ठिच में लगा रहता है । देखो, इसे सिलेंडर लगवा दो—अच्छा मशीन-मैन रखे, अच्छा टाइप मँगाये, फिर देखो, दिनों में ही इसका प्रेस और पत्र कहाँ जाता है ।

बसन्तलाल : (लगभग ऊँचते हुए) कितने को आती है ?

दीनदयाल : आजकल तो उसकी कीमत बाईस हजार हो गयी है । लोहे का मोल दिन दिन चढ़ रहा है, पर मैंने जो कह दिया, कह दिया । अपने वचन से बँधा मैं बैठा हूँ । इतने दिन से मैंने केवल इसके लिए ही रख छोड़ी है । हरि ने इच्छा प्रकट की थी । लेकिन यदि और दस दिन यह मशीन पड़ी रही तो उसका मोल दुगुना हो जायगा, फिर मैं मजबूर हो जाऊँगा और तुम भी बसन्तलाल, फिर मुझे कुछ न कहना ।

बसन्तलाल : (नशे की झोंक में) बाईस हजार का चैक दीन-दयाल के नाम काट दो ।

आदि मार्ग

डा० हंसराज : लेकिन इस बाइस हजार से क्या होगा ? सिलेंडर मशीन आयागी तो क्या टाइप वही घिसा हुआ रहेगा, जिसकी मात्राएँ छोड़, शब्द के शब्द उड़ जाते हैं, और काम बढ़ाने के लिए हाथ में क्या पूँजी न चाहिए ?

दीनदयाल : मैं कहता हूँ बसन्तलाल, इन एक दो महीनों में तुम ने लगभग एक लाख रुपया उड़ा दिया है। उस दिन तुमने उस उठाईगीर ब्राह्मण को दो हजार रुपये तीर्थाटन के लिए दे दिये.....

बसन्तलाल : वह बड़ा श्रेष्ठ आदमी था।

डा० हंसराज : पिता जी सा दिल रखने वाला लाखों में—मैं कहता हूँ—लाखों में क्या, करोड़ों में कोई बिरला ही मिलेगा चाचा जी। अब आपसे क्या छिपा है—एक दिन घर में कुछ तंगी थी, माँ किसी से बीस रुपये उधार लायीं। वे सब पिता जी ने एक 'श्रेष्ठ आदमी' को दे दिये। श्रेष्ठ आदमियों की जाँ पहचान इन्हें है, वह किसे होगी ?

दीनदयाल : तीन चार हजार टाइप के लिए चाहिए। फिर, प्रूफ निकालने वाला प्रेस भी खरीदना पड़ेगा, और कटिंग मशीन भी और दस एक हजार रुपया हाथ में चाहिए, नहीं तो छापाखाना सफेद हाथी बन जाता है।

डा० हंसराज : मैं पैंतीस हजार लिखने लगा हूँ

बसन्तलाल : तुम सैंतीस हजार लिख ला।

छठा बेटा

[उठाकर गिलास देव के हाथ से लेते हैं । सैंतीस हजार का नाम सुन कर कवि हरिनाथका चेहरादुगुना हो जाता है, विद्युत् की सी गति से इधर उधर वह देखता है कि वह क्या कर सकता है, जो उसका चाहता है कि अपने इस पिता के पाँवों से लिपट जाय, जब कुछ नहीं सूझता तो गिलास अपने पिता के हाथ से और बोटल देव के हाथ से लेकर, वह बड़ी तत्परता से, मदिरा ढालकर, गिलास अपने पिता को देता है ।]

बसन्तलाल : (गिलास दीनदयाल की ओर बढ़ाकर) अरे तुम ने लिया ही नहीं, मैं तो भूल ही गया, लो न (और आगे बढ़ाते हुए) लो !

दीनदयाल : (लालसा-भरी दबी-दृष्टि से गिलास की ओर देखकर) नहीं.....नहीं.....

बसन्तलाल : (बरबस गिलास उसके हाथों देते हुए) अरे लो ।

दीनदयाल : (गिलास को एक ही घूँट में खाली करके और पेय की कड़वाहट के कारण तनिक खोँस कर और रूमाल से मुँह साफ़ करके) तुम्हें तो मालूम है, मैं इतवार और मंगल को नहीं पीता ।

बसन्तलाल : (अपने लिए पैग बनाते हुए) और ये साले कहते हैं कि तुम शराबी हो । (गिलास खाली करके अपने पुत्रों को सम्बोधित करते हुए) देखो कितना

आदि मार्ग

संयम है दीनदयाल में ! इतवार और मंगल को यह बिलकुल नहीं पीता (शून्य में हाथ से घेरा बनाते हुए) यह इस युग का राजा जनक है, धन और ऐश्वर्य में रहते हुए भी एक-दम नीर्लिप्त !

[पीछे की ओर लेट जाते हैं । चचा चाननराम प्रवेश करते हैं । डा० हंसराज और दूसरे भाई उठकर 'नमस्ते' करते हैं ।

चचा चाननराम पंडित बसन्तलाल के पाँव छूते हैं ।]

बसन्तलाल : (उठकर आशीर्वाद देते हुए) चिरंजीव रहो (फिर अपने पुत्रों से) एक तुम हो कि अपने शिष्टाचार और सभ्यता को लिये फिरते हो । बड़ों का आदर इस तरह किया जाता है ? नक़ल उतारते हुए—'चाचा जी नमस्ते'—साले नमस्ते के—प्रणाम करो सब !

[फिर टॉगे' तिपाई पर रख लेते हैं और पीछे को खेद जाते हैं । सब भाई बारी बारी चचा चाननराम के घुटनों को छूते हैं । और वे 'चिरंजीव रहो', 'चिरंजीव रहो' कहते हुए दीनदयाल के साथ वाली कुर्सी पर डट जाते हैं ।]

चाननराम : (नये मिले सत्कार से फूल कर, बैठते ही) मैं कहता हूँ, अब जगह खरीदने या कोठी बनवाने का पचड़ा मोल लेने की बिलकुल ज़रूरत नहीं ।

छठा बेटा

(डा० हंसराज प्रश्नसूचक-दृष्टि से देखते हैं ।)

चाननराम : तीस हज़ार में बनी बनायी कोठी मिल सकती है, मेरा मित्र है लज्जाराम कमीशन-एजेंट । उसने मुझे उस कोठी का पता बताया है । गैरेज है, लान है, ड्राइंगरूम है; दस कमरे हैं; सुन्दर गुसलखाना है; फ्लश सिस्टम है; छोटी सी बैडमिंटन कोर्ट है, मैं कहता हूँ, क्या नहीं है ? और फिर इर्द गिर्द चाँदीबारी है—चाहो तो मज्जे से वहाँ अखाड़ा बनवा लो, मुगदर रख लो !

बसन्तलाल : बस वह कोठी ले लो.....

डा० हंसराज : मैं देख लूँ !

बसन्तलाल : देखने की क्या ज़रूरत है, चाननराम ने जो देख ली है ।

चाननराम : मेरे मित्र लज्जाराम ने कहा कि पं० बसन्तलाल के लिए उस से अच्छी कोठी सारे लाहौर में कहीं नहीं मिल सकती और दुनिया इयर की उधर हो जाय, मेरा मित्र भूठ नहीं बोल सकता ।

दीनदयाल : आम दलाब से जो वह इतना बड़ा कमीशन-एजेंट बन गया है कि दो दो कारें उसके दरवाज़े पर खड़ी रहती हैं, यह सब उसकी सच्चाई ही का तो चमत्कार है ।

डा० हंसराज : बहर हाल मैं तीस हज़ार का चैक कोठी के खाते काट रखता हूँ, पर पहले मैं उसे देखूँगा ज़रूर ।

आदि मार्ग

चाननराम : मेरे मिल लज्जाराम ने मुझे रियायती दाम बताये हैं ।

बसन्तलाल : लज्जाराम बड़ा श्रेष्ठ आदमी है ।

दीनदयाल : इसमें क्या शक है ।

चाननराम : (डा० हंसराज से) और कहो बेटा, तुमने कौन सी जगह अपने काम के लिए पसन्द की ?

डा० हंसराज : (फिर अपने पिता के पाँव दबाते हुए) जगह तो मैंने पसन्द कर ली है और आप भी पसन्द कर लेंगे । माल पर है, और बिलकुल अलग थलग पर किराया वे छै महीने का पेशगी माँगते हैं ।

चाननराम : हाँ किराया तो माँगेंगे ही । पर क्या डर है, जगह अच्छी हुई तो दे देना । कहाँ है ?

डा० हंसराज : जी वही जो हालरोड और मालरोड के चौराहे पर है ।

चाननराम : (लगभग उछल कर) चौराहे पर—तब तो मेरे मित्र लज्जाराम ने ठीक ही कहा था, टैम्पलरोड के बिलकुल पास ! वहीं वह कोठी है, जिसका मैंने जिक्र किया ।

डा० हंसराज : बेहद मौके की जगह है—एक तरफ माल है दूसरी तरफ हाल । छोटा सा लॉन आगे है, गैरेज भी है, और मोटर के लिए गोल मार्ग बना हुआ है । (धीरे से) प्रेक्टिस जमाने के लिए मोटर तो रखनी ही पड़ेगी ।

चाननराम : किराया क्या है ?

डा० हंसराज : तीन सौ रुपया महीना !

छठा बेटा

- चाननराम : ऐसी कोठी का तो साल भर का किराया पेशगी दे देना चाहिए ।
- बसन्तलाल : (जो इस बीच में नशे में गुट पड़े रहे हैं) दो साल का पेशगी दे दो !
- दीनदयाल : (जो शायद चुप बैठा बैठा ऊब गया है और जिसे सहसा अपनी मशीन के बेचने का ख्याल आ गया है ।) जगह भी तो माल पर है ।
- डा० हंसराज : और वहाँ दस एक बिस्तर भी आ सकते हैं— बीमारों के ! मैं जो सेनेटोरियम खोलना चाहता हूँ, उसकी नींव इसी तरह तो पड़ेगी । खास खास रोगियों का इलाज मैं वहीं किया करूँगा । और अपनी प्रसिद्धि के लिए अपनी सेवाएँ किसी फ्री अस्पताल को फ्री दे दूँगा । डा० लूम्बा क्या करता है ? राधेश्याम फ्री अस्पताल में उसने अपनी सेवाएँ फ्री दे रखी हैं, पर ऑपरेशन जितने करता है, उनमें से ७५ प्रतिशत सीधे स्वर्ग के पासपोर्ट सिद्ध होते हैं । लेकिन इसी तरह तो अनुभव प्राप्त होता है । और आप देख लीजिएगा, कल लूम्बा शैतान की तरह मशहूर हो जायगा । जिसके हाथों कम से कम सौ आदमी मुक्ति न पा जायँ, वह सर्जन कैसा !
- चाननराम : तुमने कृष्ण के बारे में भी कुछ सोचा ?

ॐ निशुल्क ।

आदि मार्ग

डा० हंसराज : मैं उसे अपने साथ रखूँगा । शुरू-शुरू, मैं उसका दिल बढ़ाने के लिए, जो आप कहेंगे, दे भी दूँगा । और मैं आपका विश्वास दिलाता हूँ, मेरे साथ अगर वह दो वर्ष रह गया तो एक्सपर्ट § सर्जन बन जायगा ।

चाननराम : वह स्वयं होशियार है । कालेज में प्रोफेसर उसकी प्रशंसा करते थे । वह तो मुझ में हिम्मत नहीं.....

डा० हंसराज : सब कुछ पिता जी पर निर्भर है, मैं आसकी भरसक सहायता करूँगा । कृष्ण.....

बसन्तलाल : (खुमारों से जागते हुए) कृष्ण बड़ा श्रेष्ठ लड़का है ।
(आँखें बन्द किये हुक्का गुड़गुड़ाते हैं ।)

चाननराम : आप भाई साहब, हंस को मालरोड पर दुकान क्यों नहीं खुलवा देते । अब मौके को जगह मिल रही है, फिर कौन जाने बरस भर जगह न मिले । वहाँ दुकान खोलते ही हंस का नाम सारे प्रान्त में प्रसिद्ध हो जायगा ।

बसन्तलाल : (पूर्ववत् आँखें बंद किये हुए) तो खोल लो वहाँ !

चाननराम : खोल कैसे लें ? कल आप तो रुपया उड़ा दें और इसके लिए उस दुकान का किराया तक देना कठिन हो जाय । देखा भाई, हंस के नाम तीस-चालीस हजार रुपया लगा दो ।

डा० हंसराज : तीस-चालीस हजार से क्या होगा दीनदयाल से) क्यों चाचा जी सामान तो आपके यहाँ

§ एक्सपर्ट (Expert) निपुण ।

छठा बेटा

से ही आयगा। माल पर दुकान जमाने के लिए बीस हजार तो सामान ही पर खगाना पड़ेगा और फिर कार भी रखनी पड़ेगी और शोकर भी और नौकर भी।

[पंडित बसन्तलाल उठकर देव की ओर हाथ बढ़ाते हैं। डा० हंसराज गिलास में काली पेय डाल कर उनको देते हैं।]

डा० हंसराज : (अपनी बात जारी रखते हुए) कम से कम पचास हजार तो मुझे दिया जाय।

चाननराम : पचास हजार से कम मैं कैसे काम चल सकता है ?

दीनदयाल : माल पर लाख भी लग जाय तो अधिक नहीं !

बसन्तलाल : (गिलास खाली करके मूँछें पोंछते हुए) तो पचास हजार निख लो ! (गिलास मेज पर पटक कर पीछे, लुढ़कते हुए) देव कुछ गाओ !

(देव चुप रहता है ।)

— : (उसी प्रकार नशे में आँखें बंद किये कड़क कर) गाओ !

देव : जी मैं.....

बसन्तलाल : मैं कहता हूँ गाओ ! (जोर से हवा में हाथ घुमाते हैं, हुस्का गिर जाता है, और चिलम दूर तक लुढ़कती चली जाती है) गाओ !

[अत्यन्त बेसुरे तौर पर देव गाना आरम्भ करता है ।]

आदि मार्ग

‘ओ जीने वाले.....हँसते हँसते जीना !’

बसन्तलाल : (उठकर झूमते हुए) चल साले, तू क्या गायेगा ?
मैं गाता हूँ ।

डा० हंसराज : (हस्ताक्षर करने के लिए चैक बुक अपने पिता के
सामने करके फ्राउंटेंपेन उनके हाथ में देते हुए)
पिता जी जब गाया करते थे तो इनकी रसीली
दर्द भरी आवाज़ मीलों तक लहराती चली
जाती थी ।

[सब चैकों पर हस्ताक्षर करके, बोतल
का शेष पेय गले में उँडेल कर, लड़खड़ाते
हुए पं० बसन्तलाल उठते हैं और थलथलावी
लेकिन अत्यन्त सुरीली और ऊँची आवाज़ में
गाना शुरू करते हैं ।

‘दे डारो राधे रानी बाँसुरी मोरी !’

किन्तु उनका स्वर फट जाता है और
वे लड़खड़ाते हुए कुर्सी पर गिर पड़ते हैं ।]

बसन्तलाल : जब मैं स्कूल में पढ़ता था तो कृष्ण बना करता
था, और मेरी आवाज़.....पर अब इस साली
शराब ने मेरा सत्यानास कर दिया है । मेरी वह
आवाज़ नहीं रही, मेरा वह कंठ नहीं रहा, मेरी
वह देह नहीं रही । (सहसा कंठ भर लाते हैं ।)
देखो बेटा, इस साली को कभी मुँह न लगाना,
इस साली ने.....

[हुक्के को हाथ से ट्योलते हुए नशे
में बेहोश हो जाते हैं ।]

छठा बेटा

डा० हंसराज : ये तो गुट हो गये !

बसन्तलाल : (उठने का विफल प्रयास करते हुए) कौन कहता है ? मैं अभी पूरी की पूरी बोतल चढ़ा सकता हूँ । दीनदयाल आओ.....

दीनदयाल : (उठता हुआ) तुम्हें तो मालूम है, मैं इतवार और मंगल को नहीं पीता ।

बसन्तलाल : आओ साले.....

(फिर मदहोश हो जाते हैं । पर्दा गिरता है ।)

(पर्दा धीरे धीरे उठता है ।)

[सामने स्टेज पर अँधेरा है, किन्तु प्रकाश से सहसा अंधकार में आने पर यद्यपि आँखें कुछ भी नहीं देख पातीं, पर उससे तनिक अभ्यस्त होने पर वे देखना आरम्भ कर देती हैं । और फिर यहाँ तो सामने के दरवाजों के शीशे अन्दर के प्रकार के कारण चमक रहे हैं, इसलिए कुछ कुछ दिखायी देने लगता है ।

सामने एक बरामदा है, वह हमारा पूर्व-परिचित बरामदा है या कोई और, यह बात निश्चय के साथ नहीं कही जा सकती । सामान उसमें कुछ नहीं और शायद इसलिए कुछ खुजा-बुजा-सा दिखायी देता है, केवल एक

आदि मार्ग

और एक चारपाई बिछी नज़र आती है और अधिकार से तनिक और अभ्यस्त होने पर हम देखते हैं कि उस पर कोई सोया हुआ भी है।

एक दो बार कुछ अव्यवस्थित से खुरादों की आवाज़ भी आती है, फिर खामोशी छा जाती है।

फिर दो छायाएँ स्टेज पर आती हैं।]

एक : नहीं नहीं चाचा जी, आप हमारी खातिर यह कष्ट न कीजिए, भला मैं यह कैसे बर्दाश्त कर सकता हूँ कि हमारे लिए आपको चार पाँच हजार का नुकसान हो जाय। आप उस मशीन को बेच दीजिए।

दीनदयाल : लेकिन इतनी सस्ती और अच्छी मशीन आप लोगों को इतने सस्ते में हाथ न आयगी और फिर और दस दिन तक उसकी क्रीमत दुगनी हो जायगी।

[आवाज़ से हम जान लेते हैं कि ये दो छायाएँ डा० हंसराज और दीनदयाल के अतिरिक्त कोई नहीं।]

डा० हंसराज : (गम्भीरता के आवरण में आवृत्त व्यंग्य से) तो मेरी राय में आप उसे अभी और दस दिन तक रख छोड़ें, जब उसकी क्रीमत दुगनी हो जाय तभी उसे बेचें.....

छठा बेटा

दीनदयाल : मुझे तो पं० बसन्तलाल का खयाल था ।

डा० हंसराज : उनका खयाल अब आप छोड़ दें । पहले ही उनका कम खयाल आपने नहीं किया ।

दीनदयाल : (व्यंग्य को सुना अनसुना करके) लेकिन हरि.....

डा० हंसराज : हरि का अभी प्रेस को बढ़ाने का कोई इरादा नहीं ।

दीनदयाल : पर तुमने.....

डा० हंसराज : हाँ मैंने कहा था, पर हरि की बात का भरोसा क्या ? वह ठहरा ढल-मुल आदमी, तब उसका विचार था कि प्रेस चलायगा, बढ़ायगा, अब मैं देख रहा हूँ कि वह पहला भी बेच कर कहीं काश्मीर, नैनीताल जाने की सोच रहा है । कवि और पागल को जभी तो विद्वानों ने एक ही पंक्ति में रखा है ।

दीनदयाल : (वंश का शुभचिन्तक) समय बड़ा कठिन है । ऐसे वक्त तुम उसे किस तरह यों बेकार आवारागर्दी करने की सलाह दे सकते हो, मेरे पास जो मशीन है.....

डा० हंसराज : लेकिन चाचा जी, मशीन को लेकर वह करेगा क्या ? कागज तो बाज़ार में मिलता नहीं । जितना कागज निकलता है, वह तो सरकार अपने दफ्तरों के लिए ले जाती है—और दफ्तरों में आप जानते हैं, दो सतरें लिखनी हों तो पूरा फुलस्केप पेज नष्ट कर देते हैं—बाहर से कागज आता नहीं । बड़े बड़े पुराने जमे हुए छापेखानों के मालिक भी कुछ वक्त के लिए काम बन्द करने

आदि मार्गें

की सोच रहे हैं, फिर बेचारा हरि तो इस भंभट से पहले ही जान छुड़ाना चाहता है।

दीनदयाल : खैर उसकी इच्छा ! पर तुम माल पर दुकान खोल रहे थे, तुम्हें सामान चाहिए था और तुम ने कुछ पता ही नहीं दिया।

डा० हंसराज : मुझे युद्ध में खेमे सप्लाई करने का ठेका मिल गया है। हिस्सेदारी तो है, पर ठेका भी पाँच लाख का है !

दीनदयाल : लेकिन मैंने तो तुम्हारे लिए सामान भँगा रखा था।

डा० हंसराज : (व्यंग्य से) आपके दुगने हो जायँगे, कुछ दिन और रख छोड़िए !

दीनदयाल : (निरन्तर हमलों से घबराये बिना) लेकिन.....

डा० हंसराज : मैं तो पहला भी बेचने की सोच रहा हूँ।

दीनदयाल : हरि भी मर्शान बेचना चाहता है और तुम भी सामान बेचना चाहते हो।

डा० हंसराज : आप विश्वास कीजिए ! जब इसमें लाभ ही नहीं तो क्या करें ? वह छापेखाने में बैठा दिन भर मक्खियाँ मारा करता था और मैं दवाखाने में। वह कवि है, इस लिए जरूरी नहीं कि एक ही काम के पत्थर को गले से बांध रखे और मैं कवि नहीं कि हमेशा एक ही पेशे का ढोल पीटता रहूँ।

दीनदयाल : तुम्हारी यह बात मेरी समझ में नहीं आयी।

डा० हंसराज : बात यह है कि कवि आदत से अस्थिर होता है, किसी एक व्यवसाय को अपनाये

छठा बेटा

रखना उसके घस का बात नहीं होती, लेकिन अगर वह ऐसा करता भी है तो सिर्फ अपनी भावुकता के कारण । फिर यदि भावुकता-वश वह एक पेशे को अपना लेता है तो जल्द ही वह उसे नहीं छोड़ता, चाहे उसके प्राण भी क्यों न होम हो जायें । व्यापारी आदमी लगातार हानि होने पर भी जहाँ एक व्यवसाय में टिका, समझिए वह कवि हो गया । मैं शुद्ध व्यापारिक बुद्धि रखता हूँ. मैं कवि नहीं, इस लिए क्यों एक खसारे के काम को गले लगा रखूँ ?

दीनदयाल : (तनिक और समीप होकर भेद-स्वर में) तो देखो जब तुम सामान या मशीन बेचने लगो, मुझसे पूछ लेना, मैं मँहँगे से मँहँगे दाम तुम दोनों की चीजें बिकवा दूँगा ।

[दीनदयाल की छाया अलोप हो जाती है, एक दूसरी छाया आती है ।]

छाया : दीनदयाल आया था ?

[आवाज से हम जानते हैं कि यह हाँ]

भावुकता-वश वह एक पेशे को अपना लेता है तो जल्द ही वह उसे नहीं छोड़ता, चाहे उसके प्राण

आदि मार्ग

देने—रिश्वत.....रिश्वत.....रिश्वत ! आज की दुनिया में जितने काम इससे निकलते हैं, उतने किसी और चीज़ से नहीं निकलते । फिर इस रिश्वत का रूप रूपया भी हो सकता है, भेंट-पुस्कार भी, प्रशंसा भी, खुशामद भी और लूट का हिस्सा भी—ये दानों चचा साहबान आसानी से जितना धन लूट सकते थे, लूट चुके थे । और लूटने के लिए इन्हें बहाना चाहिए था । वह बहाना देकर मैं ने इन्हें अपने और दूसरे भाइयों के मामले में चुप रहने की रिश्वत दी । दीनदयाल ने समझा, हरि उसकी वह पुरानी मशीन खरीद लेगा—जिसे आज आठ वष से सारे लाहौर में किसी ने नहीं खरीदा—और हंसराज माल पर दुकान खालेगा तो उसे सामान सप्लाई करने के बदले गहरी रकम उसके हाथ आयगी और चचा चानन-राम ने सोचा कि उनका वह नालायक लड़का सजन बन जायगा—रिश्वत....रिश्वत.....रिश्वत.....आज उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए इससे अच्छा कोई साधन नहीं, कल की बात मैं कह नहीं सकता ।

[छायाएँ लुप्त हो जाती हैं और क्षण भर के लिए स्टेज पर रोशनी हो जाती है, बरामदा खाली है । एक ओर चारपाई पर कोई सोया हुआ है, उसके परेशान खुर्राटों की आवाज़ सुनायी दे रही है ।

छटा बेटा

स्टेज पर फिर अँधेरा छा जाता है। दो छायाएँ एक दूसरी का पीछा करती हुई आती हैं।]

एक : (आवाज़ गुरु की है) नहीं माँ, मुझे तंग न करो। मैं आई० सी० एस० बनने के लिए भाग दौड़ कर रहा हूँ। अगर किसी को पता चल गया कि मेरा पिता वहाँ मन्त्री मंडी अथवा लंडे बाज़ार की नालियों में अंधे मुँह पड़ा रहता है तो मेरा सारा भविष्य नष्ट हो जायगा।

[दामन छुड़ा कर भाग जाता है। माँ की छाया उसके पीछे जाती है और अनुनय के स्वर में चीखती है—]

माँ : बेटा.....बेटा.....

[गुरु को छाया निकल जाता है। एक और छाया प्रवेश करती है।]

माँ : देव.....

(माँ उसका ओर बढ़ती है।)

देव : (बचता हुआ) नहीं माँ, उन्हें रखना मेरे बस का रोग नहीं। मैं डरता हूँ। मुझे उनके पास बैठते हुए भय आता है। वे आज भी थपपड़ जमाने और गालियाँ देने को तैयार हो जाते हैं। अपने यहाँ रखना तो दूर रहा, मैं तो उनके पास तक नहीं जा सकता।

(कड़ी कतरा कर निकल जाता है।)

माँ : (उसके पीछे जाती हुई) बेटा.....बेटा.....

आदि मार्ग

[एक और छाया हाथ में बैग लिये
प्रवेश करती है ।]

माँ : (उसकी ओर बढ़ती हुई) बेटा हरि, तेरे पिता
की हालत.....

हरि : मुझे यहाँ नहीं रहना माँ, मुझे अभी शान्ति-
निकेतन जाना है । (गर्व से सीना फुला कर)
तुम्हें नहीं मालूम, मेरी ख्याति पंख लगा कर
उड़ चली है । मुझे जगह-जगह से निमन्त्रण
आ रहे हैं । मैं शान्ति निकेतन अपना कविताओं
पर एक भाषण देने जा रहा हूँ । जब लोगों को
पता चलेगा कि मैं किन कठिन परिस्थितियों में
पला और बढ़ा और मेरा पिता कितना क्रूर
तथा निर्दयी है तो वे मेरी प्रतिभा पर दंग रह
जायँगे । आज ही मुझे शान्ति निकेतन चला
जाना है ।

[तेज़ तेज़ चला जाता है । एक और
छाया प्रवेश करती है ।]

माँ : (उसकी ओर बढ़ती हुई) बेटा हंस, तुम भी
अपने पिता की हालत पर तरस न खाओगे तो
कौन खायेगा, बेटा.....

डा० हंसराज : मैं तुम्हें कितनी बार कह चुका हूँ माँ, कि मुझे
तंग न करो । क्यों बार-बार मेरी जान खाता
हो । अगर उन्होंने सब रुपया गँवा दिया है
तो इसमें मेरा क्या दोष है, अगर वे फटे हाल
रहना चाहते हैं तो मैं क्या करूँ ।

छठा बेटा

माँ : उन्होंने तुम्हें.....

डा० हंसराज : मान लिया उन्होंने मुझे सब कुछ बताया. लेकिन क्या मैं भी इस सब को उनकी तरह गँवा दूँ। फटे हाल, तार-तार कपड़े लिये, शराबखानों में घूमता फिहूँ, गालियाँ दूँ, गालियाँ खाऊँ, नालियों में गिरता फिहूँ, मक्खियाँ मुझ पर भिनभिनायें और कुत्ते मेरा मुँह चाटें।

माँ : बेटा.....

डा० हंसराज : मैंने क्या कुछ नहीं किया ? उन्हें अच्छे बंगले में, अच्छे से अच्छे कपड़ों में रखा ! चूँकि शराब उनकी हड्डियों में रच गयी है और वे उसे छोड़ नहीं सकते, इसलिए अच्छी से अच्छी शराब, अच्छे से अच्छे शीशों में, उन्हें पीने को दी ! पर वे उस बंगले का पिजरा और उस क्रीमती शराब को कुल्हिया का पानी समझने रहे। फिर मैं क्या करूँ ?

माँ : बेटा.....

डा० हंसराज : और मैं चाहता क्या था ? महज थोड़ा-सा शिष्टाचार ! महज थोड़ी-सी सभ्यता !! लेकिन उन्हें भरे बाज़ार में जोर-जोर से बोलना, गालियाँ देना, गालियाँ खाना, पीटना-पिटना और अपने यारों के साथ मस्त भूमते फिरना पसंद है—कमीज खुली है तो इसकी उन्हें परवाह नहीं, धोती लटक रही है तो इसकी उन्हें चिन्ता नहीं, सिर या पाँव नंगे हैं तो इसका उन्हें ध्यान

आदि मार्ग

नहीं—इस हालत में मैं उनकी क्या सेवा कर सकता हूँ। मैं स्वयं तो उनका सा होने से रहा और उनके साथ वही रह सकता है, जो उनका सा हो जाय !

माँ : बेटा, आखिर वे तुम्हारे पिता.....

डा० हंसराज : मैं किसी का बेटा नहीं, कोई मेरा बाप नहीं। आज मैं इतनी मेहनत, इतने परिश्रम, इतनी दौड़-धूप के बाद सफलता की सीढ़ी पर चढ़ा हूँ। क्या तुम चाहती हो, मैं फिर नीचे जा रहूँ—मुझे नित नयी पार्टियाँ, नित नये डिनर देने होते हैं। कहाँ लाकर रखूँ मैं उन्हें अपने यहाँ ?

माँ : लेकिन उन्हें तुम रुपये.....

डा० हंसराज : उन्हें रुपये देने का मतलब धन को अंधे, गंदे कुएँ में फेंकना है। रुपये का उनके निकट कोई महत्व नहीं। मिट्टी के ढेलों की तरह वे उन्हें उछाल देते हैं। उनको दिये गये रुपये सब्ज़ी मंडी, लोहारी या लंडा बाज़ार के शराबखानों की नालियों के कीड़े बनते हैं।

[चले जाते हैं—माँ निमिष भर सिर धामे खड़ी रहती है, फिर डा० हंसराज के पीछे जाती है कि दायीं ओर से एक और छाया आती है। माँ उसकी ओर बढ़ती है और पुकारती है :]

छठा बेटा

माँ : कैलाश !

कैलाशपति : मुझ से तुम क्या कहती हो, इतना ही क्या कम है कि मैं उन्हें कुछ नहीं कहता। कोई दूसरा होता तो अब तक कब का पकड़ कर जेल में ठोंस देता। शराब पीकर वे इतना आँधेर मचाने हैं कि मेरी सारी व्यवस्था चौपट हो जाती है। उनके कारण मेरे इलाक़े में मेरा कोई रौब नहीं रहा। मैं पुलिस-इंस्पेक्टर हूँ, घसियारा नहीं। लेकिन उनके चलते मेरी हालत घसियारों से भी गयी बोती हो गयी है, भरे बाज़ार में वे मुझे आधा नाम लेकर पुकारते हैं, मेरे मातहतों के सामने वे मुझे गालियाँ देने लगते हैं। मैंने अपनी तबदीली के लिए प्रार्थना की है। अगर मुझे तबदील न किया गया, तो मुझे मजबूर होकर उन्हें सीखों के अन्दर बन्द करना पड़ेगा।

(चला जाता है ।)

माँ : पुत्र होकर तुम अपने पिता को सीखों के अन्दर बन्द करोगे (दोनों हाथों से कनपटियों को भींचती हुई चीखती है) तुम्हें शर्म नहीं आती (धीरे से जैसे अपने आप) क्या मैंने अपनी कोख से सब कपूत जने। क्या तुम में एक भी ऐसा नहीं जो अपने माता-पिता को उनके सारे दोषों, सारे व्यसनों के साथ अपने पास इज्जत से रख सके। बेटे ऐब करते हैं, माँ-बाप डाँटते हैं,

आदि मार्ग

भिड़कते हैं, लेकिन उन्हें गले से लगा लेते हैं—
और तुम, जिनका एक एक अणु हमारे लहू से
बना है, जो हमारे कारण इस ऊँचाई पर पहुँचे
हां—अपने पिता को जेल में भेजने को तैयार
हो (चीखती है)—तुम सब कपूत हो, तुम सब
बेशर्म हां, नौज मैंने तुमको जना ।

[गिर पड़ती है, अचेत हो जाती है,
दायाँ ओर से एक और छाया धीरे-धीरे
उसके पास आती है, उसे आस्तीन के लटकते
छोर से हवा करती है, और आवाज़ देती
है :]

वही छाया : माँ !

(फिर हवा करता है ।)

— : माँ !

[माँ की छाया सहारे से उठती है और
बैठती है ।]

वही छाया : माँ !

माँ : तुम कौन हो ?

वही छाया : मैं तुम्हारा बेटा हूँ, मैं दयालचन्द हूँ ।

माँ : (गद्गद होकर) दयालचन्द... मेरा छठा बेटा...
(उसे आलिंगन में ले लेती है) कहाँ था तू
(आर्द्र स्वर से) देख तेरे भाइयों ने हमें किस
तरह दुत्कार दिया है । तेरे पिता दो दिन से
सच्ची मंडी में औंधे मुँह बेहोश पड़े हैं ।

